दृष्टान्त सागर की—
विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ नं०

❀ ईश्वर में विश्वास ❀

—(❀❀)—

एक बार एक ब्राह्मण अपनी ब्राह्मणी सहित मार्ग में चला जा रहा था। कुछ दूर पर उसे चार डाकू मिले और ब्राह्मणी पर आभूषण देख कर कपट से मधुर वचन कहने लगे कि, हे महाशय जी आपने कहां को प्रस्थान् किया है ब्राह्मण ने अपने पहुंचने का निर्दिष्ट स्थान उनको बतला दिया। तब डाकू बोले कि, हे महाराज जी हमको भी वहीं पहुंचना है जहां पर कि, आपने आगमन किया है अस्तु हम और आप साथ ही साथ चलें तो बहुत अच्छा हो। यह सुन ब्राह्मण ने विचार किया कि, ("इकला चलिये न बाट,,) अस्तु यह सोच उनसे कहा कि चलिये हमारे लिये तो लाभ ही है क्योंकि आप इस मार्ग से पूर्ण परिचित होंगे और साथ २ मार्ग भी अच्छी भांतितय हो जायगा ऐसा कह कर ब्राह्मण, ब्राह्मणी और चारों डाकू साथ२ हो लिये।

आगे एक सघन वन में जाकर डाकुओं ने मार्ग को छोड़ कर एक पगदंडी पर पदार्पण किया। यह देख ब्राह्मण के हृदय में कुछ भय उत्पन्न हुआ और दोनों ठगों का साथ छोड़ खड़े हों गये तब चारों ठग ब्राह्मण से कहने लगे कि, महाशय जी आप हमारे साथ क्यों नहीं आते हो यदि हम आपके साथ में दुष्कर्म करें तो हमारे और आपके बीच में रमापति राम साक्षी हैं। यह सुन कर ब्राह्मण को विश्वास हो गया और वह डाकुओं के साथ२ चल दिया अब आगे जाकर जब झाड़ियों के मध्य में प्रवेश किया तब ठगों ने ब्राह्मण के मारने को तलवार निकाली।

यह कौतिक देख कर ब्राह्मण ब्राह्मणी कहने लगे कि हे ठगो जो तुमको लेना हो सो हमसे माँगो परन्तु हमारे प्राणों को न हरिये। यह सुन कर ठग बोले कि, हे ब्राह्मण हम बिना प्राण हरण किये किसी व्यक्ति का धन नहीं लेते यह हमारा आदि सनातन धर्म है ।

यह सुनते ही महादीन ब्राह्मण ब्राह्मणी समेत रोने लगा और कहने लगा कि, हे चराचर के स्वामी, भक्तवत्सल, मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान आपही हमारे और इनके मध्य में साक्षी थे। यदि आज आपने आकर न्याय न किया तो फिर आपको मर्याद पुरुषोत्तम, घटघट वासी, करुणानिधान,भुवनेश्वर, दया के समुद्र और कल्याणकारी कहना वृथा है। यदि आज न्याय न किया तो यह पृथ्वी रसातल को चली जायेगी। इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है।

ब्राह्मणी के इन वचनों को सुनकर विश्वास निवासी भगवान सुदर्शन चक्र धारण किये वहीं आ खड़े हुये और तुरन्त ही चारों डाकुओं को मार डाला और ब्राह्मणी, ब्राह्मण को दर्शन दे भगवान अन्तरध्यान हुये। इस लिये इस कथा से यह शिक्षा मिली कि भगवान पर विश्वास रख कर कठिन से कठिन कार्य भी सिद्धि होता है। इस विषय में एक कवि ने लिखा है।

दोहा—जो जन आये हरि निकट, धरि मन में विश्वास।
कोई न खाली फिर गयो, पूरि लियो निज आस ॥
बिन विश्वास भगति नहीं, तेहि बिन द्रवहिं न राम।

राम कृपा बिन सपनेंहु, जीव न लौह विश्राम ॥

दृष्टान्त नं० २ सतोगुणी गुरू की खोज ।

एक राजा इस चिंता में कि मैं ऐसे महात्मा को गुरू बनाऊं जो सतोगुणी हो । उसने संसार में भ्रमण किया परंतु रजोगुण और तमोगुण के रहित उसे कोई महात्मा न मिला, तब वह एक दिन श्री काशी जी में गया और वहाँ पर एक महात्मा से भेंट हुई जो श्री गङ्गाजी में स्नान करके आरहा था । और उसके शिर पर जल का घड़ा रक्खा हुआ था । राजा ने महात्मा से प्रणाम कर कहा कि हे तपेश्वरी मैं आपसे एक प्रश्न करना चाहता हूं तब महात्मा ने प्रसन्न होकर राजा से कहा कि बच्चा पूछो ! तब राजा ने कहा कि महाराज मैं तो उस प्रश्न को भूल गया । जाने मैं क्या कहना चाहता था । आपके आसन तक याद करके कहूंगा । महात्मा जी खुश होकर वहाँ से चल दिये, जब सीढ़ियों पर चढ़ गये तब राजा बोला कि, महाराज अब वह प्रश्न याद आ गया । महात्माजी ने कहा कि, बच्चा पूछो । फिर राजा नें कह दिया कि मैं तो महाराज फिर भूल गया । परन्तु महात्मा जी अप्रसन्न न हुये ।

राजा ने इसी प्रकार कई बार महात्मा से धोका दिया परन्तु उस सतोगुणी महात्मा के मुख पर तमोगुण नाम तक न आया । फिर राजा ने महात्मा के आसन पर बैठ कर कहा कि

बाबा इस समय वह प्रश्न याद आगया। महात्माजी ने फिर पहिले की तरह कह दिया कि, बच्चा कहो।

तब राजा ने महात्मा जी से कहा कि, महाराज भिष्टा क्या वस्तु होती है। महात्माजी यह बात सुन कर बहुत हंसे और कहा कि, बच्चा इस पर मक्खी बैठती हैं।

राजा ने .हात्मा को पूर्ण सतोगुणी देखकर कि इतने पर भी इनके वदन पर क्रोध नहीं छाया है वार्तालाप किया, कि मुझे अपना शिष्य बनाइये। मैं अभीतक ऐसे ही गुरु की खोज मे था।

महात्माजी ने शिष्य बनाने से इनकार किया कि शिष्य के। बुरे कर्मों का फल गुरु को भोगना पड़ता हैं। दूसरे जन्म में आकर गुरु पीपल और शिष्य चेंटा बनताहै जो उसी गुरु पीपलको खाताहै। इस कारण से मैं किसी को शिष्य बनाना नहीं चाहता हूं। राजा यह बचन सुनकर चरणों पर गिर पड़ा। महात्मा उसके प्रेम को देखकर बहुत प्रसन्न हुये और उसे अपना शिष्य बनालिय

ॐ तत्वार्थ ॐ

इस कथा से यह सार निकला कि गुरु शील स्वाभावी, सदाचारी बनाना चाहिये क्योंकि अच्छे गुरु की संगति का प्रभाव अवश्य पड़ता है।

किसी कवि ने कहा है:—

गुरु कीजै जानकर, पानी पीजै छानकर।

दोहा—साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप स्वभाव।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय॥

द्रष्टान्त नम्बर ३ सतोगुणी महात्मा

जब राजा युधिष्ठिरने यज्ञ कियातो सब महात्मा आये परन्तु एक महात्मा नहीं आया। तब राजा युधिष्ठिरने उनके पास जाय दंडवत प्रणाम करके कहा कि हे मुनीश्वर आप मेरे साथ चलकर भवनको सुशोभित कीजिये। महात्माने इनकार किया परन्तु राजा केबहुत कहनें सुनने पर महात्मा ने कहा कि यदि सौ यज्ञों का फल मुझे दे तो मैं तेरे साथ चल सकता हूं वरना नहीं। राजा युधिष्ठिर यह ख्याल कर लौट आये कि मैंने तो पहिली यज्ञ आरम्भ की है, मैं सौ यज्ञों का फल कहां से दूंगा। यही वृतान्त उन्होंने आकर अपने छोटे भाइयों को सुनाया। तब अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेव बारी बारी से उस महात्मा के पास गये, परन्तु महात्मा ने सबसे यही एक प्रश्न किया। अन्त में सब लौट आये।

द्रोपती ने उस समय कहा कि हे प्राण नाथ यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं उन महात्माजीको ला सकती हूं। युधिष्ठिर ने यह सुनकर आज्ञा दी और द्रोपदी भी उस साधु जी के पास गई और द्रोपती से भी उसने यही प्रश्न किया।

द्रोपती यह सुनकर बोली कि, हे मुनीश्वर मैं आपको सौ क्या १०१ यज्ञों का फल दूंगी। तब महात्मा ने कहाअच्छा लाओ,

तब द्रोपती बोली कि—

दोहा—संत दरश को चालिये, तजि माया अभिमान।
ज्यों ज्यों पग आगे धरौ, त्यों त्यों यज्ञ समान॥

इस बात को सुनकर महात्मा बहुत प्रसन्न हुये और महात्माजी द्रौपती के साथ यज्ञ को आये।

। नम्बर ४ आज कल के श्रोता ।

एक ब्राह्मण के मकान पर कथा हुआ करती थी, वहीं पर एक बजाज कथा सुनने के लिये गये और कथावाचक को नमस्कार कर आगे बैठ गये और सुनतेही सुनते आप सोगये।

तब आप स्वप्न में क्या देखते हैं कि वे अपनी दुकान पर बैठे हुये हैं और ग्राहकों को कपड़ा दे रहे हैं अंत में आप बोले के चार ही आने गज ले लो हमको तो बेचना ही है निदान पंडित जी का जो अंगरखा था उसका छोर सोते समय हाथ में आगया चट उसको फाड़ डाला।

सब लोग बोले यह क्या किया लाला बहुत लज्जित हुये अस्तु ऐसे सुनने से निस्तार नहीं होता कि मन घर के कार्यों में लगा है और बैठे था में हैं इससे मन लगाकर कथा सुननी चाहिये। किसी कवि ने लिखा है:—

❀ चौपाई ❀

भगवत कथा सुमंगल दानी, अघ जवास जिमि पावस पानी
श्रोता अमियत कल्प लतासी, महा मोह तम भानु प्रकाशी

॥ नम्बर ५ नीति की शिक्षा ॥

एक दिन कुछ मनुष्य वन में बादशाह नौशेरवाँ के साथ आखेट खेलते खेलते बहुत दूर निकल गये वहां उन्हें

कुछ भूख सी मालूम हुई और उन्हों ने कबाब बनाने की ठानी मगर उस समय वहां पर नमक न था। उन्होंने पास ही के एक गांव में अपने एक नौकर को भेजा और कहा कि देखो दाम दे देना क्यों कि ऐसी बुरी बान पड़ने से गांव का नाश होजायगा। तब नौकर ने कहा, हे स्वामी इतनी छोटी बात पर गांव का नाश कैसे हो सकता है। तब बादशाह ने उत्तर दिया :—

खाय प्रजा के बाग से एक सेव जो राय।
सेवकवा के दास तब रूखहि देहि गिराय।
इक अण्डे के हित करै राजा अत्याचार ॥
तौ फिरि वाके लश्करी मारे मुर्ग हजार।

* समाप्ति *

नम्बर ६ दुष्ट के उपाय और उपदेश से साधू भी डिग जाते हैं।

एक वन में मदोत्कट नाम का सिंह रहता था। उसके तीन सेवक- तेंदुआ, काग और स्यार थे। एक दिन उस वनमें एक ऊंट आनिकला। उसको देखकर उन तीनों सेवकों ने उसे पकड़ लिया। और उसे पकड़ कर सिंह के पास लेगये। सिंह ने उसको जीवदान दिया और उसका नाम चित्रकरन रख दिया।

उस दिन से ऊंट भी उनके साथ रहने लगा। एक बार बरसात के मौसम में लगातार तीन दिन तक मेह बरसा। और

उनको खाने के लिये न मिला, तव तीनों ने परस्पर सलाह की कि कोई ऐसा यत्न करना चाहिये कि सिंह ऊंट को मारै और हमको खाना मिले। उस वक्त तेंदुआ बोला कि "इसको तो सिंह ने जीवनदान दे दिया है, वह इसको कैसे मारेगा तव काग बोला कि भूख सब कुछ करा लेती है, समय पाकर राजा भी पाप करता है।

जैसे भूखी नागिन अपने अण्डा खाती है। और यह भी कहा है कि " १–व्यभिचारी २–रोगी असावधान ३–वृद्ध, ४–अधीर, ५– क्रोधी लोभी ६ भूखौ ये धर्म को जानते हैं न मानते हैं।

इस तरह से सलाह करके सिंह के पास गये। और अहार न मिलने का वृतान्त कहा।

काग बोला "इस ऊंट को मार खाओ" तव सिंह बोला कि "मैंने तो इसे अभयदान दे दिया है फिर मैं कैसे मारूं। तब काग ने छल कपट से यह ऊंट द्वारा कहलवा लिया कि आप मुझे मार कर अपनी क्षुधा शाँति कीजिये क्योंकि सेवक का कर्म यही है कि–

भानु पीठ राखिय उर आगी। सेवें स्वामि सकल छल त्यागी॥

सिंह ने सुनकर उसको मार दिया और उसे भक्षण कर लिया।

॥ तत्वार्थ ॥

इससे यह सिद्धि होता है कि दुष्टों केउपदेश से साधू भी डिग जाते हैं,जैसेकुटिल भों के साथ नेत्रों को भी वक्र होना पड़ता है।

॥ ७ दृष्टान्त ॥ तपसे भी बड़ा सत्सङ्ग है ॥

ऐक वार मुनि विश्वामित्र और वशिष्ठ में वाद विवाद हुआ। विश्वामित्र कहते थे कि तप बड़ा है और वशिष्ठ जी कहते थे कि सत्सङ्ग बड़ा है। वाद तर्क वितर्क के दोनों शेष ज़ी के पास गये। और सारा वृतान्त कह सुनाया।

शेषजी ने कहा कि तुम मेरे महिभार को धारण करो मैं न्याय करु ं। तव विश्वामित्र जी ने सारा तपस्या का वल लगा दिया परंतु वे महि के भार को न उठासके तव फिर वशिष्ठ जी ने थोड़े से सत्सङ्ग के बल से पृथ्वी को उठा लिया और अंत में विश्वामित्र को शरमिंदा होनापड़ा।

॥ तत्वार्थ ॥

सत्सङ्गति की महिमा छिपी हुई नहीं है। सत्सङ्गति क हीप्रभाव से नारद तथा घटयोनि और व्यास जीने महर्षि पद प्राप्त किया। सत्सङ्गति का ऐसा प्रभाव है कि दुष्ट आदमी भी क पूर्ण विद्वान बन सकता है।

८— देहाती पंचायतन ॥

एक काश्तकार के तीन पुत्र थे और वह कार्श धनाढ्य भी था जव वह मर गया तो कह गया कि मे वड़ा और मंझला बेटा बराबर बरावर बाटैं परंतु ने कहा कि मुझे इसका हिस्सा क्यों नहीं मिलेगा इसद[illegible]

कारण बताओ। बाद तर्क वितर्क के इस झगड़े का निर्णय सामाजिक पंचायतन में होने लगा। पांच पंचों ने परस्पर मिलकर दीवार पर एक शक्ल बनाई और काश्तकार के बड़े पुत्र से कहा कि यह शक्ल तुम्हारे पिता की है तुम इसमें पांच जूता दो सारा धन तुमको मिल जायगा तब बड़े पुत्र ने कहा कि पिता की सेवा का फल ही बड़कपन से भरा हुआ हमारा परम धन है चाहे प्राण चले जांय परन्तु धर्म को नहीं त्याग सकता हूं।

फिर उसको अलग करके पंचों ने मकान के अन्दर मझले पुत्र को बुलाया और उससे भी वही प्रश्न किया परन्तु उसने उत्तर दिया कि धर्म त्याग कर के मुझको यह चलायमान धन अच्छा नहीं लगता इसी प्रकार तीसरे पुत्र से भी यही कहा गया उस बुद्धि हीन ने धन के लालच में पड़ कर कृतिम पिता की प्रतिमा में पाँच जूते मारे। अन्त में फिर पंचों ने कहा कि बड़ा बेटा और मझला बेटा सुपुत्र हैं उस कारण धन के अधिकारी हैं और छोटा पुत्र बुद्धिहीन कुपुत्र है इसलिये यह धन का अधिकारी नहीं है यह न्याय सबको प्रिय लगा सेनीदास जी ने कहा है कि—

मात पिता गुरु स्वामि सिख, शिर धर करहिं सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जन्म के, नतरु जन्म जग जाय॥

नम्बर ९ काजी का इन्साफ॥

किसी गांव में एक काश्तकार अति धनाढ्य था। उसके

तीन पुत्र थे जब वह मर गया तो वह अपने पुत्रों से कह गयाकि सारे धन धान्य को तीनों भाई बराबर बराबर बाँट लेना परन्तु घोड़ों का हिस्सा इस तरह करना कि कुल का आधा बडे को कुल का तीसरा हिस्सा मंझले को और नवा हिस्सा छोटे बेटे को मिले।

उसके मरने के पश्चात तीनों भाइयों ने सारा धन बराबर किया परन्तु १७ घोडे बाकी रहे। अब बांट करने में झगड़ा होने लगा अन्त में काजी के पास गये दूसरे दिन काजी साहब आये और कहा कि "यदि तुमको अपने हिस्सा का कुछ अधिक मिल जाये तो प्रसन्न हो ग्रहण करोगे।

तीनों ने स्वीकार किया। फिर काजी साहब ने उन सत्रह घोड़ों में एक अपना घोड़ा मिलाकर अठारह कर दिये और कुल का आधा अर्थात ९ घोडे बडे लडके को दिये और कहा कि "तुम्हारे हिस्से से ज्यादा है फिर कुल का तीसरा भाग यानी ६ घोड़े मंझले बेटे को दिये और कुल का नवां भाग अर्थात २ घोडे छोटे बेटे को मिल गये।

इस प्रकार सत्रह घोडे बाँट दिये और अठारहमा अपना घोड़ा अपने लिये बच रहा यह देखकर सम्पूर्ण नगर निवासी काजी के न्याय की बडाई करने लगे।

१०— चन्द्रगुप्त की बुध्दि मानी

किसी कवि का लेख है कि एक बार रूम के बादशाह ने राजा महानन्द के पास एक बनावटी शेर लोहे की जाली के

पिंजडे में रखकर भेजा और शर्त यह थी कि पिजड़ा तो टूटे नहीं परन्तु शेर निकल जाये।

इसके निकालने की महानन्द तथा उसके आठ पुत्रों ने महान कोशिश की परन्तु बुद्धि ने काम नहीं दिया और उसका कुछ फल न निकला।

इसके पश्चात चन्द्रगुप्त मौर्य ने विचार किया कि यह सिंह किसी ऐसे पदार्थ का बना है जो सर्द या उष्णता से गल जाये।

तब उसने पिंजडे को जल कुण्ड में रख दिया परंतु वह न गला फिर दुबारा उसने चारों ओर अग्नि जलाई। उसकी गर्मी से वह सिंह गल कर बाहर निकल गया और चंद्रगुप्त मौर्य को बुद्धिमानी प्रकाशित होगई।

११—चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी।

एक वार उक्त लेखानुसार एक बादशाह ने राजा महानंद के पास एक अंगीठी में सिलगती हुई अग्नि भेजी और साथ ही साथ एक बोरा सरसों और एक मधुर फल भेजा परंतु महानंद के यहां उसके अर्थ को कोई न जान सका तब दासी पुत्र चंद्रगुप्त ने उस पर निर्णय किया और सबको समझाया कि यह अंगीठी धहकती हुई बादशाह के क्रोध को स्पष्ट जाहिर करती है और एक बोरा सरसों इस कारण भेजी है कि मेरी सेना असंख्य है और फल भेजने का भावार्थ यह है कि मेरी मित्रता का फल मधुर है।

चन्द्रगुप्त ने इसके प्रत्युत्तर में एक घड़ा जल, एक पिंजड़ा में कुछ तीतर और एक अमूल्य रत्न भेजा उसका आशय यह था कि तुम्हारी क्रोध रूपी अग्नि को बुझाने के लिये हमारी जल रूपी नीति है, तुम्हारी असंख्य सेना को भक्षण करने के लिये हमारे तीतर रूपी योद्धा हैं और हमारी मित्रता के फल को अमूल्य रत्न जाहिर करता है। कि वह सदैव एक रस और मधुर है।

॥ भावार्थ ॥

इस तरह चन्द्रगुप्त की बुद्धिमानी जगत में जाहिर है।

१२—कंजूस मनुष्य की कहानी।

एक किसान एक दिन नारियल लेने के वास्ते शहर में गया और बाजार में जाकर दूकानदारसे पूछा कि सेठि जी एक नारियल के कितने दाम हैं। दूकानदार ने एक नारियल की कीमत दो आने बतलाई। जब किसान ने कहा "छै पैसे नहीं ले सकते हो"। तब दूकानदार बोला कि "आगे सस्ता मिलेगा फिर वह किसान नारियल के वास्ते आगे की दूकानों पर बढ़ा और दूकानदारों से पूछा" कि एक नारियल की क्या कीमत है"। उसने छै पैसे मांगे।

तब किसान ने कहा चार पैसे ले लीजिये। दूकानदार ने कहा आगे मिल जायेंगे। वहां क्या था लोभ की चेष्टा में आगे नारियल का भाव चार पैसे मिला। तो किसान बोल

दो पैसे यहाँ ले सकते हो।

ज्यों ज्यों वह आगे बढ़ा उसका लोभ भी बढ़ता ही गया। इतने में उसको आगे नारियल का वृक्ष दिखाई पड़ा। वह लोभ में आकर उस वृक्ष पास गया। उस पेड़ के पास ही एक कुआ था। ज्यों ही उसने नारियल पकड़ कर झटका दिया त्यों ही वह नारियल सहित कुए में गिर पड़ा। और वह मर गया।

॥ भावार्थ ॥

इससे यह सार निकला कि लालच कभी नहीं करना चाहिये।

तुलसी दास जी ने भी इसकी बावत कहा है—

काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि मनमें खान।
तब लगि पंडित मूरखौ, तुलसी एक समान॥

॥ न० १३ लोभ की नाव डूबती है ॥

एक तालाब के किनारे एक मेंढ़क पड़ा हुआ था। वहां पर एक कौवा आया और उस मेंढक को उठाले गया। वहां से उड़कर वह एक नीब के पेड पर जा बैठा।

मेंढक ने कहा कि लोभ की नाव डूबती है। इस बात को तुम याद रखना।

यह सुन कर कौवे ने कहा मैं अब तुमको खाता हूं तब मेंढक ने कहा" नीचे कुए पर चलो क्यों कि मैं उसमें गोता लगा लूंगा जिससे बदन की मिट्टी धुल जायेगी और तुम

अपनी चोंच को पत्थर से पैना लो ताकि तुम बहुत ही जल्दी खा सकोगे। मेरे उदर के अन्दर एक अमृत की थैली है। जिसको खाकर आप अमर होजाओगे। परन्तु जब तक मेरे बदन से मिट्टी नहीं घुलेगी तब तक वह थैली आपको नहीं मिल सकती।

कौवे को य बात पसन्द आगई और मेंढक को कुए पर छोड़ दिया और आप पत्थर पर चोंच घिसने लग गया। इतने में मेंढक पानी में चलता गया और मेंढक ने कौवे से कहा कि "हमने तुमसे पहिले ही कहा था कि लोभ की नाव डूबती है परन्तु तुमने कोई ध्यान न दिया कौवा लज्जित हो वहां से उड़गया।

नं० १४ अजीब इन्साफ।

किसी गांव दो मनुष्यों में झगड़ा हुआ एक का नाम धनपतिराय और दूसरे का नाम बुद्धिसागर था।

धनपतिराय कहता था कि "धन बड़ा है और धन ही के प्रताप से बुद्धि होती है और धन ही से बहुत से काम सहज ही में सिद्ध होजाते हैं परन्तु बुद्धिसागर कहता था कि बुद्धि बड़ी है। और मनुष्य की सर्वस्व सम्पति बुद्धि ही है। धन को चोर लेजाता है और वह नष्ट भ्रष्ट भी होजाता है।

परन्तु बुद्धि को न चोर ले सकता है और न कोई बाँट सकता है न राजा छीन सकता है और मनुष्य बुद्धि के प्रताप से इस प्रकार संसार से पार हो सकता है अर्थात जो भगवान अज अविनाशी अलख अगोचर है वे सहज में ही बुद्धि के द्वारा पास आकर मिल सकते हैं परन्तु धन से भगवान नहीं मिल सकते। वाद तर्क वितर्क के यह झगड़ा राजा के पास गया। राजा ने क्रोधित हो कर कहा कि "फलां देश का राजा तुम्हारा इन्साफ करेगा। तुम हमारे पत्र को लेकर वहां जाओ।"

राजा ने समाचार पत्र में अपने मित्र राजा को लिखा कि आप इन दोनों मनुष्यों को आते ही फांसी लगवा देना जी। पत्र को लेकर दोनों मनुष्य गये और राजा को प्रणाम करके वह समाचार पत्र राजा को दिया।

राजा ने अपने मित्र राजा का पत्र पढ़कर विचार किया कि इसमें ऐसा कोई कारण अवश्य है कि अपने यहाँ फांसी न देकर हमारे देश में यह अपराधी भेजे हैं। शायद उनके देश में फांसी न दी जाती हो इसी कारण इन अपराधियों को हमारे यहां भेजा है। ऐसा निर्णय करके उनको हुक्म दिया कि फलाँ तारीख को तुम्हारी फांसी होगी। यह कह कर उनको हवालात में बन्द कर दिया अब धनपतिराय जी फूट फूट कर रोने लगे। बुद्धिसागर ने अत्यन्त समझाया कि भाई साहब जी रोने से प्राणदान नहीं मिल सकता इस लिये रोना छोड़ कर खूब हंसा

इसके पश्चात में आपसे पूछूंगा कि "कहदूं तो आप हंसकर कह देना कि कदाचित नहीं। इस प्रयत्न से तो प्राण दान मिल भी सकता है वरना और कोई उपाय ऐसा नहीं जिसमें कि प्राण बचजाय। धनपतिराय ने बुद्धिसागर की बात मानली और रोने को छोड़कर खूब हंसने लगे।

बुद्धिसागर ने कहा कि "कह दूं तब धनपतिराय बोले कि कदापि नहीं, जो कोई उनके पास आता तो वे इसी प्रकार हंसते थे। जब इस प्रकार उनको हंसता देखा तो उन्होंने यह वृतान्त राजा के पास पहुंचाया। राजा ने अपने सचिव को उनके पास भेजा। मंत्री भी उनके पास आए तो उन्होंने मंत्री के सामने भी ऐसा ही कहा। मंत्री जी अचंभित होकर राजा के पास गए और सारा वृतान्त कह सुनाया कि हे श्री महाराज इसमें कोई कारण छिपा हुआ अवश्य है कि रंज के समय खुशी इसके वदन पर छाई हुई है। यह समाचार सारे नगर में फैल गया कि फलाँ देश के दो अपराधी फांसी लगने को यहां पर आए हैं और खूब हंसते हैं। राजा ने विचार करके उनको दरबार में बुलाया। सारे कर्मचारी और नगर निवासी एकत्रित हुये और उन दोनों को वहां पर बुलाया गया तब वे सभा में खूब हंसे और बुद्धिसागर बोला "कह दूं" तो धनपतिराय ने कहा "कदापि नहीं"। राजा ने अचंभित हो कर उनसे बहुत कुछ पूछा तब बुद्धिसागर ने कहा "कह दूं" और धनपतिराय ने "कदापि नहीं" यह सुनकर राजा ने

उनसे बहुत पूछा तब बुद्धिसागर बोला कि महाराज बताने में हमारे महाराज की हानि है परन्तु राजा के एक बार कहने से बुद्धिसागर ने कहा "कि हे नाथ! हमारे राजा से एक महात्मा ने कहा है कि जिस राज्य में तुम अपने अपराधियों को फांसी लगवाओगे वही राज्य तुम्हारा होजावेगा। इस कारण हम यहां पर भेजे हैं। राजा ने प्रसन्न होकर कहा कि इनको दो लाख रुपये देकर देश से निकाल दो ,, दोनों रुपये लेकर भाग गये। धनपतिराय बहुत खुश हुआ और दोनों अपने राजा के पास आये।

राजा ने कहा कि "तुम्हारा न्याय हो गया ,, तब भी यह बुद्धिहीन धनपतिराय बोला "महाराज इन्साफ क्या यहां तो जान के लाले पड़ गये और जैसे तैसे जान बचाई है। ,,

यह सारा वृत्तान्त सुनकर राजा ने क्रोधित हो धनपति राय को खूब पीटा और न्याय समझा दिया, और अन्त में दोनों अपने २ घर आये।

इससे सिद्ध हुआ कि बुद्धि के आगे धन को कुछ नहीं चलती।

भावार्थ—

धन सांसारिक सुखों में मुख्य है परन्तु बुद्धि सांसारिक सुखों के लिए तथा पारलौकिक सुखों के लिये प्रधान है।

इससे सिद्ध हुआ कि धन से बुद्धि बड़ी है।

नं० १५ एक क्षत्राणी का पतिव्रत धर्म ।

बूंदी नरेश महाराज यशवन्तसिंह जी शाहां दरबार में रहते थे एक दिन बादशाह ने अपनी सभा में प्रश्न किया कि आज कल वह जमाना वर्त रहा है कि स्त्री भी दुराचारिणी हो गई हैं। पतिव्रत धर्म को ग्रहण करने वाली स्त्री पृथ्वी पर न हैं और न होंगी क्योंकि समय बड़ा बलवान है। यह सुन कर सारे सभासद चुप हो गये परन्तु वीर क्षत्री बूंदी नरेश पर न रहा गया और क्रोध पूर्वक सभा में खड़े हो कर बोले कि हे बादशाह आगे की तो मैं कह नहीं सकता हूं वरना इस वक्त तो मेरी स्त्री पूर्ण पतिव्रत धर्म को ग्रहण करने वाली है। यह सुन कर बादशाह चुप हो गये परन्तु एक शेरखां नामी मुसलमान बोला कि आपकी स्त्री पतिव्रता नहीं है। वाद तर्क वितर्क के यह निश्चय हुआ कि एक माह की मुहलत में मैं आपको जसवन्तसिंह की पत्नी का पतिव्रत धर्म दिखला दूंगा।

इस पर बादशाह ने कहा कि दोनों में से जो झूंट निकलेगा उसी को फांसी लगवा दी जावेगी और दूसरे को इनाम मिलेगा।

शेरखां यह सुन कर बहुत खुश हुआ। और अपने नगर में आकर दो दूती बुलाई और दोनों से पूछा कि तुम क्या क्या काम कर सकती हो। तब एक ने कहा कि मैं बादल फाड़ सकती हूं और दूसरी ने कहा कि मैं बादल फाड़ कर

सी सकती हूं । यह सुन कर शेरखां ने दूसरी दूती को पसन्द किया । और उससे कहा कि बूंदी नरेश की पत्नि पतिव्रता है इस कारण तू उसके पतिव्रत धर्म को छल से डिगादे तो मैं तुम्हें पाँच गांव इनाम दूं दूती इस बात को सुन कर प्रसन्न हो गई ।

एक डोला उसने तय्यार कराया और उसमें बैठ कर बूंदी को प्रस्थान किया । जब वह बूंदी नरेश के यहां पहुंची तो उस बूंदी नरेश की पतिव्रता नारी ने उसका आदर सत्कार किया ।

क्योंकि वह बूंदी नरेश की भूआ बनकर गई थी और रानी ने उसे कभी देखा न था इसलिये उस दूती को रानी ने महाराज जी की भूआ ही समझा ।

दो दिन पश्चात रानी से दूती ने कहा "कि चलो स्नान करलें । ,, रानी ने कहा " भूआ जी मैं पीछे स्नान करूंगी । आप स्नान कर लीजिए ।

दूती यह सुनकर क्रोधित हुई और बनावटी भय दिखलाने लगी कि मैं जसवन्तसिंह से तेरी शिकायत करूंगी । उस बेचारी को भय मालूम हुआ क्योंकि रानी उसको जानती नहीं थी, इस कारण विश्वास करके उसके सामने स्नान करने लगी तो उस दूती ने उसके अंग को देखा तो रानी की जंघा पर लहसन दिखाई दिया , स्नान करने के पश्चात दूती ने भोजन किया । अन्त में दूसरे दिन दूती ने कहा कि अब तो मैं जाती हूं और वहां पर एक रखी हुई कटार को देख कर उसे मांगने लगी ।

रानी ने हाथ जोड़ कर कहा कि हे भूआ जी यह तो कटार मेरे पतिव्रत धर्म की है। महाराज जी ने मुझको दे रखी है। दूती ने कटार को बार बार मांगा परन्तु रानी ने कटार न दी।

अन्त में दूती ने क्रोधित हो कर कहा कि मैं तुझे जसवन्तसिंह से कह कर निकलवा दूंगी। तब तू अपने धर्म की किस प्रकार रक्षा करेगी। तू ने मेरा इस छोटी सी कटार पर इस तरह अनादर किया। रानी ने उसके क्रोध से भयभीत हो कर कटार को दे दिया। दूती प्रसन्न होकर वहां से चल दी और शेरखां को आकर दोनों निशान दिये। और वह इनाम जो कि पांच गांव राजा ने रखे थे उनके लेने के लिए शेरखां शाही दरबार में गया और दोनों चिन्ह बादशाह के आगे रखे। और कहा कि शाह जी मैं इस कटार को लेकर और लहसन का निशान देख कर अभी चला आरहा हूं। जसवन्तसिंह ने इस बात को सुनकर अचम्भा किया। अन्त में जसवन्तसिंह को फाँसी का हुक्म होगया और शेरखां को इनाम मिला।

दूसरे दिन जसवन्तसिंह घोड़े पर सवार होकर बूंदी में आए। रानी महाराज का आगमन सुनकर दरवाजे पर गंगाजल लेकर आई परन्तु जसवन्तसिंह उसकी मूर्ति देख कर लौट आये। रानी ने अपने पति को क्रोधित जान कर शोक किया कि हे दैव मैंने एसा क्या दुष्कर्म किया जिससे महाराज मुझसे कुछ भी न कहकर लौट गए। अन्त में इस पतिव्रत

नारी को सारा वृतान्त मालूम हुआ तब वह क्रोधित होकर अपनी पांच सहेलियों के साथ दिल्ली को गई और नाचना आरम्भ किया। नाचते नाचते शाही दरबार में गई और बादशाह को नाच दिखाकर गाना इस तरह सुनाया कि बादशाह सुनकर प्रसन्न होगया।

वह ईश्वर प्रार्थना जो कि रानी ने गाई थी बादशाह अपने ऊपर घटित करके बहुत प्रसन्न हुआ और कहा कि तुम्हारी जो कुछ इच्छा हो सो मांगो। रानी ने त्रिवाचा भरवा कर कहा कि हे बादशाह! शेरखां पर मेरा ५००) कर्जा है सो आप उनको दिलवा दीजिए।

बादशाह ने शेरखां को रुपयों की बाबत पूछा तो वह रानी के मुंह को तक कर बोला कि मैं खुदा की कसम खाता हूं कि मैंने तो इसका कभी मुंह तलक भी नहीं देखा है मुझ पर इसका कर्जा क्योंकर है। रानी ने यह सुनकर बादशाह से कहा कि यदि मेरा मुख भी नहीं देखा था तो यह कटार और लहसन का निशान तूने किस तरह बतला दिया। यह सुनकर शेरखां के होश उड़ गए और जसवन्तसिंह के बजाय शेरखां को फांसी का दण्ड मिला क्योंकि रानी ने बादशाह से दूती का सब हाल बयान कर दिया था।

भावार्थ—

इससे यह शिक्षा मिली कि पतिव्रत धर्म के प्रताप से सारे कठिन से कठिन काम तुच्छ दिखाई देते हैं।

बिन्दा पतिव्रत धर्म के ही कारण तुलसी बनकर भगवान की प्राणप्यारी बनी क्योंकि इसके बिना भगवान छप्पन भोगों को भी नहीं मानते। सीता जी ने भी राम से कहा है कि:-

॥ चौपाई ॥

मातु पिता भगनि प्रिय भाई। प्रिय परिवार सुहृद सुखदाई॥
सासु श्वसुर गुरु सजन सहाई। सुत सुन्दर सुशील सुखदाई॥
जहं लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिन तियहि तरनि ते ताते।
जिय बिन देह नदी बिन वारी। तैसहि नाथ पुरुष बिन नारी॥

इसलिये यह सारांश निकला कि स्त्री के लिए पति ही सर्वस्व है।

नं० १६ महात्मा जैमिन

एक दिन व्यास जी महाराज ने जैमिन को समझाया कि-

विषया विनिवर्तन्ते निरा हारस्य देहिनः।
रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते॥ ५६॥
यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणी प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः॥

अर्थ—यद्यपि इन्द्रियों के द्वारा विषयों को न ग्रहण करने वाले पुरुष के भी केवल विषय तो निवृत हो जाते है परन्तु राग नहीं निवृत होता और यत्न करते हुये बुद्धिमान पुरुष के भी मन को यह प्रमथन स्वभाव वाली इन्द्रियाँ बलात्कार हर लेती हैं परन्तु जैमिन ने इस बात को न माना। व्यास

जी ने बहुत समझाया परन्तु जैमिन की समझ में न आया अन्त में व्यास जी ने कहा कि "फिर कभी इसको समझावेंगे यह कह कर वे चल दिये।

सन्ध्या समय कुछ बादल हो गए और बूंद पड़ने लगीं तूफान भी आया। उसी वक्त व्यास जी ने माया की दस ग्यारह नव युवक स्त्रियां प्रकट कीं और उनके पीछे आपने भी महान सुन्दर स्त्री का रूप धारण करके जैमिन अपने शिष्य के आश्रम की तरफ आगमन किया। हवा के झोकों द्वारा महीन वस्त्र उलट पुलट जाने से उनके अंग जैमिन को नजर पड़े। अन्त में वे आगे गेंद खेलती हुई चली गईं इसके पश्चात व्यास जी स्त्री का रूप बनाये हुये आये और बोले कि हे महाराज हमारी दश ग्यारह सहेलियां बिछुड़ गई हैं और रात्रि हो गई है इस कारण मैं आपके आश्रम में रहना चाहती हूं। जैमिन ने बहुत मन किया परन्तु उसने कहा कि मेरा धर्म बिगड़ने का पाप या किसी जानवर द्वारा खा लेने से स्त्री हत्या का पाप तुमको लगेगा।

जैमिन ने सोच समझ करे उसको एक कोठरी बतला दी।

और अपने मन को बस में करने का प्रयत्न करने लगे फिर उससे बोले कि यहां पर जैमिन नाम का एक भूत आता है इस कारण तुम मेरा नाम लेने पर भी किवाड़ न खोलना।

व्यास जी अपना असली रूप बना कर भीतर भजन करने लग गये। जब रात्रि में जैमिन को उन दस ग्यारह

स्त्रियों की याद आई तो विषय वासना की लालसा उत्पन्न हुई और दरवाजे पर जा कर बोले कि हे प्रिये मैंने तुमको व्यर्थ ही धोखा दिया था, यहां पर कोई भूत नहीं आता है। किवाड़ खोल दीजिये परन्तु उन्होंने किवाड़ न खोली अन्त में इन्द्रियों ने विषया लवलीन होकर मन को बस में कर लिया और जैमिन छत काट कर- उसमें कूद पड़े।

वहां देखते हैं कि व्यास जी महाराज विराजमान हैं। व्यास जी ने क्रोधित होकर दो तमाचे जैमिन में दिये और कहा कि—

> यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपाश्चत. ।
> इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभ मन. ॥

अर्थात इन्द्रिया विषया लवलीन होकर बुद्धिमान पुरुष के मन को बलात्कार हर सकती हैं या नहीं जैमिन हाथ जोड़कर चरणों में गिर पड़ा और क्षमा मांगने लगा।

॥ नम्बर १७ होनहार बालक ॥

गुरु द्रोणाचार्य के पास बहुत से राजकुमार पढ़ते थे। युधिष्ठिर उन सब में बड़े थे। उनकी पहिली पुस्तक का पहिला पाठ था कि "मनुष्य को क्रोध त्याग देना चाहिये"। क्योंकि क्रोध के समान कोई दुष्ट नहीं जो कि स्वयं अपनी हृदय माता को भक्षण कर जाता है। युधिष्ठिर ने इस वाक्य को अटल कर

लिया। चाहे मार खाते जांय परन्तु क्रोध न करूंगा और जब तक कि क्रोध को न जीत लूंगा तब तक आगे पढ़ना व्यर्थ है।

यह कह कर उन्होंने पढ़ना बन्द कर दिया। एक महीने बाद परीक्षक ने उन सब की परीक्षा ली। सब ने अपने पाठ सुना दिये परन्तु धर्मराज ने कहा "कि मुझे पहिला ही पाठ याद है। और नहीं। परीक्षक को क्रोध आया और बेंत मारना आरम्भ कर दिया। परीक्षक मारते मारते थक गए परन्तु युधिष्ठिर के चहरे पर क्रोध की झलक भी न दिखाई पड़ी तब परीक्षक ने द्रोणाचार्य को बुला कर कहा कि युधिष्ठिर सब राजकुमारों में बड़े हैं और एक दिन इनको भारत का सम्राट होना है परन्तु इन्होंने सबसे कम वाक्य सीखे है। तब द्रोणाचार्य ने कहा कि हम ही भूल पर हैं इन्होंने पहिले वाक्य को अपने आचरण में उतार लिया है कि इतने पिटने पर भी इनके चहरे पर क्रोध का नाम निशान भी नहीं।

परीक्षक यह सुन लज्जित हुए और क्षमा माँगने लगे।

॥ नं० १८ होनहार बालक ॥

जब गोपाल कृष्ण गोखले मराहठी की चौथी कक्षा में पढ़ते थे तब गुरु जी ने एक दिन अङ्कगणित के कुछ प्रश्न घर पर हल करने को दिये। किसी ने भी उनको हल न किया और यह उन प्रश्नों को किसी दूसरे आदमी के द्वारा हल कराके

स्कूल में ले गये। गुरू जी ने इनको पहिला नम्बर दिया और प्रशंसा करने लगे।

गुरू जी ने उन्हें बहुत समझाया कि गोपाल तुम तो अपने प्रश्न हल कर लाये हो। और तुमको नम्बर भी पहिला मिल गया है। फिर भी तुम क्यों रोते हो तुमको देख कर अन्य विद्यार्थियों को रोना चाहिये। यह सुन गोपाल और भी रोने लगे और बोले कि हे गुरू जी महाराज मैं स्वयं प्रश्न हल करके नहीं लाया था दूसरे से हल कराके लाया था। इस कारण मुझे पहिला नम्बर नहीं देना चाहिये।

मैंने आपको धोखा दिया इसलिये कृपा कर मेरा अपराध क्षमा कीजिये।

यह सुन कर सब विद्यार्थी चकित होगये गुरू ने उसको प्रसन्न देखकर कहा कि "सचाई इसका नाम है।"

अन्त में यही गोपाल कृष्ण गोखले बड़े होकर वाइसराय की कौंसिल के बड़े सदस्य हुये।

॥ नं० १९ होनहार बालक ॥

शिवा जी एक बार बारह वर्ष ही की उम्र में अपनी माता के साथ बीजापुर गये। वहां उनका पिता, बादशाह आदिलशाह के यहाँ रहता था। जब शिवा जी की भेंट बादशाह से हुई तब उन्होंने निडर होकर बादशाह को साधारण तौर से सलाम

किया। बादशाह इस वर्ताव से अवश्य क्रोधित होता परन्तु उसने शिवाजी को नादान बालक समझ कर क्षमा कर दिया।

एक बार दरबार में शिवाजी को क्रोधित देख कर बादशाह पूछा, कि तुम क्रोधित क्यों हो तब शिवाजी ने कहा कि यहां खुले बाजार गौ मांस बेचा जाता है। हम हिन्दू लोग इसे नहीं देख सकते। इस बात की पुष्टि अन्य हिन्दू सरदारों ने भी की। इस पर बादशाही हुकम से सब सड़कों पर गौ मांस बेचना बन्द हो गया। एक दिन अकस्मात एक कसाई सड़क पर गौ मांस बेचता मिल गया। शिवाजी ने उसका सिर काट लिया। इस पर बादशाह ने कह दिया जो जैसा करेगा वैसा ही फल पावेगा। इसने बादशाही आज्ञा का उलंघन क्यों किया। वही वीर शिवाजी अपनी बहादुरी के ही कारण से दक्षिणी भारत के राजा हुए। इसी से तो कहते हैं कि कर्मों को देख कर चतुर आदमी ताड़ जाते हैं कि यह बड़े होने पर किस ढगं का आदमी होगा। इसके ऊपर क्या ही अच्छी कहावत है कि—

होनहार विरवान के, होत चीकने पात।

॥ नं० २० एकाग्रता ॥

चंचल मन को स्थिर करके अपने काम में लगा रहना ही एकाग्रता है। जो मनुष्य दृढतापूर्वक एकाग्र चित्त से अपने काम में अटल रहता है, सफलता हर समय उसके साथ खड़ी रहती है।

मनुष्य चाहे विचारशील हो चाहे परिश्रमी हो परन्तु बिना एकाग्रता के वह अपने काम में सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। यह विद्वानों का मत है कि महाराज द्रोणाचार्य कौरव और पाण्डवों को धनुष विद्या सिखाया करते थे। एक दिन गुरू जी ने उनकी परीक्षा ली। एक मैदान में एक पेड़ के ऊपर बनावटी चिड़ियो स्थापित की और आज्ञा दी कि इसके नेत्र बध करो। उस समय सब राजकुमार प्रस्तुत हुये तब गुरूजी ने एक एक से पूछा " कि तुमको इस पेड़ पर क्या दिखाई देता है। „ सबने कहा " चिड़ियाँ " फिर अन्त में अर्जुन को पूछा गया। अर्जुन ने कहा कि " मुझे चिड़िया की आंख के अलावा कुछ दिखाई नहीं देता है। अन्त में गुरू जी ने कहा कि अर्जुन ही चिड़ियाँ की आँख बींध सकता है। और कोई राजकुमार इसमें सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

आखिरकार अर्जुन ने ही चिड़िया की आंख में तीर

मार दिया ।

सच है एकाग्रता ही सफलता की कुंजी है ।

पूर्व समय में यूनान में एक प्रसिद्ध गणितज्ञ आर्कमेंडीज था । एक वार यूनान के बादशाह के पास एक सुवर्ण का ताज आया । बादशाह ने उस ताज की परीक्षाके लिये कि यह नकली है या असली आर्कमेंडीज को बुलाया । वह बहुत दिन तक इस बात पर निर्णय करता रहा । एक दिन एकाएक स्नान करते समय बादशाह के प्रश्न का उत्तर याद आया । वह फौरन ही राजा के पास नंगा दौड़ा गया । वह एकाग्रता में इतना लवलीन था कि कपड़े पहिनने की उसकी सुधि तक न रही । इसीप्रकार वह अपने मकान में बैठा हुआ गणित का एक प्रश्न लगा रहा था । उसी समय यूनान के दुश्मन यूनान पर चढ़ आये और मार काट करने लगे । तब वे आर्कमेंडीज के पास मारने को दौड़े । तब उसने कहा भाई थोड़ी देर ठहरो मुझे अपना प्रश्न निकाल लेने दीजिये ।

देखिये इसी का नाम एकाग्रता है । इसमें अनुरक्त रहने के कारण शिक्षा प्रद आर्कमेंडीज का दृष्टान्त चला आ रहा है । जिसको बहुत से चतुर मनुष्य आचरण में लाकर अपने काम में कृतार्थ होते हैं ।

एकाग्रता के महत्व का प्रमाण वेद पुराण भी देते हैं कि बड़े भारी ब्रह्मवेत्ता ऋषि दत्तात्रेय जी ने एक साधारण तीर बनाने वाले मनुष्य को गुरु किया था । इसकी कथा इस प्रकार

है कि एक बार शहर के राजा की सवारी बड़ी धूम धाम के साथ निकल रही थी। शहर के मनुष्य सभी उसका तमाशा देख रहे थे। उसी समय ऋषि दत्तात्रेय जी वहां आ निकले।

उस वक्त उन्होंने देखा कि एक तीर बनाने वाला तीर बना रहा था, वह बिलकुल एकाग्रचित्त है। राजा की ओर उसका बिल्कुल ध्यान नहीं। वह अपनी धुनि में मस्त है। दत्तात्रेय ने उसे अपना गुरू बनाया क्यों कि उसमें ऐकाग्रता का गुण था।

॥ भावार्थ ॥

संसार में ऐसा कोई कार्य नहीं कि जिसे मनुष्य एकाग्रता के गुण से पूरा न कर सके। कठिन से कठिन कार्य एकाग्रता से सहज ही में हो जाते हैं। इसलिए इससे यह शिक्षा प्राप्त होती है कि सब को अपने हृदय में एकाग्रता का गुण रखना चाहिये, चाहे जैसा काम आरंभ करो, उसे एकाग्रचित्त होकर शुरू करो। उसमें अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी वेद पुराण भी इसके साक्षी हैं।

※ नं० २१ कच्चे ब्रह्मज्ञानी ※

किसी नगर में नाम मात्र के ब्रह्मज्ञानी थे। एक आयुर्वेद

चोरी वैद्य उस नगर में आये। जब वैद्यराज जी जिस किसी के पास जाकर अपनी आजीविका की बात करते तो वे मनुष्य कहते कि "सर्व जगत ब्रह्ममय"। किसी का लेना देना। औषधि रोगादि सब कुछ ब्रह्म ही है। वैद्यराज निराश हो घूमने लगे समयानुकूल उस देश का राजा रोगी हुआ और चिकित्सा भी कराई परन्तु सब औषधियों ने निर्गुण रूप धारण कर लिया ये वैद्यराज भी राजा के पास गये। उस दयामय ईश्वर की कृपा से राजा को आराम होने लगा। तब राजा ने कहा कि वैद्यराज जी कोई ऐसी औषधि दो कि तत्काल गुण दिखा कर शरीर की पुष्टि करे।

तब वैद्य बोले इसके लिए जिस दवा की आवश्यकता है वह आपके नगर में अधिकता से पाई जाती है। राजा बोले, "वह क्या है"।

वैद्यराज ने कहा "कि एक ब्रह्मज्ञानी मंगाइये उसका तेल निकाला जायेगा। राजा बोला हमारे नगर में अनेक ब्रह्म-ज्ञानी हैं। नौकर को बुला कर राजा ने उसे बाजार भेजा। वह नौकर एक दूकानदार से "बोला कि तुम ब्रह्मज्ञानी हो,,। वह बोला "हां,, नौकर ने कहा तुमको राजा बुलाते हैं।

दूकानदार "क्यों,,।

नौकर ने कहा "कि ब्रह्मज्ञानी का तेल निकाला जायगा,,

इस बात को सुनकर दूकानदार घबरा गया और बोला "भाई मैंने तो हंसी की थी। हम क्या हमारे कुनबे के भी ब्रह्मज्ञानी नहीं हैं।,, फिर इस प्रकार दूसरों ने भी कहा कि हमारे बाप दादा भी ब्रह्मज्ञानी नहीं हैं।

अन्त में मन्त्री से जाकर कहा कि तुम भी ब्रह्मज्ञानीहो इस कारण तुम्हारा ही तेल निकाला जायगा।,,तब मंत्रीजी बोले "हम ब्रह्मज्ञानी तो नहीं वरन् अन्नज्ञानी हैं। वे नाम मात्र के ब्रह्मज्ञानी सब बचन से विह्वल होगये और वैद्यराज से क्षमा मांगने लगे। फिर वैद्यराज ने राजा की औषधि करके बल बढ़ा दिया। इस कारण इससे यह शिक्षा मिली कि भक्ती को छोड़ ऐसे ब्रह्मज्ञानी न बनिये जिससे दोनों मार्ग जायें। ब्रह्मज्ञान का मार्ग महा कठिन है इसलिए ईश्वर की भक्ती करो जिससे असार संसार से पार हो जाओ।

ऐसे ब्रह्मज्ञानी आज कल बहुत हैं। तुलसीदास जी ने कहा भी है कि—

❀ दोहा ❀

ब्रह्मज्ञान बिन नारि नर, करहिं न दोसरि बात।
कोड़ी लागि लोभ बस, करहिं विप्र गुरु घात॥

——०——

❀ नम्बर २२ जिन्दगी का शुभकर्म ❀

किसी मुल्क में एक धनाढ्य पुरुष रहता था। उसके तीन पुत्र थे। उन बाप बेटों की सदाचरण की प्रशंसा सब जगह फैल गई। जब बाप का अन्तिम समय आया तो उसने विचारा कि धन अधिक होने के कारण तीनों भाइयों में तकरार होगी इस लिए जीवित ही इस धन को बराबर बराबर बांट दूं। इस तरह विचार करके वह धन तीनों में बांट दिया। अन्त में एक अमूल्य जवाहर बाकी रहा। तब उसके पिता ने कहा कि तुम में से जो कोई अच्छा काम करके दिखलायेगा। यह जवाहर उसी को बतौर इनाम के दिया जायगा। एक दिन बड़े बेटे के पास एक रास्तागीर विश्वास करके रकम रख गया था। उसके हृदय में लोभ की बहुत सी लहर उठीं परन्तु उसने जिन हाथों से उस रकम का रख लिया था उन्हीं हाथों से उसने रास्तागीर को वापिस कर दिया। इस पर रास्तागीर ने कुछ इनाम देना चाहा परन्तु उसने न लिया और यह सारा हाल पिताजी को आकर सुनाया पिताजी ने कहा " हे प्राणप्रिय पुत्र तुम इस एक बुराई से बच गये तो क्या किया। कोई बड़ा भी काम किया है। एक बुराई के न करने पर तुमको इतना हर्ष, शोक है–तुमको अपनी उम्र पर शर्म आनी चाहिए।

इसी प्रकार एक दिन मझले बेटे ने अपने बाप से

आकर कहा कि, मैं एक नदी की तरफ जा निकला और क्या देखता हूं कि एक नव शिशु पानी में वहा जा रहा है। वहां पर नदी अगम थी। एक किनारे पर बैठी हुई बच्चे की माता विलाप कर रही थी। इस दशा को देख कर मुझ पर न रहा गया। यद्यपि यह काम खतरनाक था परन्तु मैं शरीर का ध्यान न रख कर नदी में कूद पड़ा। उस बच्चे की तो जान जा ही चुकी थी परन्तु मेरी जान ईश्वर ने बचाई। अन्त में बच्चे को उसकी माता से मिला दिया।

बाप ने सुन कर कहा कि बेटा भले आदमियों के यही काम हैं बस तुम्हारी यही इनाम है। यदि मनष्य पर इतना भी भलाई का काम न हुआ तो उसका जीवन ससार में व्यर्थ है।

इसी तरह एक दिन छोटे पुत्र ने अपने बाप से कहा " कि मैं एक दिन एक पहाड़ पर चला जा रहा था। रात आधी के करीब हो गई थी, मेघ घटा छाई हुई थी। वहां हाथों हाथ कुछ दिखाई नहीं देता था और भय अत्यन्त था। मेरे साथ में न आये थे और न मेरा कोई भाई ही था परन्तु वह एक सर्वशक्तिमान परमात्मा मेरा साथी था। इतने ही में बिजली के प्रकाश से रास्ता में मनुष्य दिखलाई दिया जो कि खार के मुंह पर सो रहा था, मानो उसके भाग्य उसको खड़े रोते थे और उसके सर पर मौत खेल रही थी। एक ही करवट में उसका काम तमाम होजाता। इतने ही में फिर बिजली

चमकी तो मैंने उसकी शक्ल देखी तो वह मेरा खून का प्यासा दुश्मन निकला। यदि मैं चाहता तो उसे थोड़ी ही देर में मार सकता था। परन्तु मुझे ईश्वर से भय हुआ और दिल ने भी आवाज दी मरते हुये को बेरहमी से मारना ये महा अधर्म है। तुम्हारी परीक्षा का यही समय है यदि उत्तीर्ण होना चाहो तो धर्म मार्ग ग्रहण करो।

बस यह विचार करते ही मैं उसको मौत के मुंह से उठा लाया और एक चौरस जगह पर सुला दिया और मैंने अपना मुंह इस कारण ढक लिया कि ये जागने पर मुझे देख कर शर्मिन्दा न हो।

बाप ने यह सुन कर उसे छाती से लगा लिया और बहुत प्रशंसा की कि बेटा तुम संसार में यशस्वी हो यह सुन जवाहरात उसे दे दिया।

इससे यह शिक्षा मिली कि दुश्मन के साथ भी धर्म का बर्ताव करो।

किसी कवि ने कहा है—

॥ दोहा ॥

जो तो कूं कांटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।
तो कूं फूल के फूल हैं, वा को हैं तिरशूल ॥

नं० २३ धैर्य

यह भी मनुष्य में एक विलक्षण गुण है। जितने कठिन से कठिन काम हैं वे धैर्य से ही होते हैं। अधैर्य मनुष्य कर्त्तव्य को न सोच कर अकर्त्तव्य कर डालता है और पीछे पछिताता है इसलिए यह कहावत प्रसिद्ध है कि—

बिनो विचारे जो करे, सो पाछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हंसाय॥

धीरज विहीन पुरुषों का कार्य कभी सफल नहीं हो सकता है इस लिये हर एक काम में एकाग्रता और धीरज धरना आवश्यक है। जैसे उदाहरण है कि—

किसी मनुष्य ने एक सिंह का बच्चा पाला था। उस पर वह इस तरह प्यार करता था मानों वह एक घर ही का आदमी है। धीरे २ वह बच्चा पढ़ पूरा सिंह हो गया परन्तु उसे यह ज्ञान नहीं था कि स्वामी वैसे ही रुधिर मांस का पिंड है जैसे कि मैं दिन प्रति दिन प्रेम पूर्वक खाता रहता हूं। वह शेर अपने स्वामी को देखकर आता और हाथ पांव चाटने लगता। एक समय एक कुर्सी पर उसका स्वामी बैठा किताब पढ़ रहा था और ठंडी २ हवा चल रही थी।

सिंह भी उसकी बांई ओर बैठा हुआ था। वह मनुष्य सिंह को देख कर प्रसन्न हो रहा था और विचार कर रहा

था कि मेरे समान संसार में कोई नहीं है क्योंकि जिस सिंह के डर से दुनियाँ कांपती है वही सिंह आज मेरे साथ बकरी की भाँति पूंछ हिलाये फिरता है। इस गर्व के करते ही नतीजा मिलता है कि सिंह उसके हाथ को चाटने लगा। मतलब यह है कि सिंह को हाथ चाटते २ आध घण्टा हो गया। जब उसकी जीभ की रगड़ से हाथ में कुछ रुधिर चमचमा आया और सिंह को कुछ स्वादिष्ट मालूम पड़ा। जब स्वामी के हाथ में तकलीफ मालूम हुई तो अपना हाथ खींचा। सिंह ने पहिले तो हाथ न खींचने दिया परन्तु जब उसने हाथ को झटका तो सिंह गरज उठा। उसका स्वामी फौरन ताड़ गया कि सिंह की दृष्टि बदल गई है। अगर मैं हाथ को खींचता हूं तो यह मार कर ही खा जायगा। इस कारण धीरज से काम लेना चाहिये। यह विचार कर पुस्तक की ओर मुंह करके अपने नौकर को बुलाया और कहा कि जल्दी आओ और बंगले में भरी हुई दुनाली बन्दूक रखी है सो उसे लाकर चुपके से सिंह के सीना पेट में मारो। नहीं तो यह अभी मुझे मार डालेगा। यह सुन कर नौकर भी थर्रा गया और वह धैर्य को धारण कर बंगले में से बन्दूक ले आया। और डेढ़ हाथ की दूरी से सिंह के पेट पर ऐसी गोली मारी कि वह मछली की भाँति भूमि पर पड़ा ही रह गया और दूसरी गोली सीने पर ऐसी मारी कि सिंह ने साँस तक भी न ली और नौकर ने स्वामी के प्राण बचा लिये। तब स्वामी बोला "कि जान बची और लाखों पाये"।

अब देखिये कि यदि स्वामी पहिले ही अधैर्य होकर हाथ खींचता तो सिंह एक पल में ही मार कर खा जाता। श्रुति पुराण कवि और पण्डित जनों ने भी यह उच्चारण किया है कि पूर्व राजा तथा देश की प्रधान उन्नति का कारण धैर्य ही है। इस लिए जिस काम को आरम्भ करो प्रेम पूर्वक एकाग्रता के साथ धीरज धारण करके करो तो उसमें अवश्य ही सफलता प्राप्त होवेगी। जैसे किसी कवि ने कहा है कि—

कैसे काज है है हाय घात सब बूढ़ि जै है।
कादरता ऐसी कबों भूलि हू न करिये॥
करिके विवेक कौ सुसाज निज जी में पचि।
रचि के उपाय निज व्याकुलाई हरिये॥
ईश्वर को याद कर जनैये पुरुषारथ को।
दत्त कहें काहू के न जाय पाँम परिये॥
हारिये न हिम्मत सुकीजै कोटि किस्मत को।
आपति में पति राखि धीरज को धरिये॥

धैर्य तथा अभ्यास से कठिन से कठिन काम भी सरल हो जाते हैं।

जैसे किसी ने कहा है कि—

॥ दोहा ॥

करत करत अभ्यास के, जड़ मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होय निशान॥

———o———

नं० २४ बेश कीमती राम नाम हीरा

एक महात्मा विद्या तथा राम नाम के प्रभाव से अति पूजित था। इसको देख कर एक गंवार मनुष्य ने विचार किया कि यदि मैं इस महात्मा का शिष्य हो जाऊंगा तो वे परिश्रम के आराम प्राप्त करके गुणवान तथा यशस्वी हूंगा।

वह महात्मा के पास गया फिर दण्डवत प्रणाम करके बोला कि हे महाराज! मैं आपका शिष्य होना चाहता हूं। महात्मा ने बहुत इनकार किया परन्तु वह मनुष्य हठ पड़ गया और चरणों में गिर पड़ा तो महात्मा जी ने उसको अपना शिष्य बना लिया और कहा कि मैं तुमको एक एसा गुरु मन्त्र दूंगा कि जिसको संसार में कोई विरला ही जानता हो। महात्मा की इन बातों को सुन कर वह मनुष्य बहुत प्रसन्न हुआ। एक दिन महात्मा जी ने उसके कान में मंत्र दिया कि—

"राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे,
सहस्त्रनाम ततुल्य राम नाम वरानने।
हरे कृष्णा हरे कृष्णा कृष्णा कृष्णा हरे हरे।
हरे रामा हरे रामा रामा रामा हरे हरे॥
ओ३म् नमो भगवते वासदेवाय नम.॥

शिष्य इन राम नाम के मन्त्रों को पाकर बहुत खुश हुआ और बोला कि—

तुलसी संत सुअम्ब तरु, फूल फलहिं पर हेत।
इतते वे पाहन हने, उतते वे फल देत॥

अब एक दिन शिष्य गंगा स्नान को गया और जप लौट कर आया तो बहुत से मनुष्यों को उक्त मन्त्र उच्चारण करते देखा तो अपने मन में विचार किया कि महात्मा झूठा है, मुझे धोखा दे दिया है कि इन मन्त्रों को कोई नहीं जानता । इनको सारा संसार जानता है । यह कहकर महात्मा के पास जाकर सारा वृतान्त सुनाया तो महात्मा जी ने एक हीरा निकाल कर दिया और कहा कि इसे तुम साग वाली, पंसारी और महाजन के पास नम्बर वार ले जाना और कीमत की जाँच कराके लाना परन्तु बेचना नहीं । शिष्य उसे लेकर चल दिया और साग वाली को जाकर वह हीरा दिया । उसने कहा कि यह काँच की गोली है । बालकों के खेलने को अच्छी है इसलिए इसका पाव सेर साग ले जा ।

शिष्य उसे लेकर फिर पंसारी के पास गया तो पंसारी ने कहा कि यह बटियाओं में पड़ी रहेगी इस लिये इसका आध सेर नमक ले जा । परन्तु शिष्य इनकार करके चल दिया । और फिर सुनार के पास पहुंचा तो उसने कहा कि इसके ५०) दे सकते हैं फिर वह महाजन के पास गया महाजन ने ५००) देने का इकरार किया परन्तु उसने ५००) लेने से इनकार किया और हीरा को लेकर महात्मा के पास पहुंचा । महात्मा ने हंसकर कहा कि अब तुम इसे फलां जौहरी के पास ले जाना । शिष्य ने ऐसा ही किया तो जौहरी ने उसे १०००)

देना मंजूर किया। परन्तु शिष्य फिर लौट आया तब महात्मा ने कहा कि बच्चा अपने प्रश्न का उत्तर तो समझ गये शिष्य ने कहा कि नहीं समझा तो महात्मा बोले कि प्रमाण सहित उत्तर तुमको मिल गया कि मैंने जो तुमको दिया था सो अमूल्य हीरा था। इसको परख सिवाय जौहरी के कोई नहीं जानता। इसी प्रकार यह राम नाम हीरा अमूल्य है। इसकी परख भक्त ही जानते हैं। सब नहीं जानते। कोई साग वाली की भांति, कोई पंसारी की भांति, कोई सुनार की तरह और कोई महाजन की तरह अलग अलग हीरा रूपी राम नाम के महत्व को जानते हैं।

महात्मा के इन प्रमाणिक बचनों को सुन कर शिष्य के हृदय के कपाट खूटे और हाथ जोड़कर चरणों में गिर पड़ा और बोला कि सत्य है—

बिनु गुरु होय कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु।
गावहिं बेद पुराण, सुख कि लहहिं हरि भगति बिनु॥

नं० २५ होनहार होकर रहती है

इस संसार में चाहे कोई कितना ही प्रयत्न करे परन्तु जो होनहार होती है वह होकर रहती ही है। ज्योतिष द्वारा भविष्य की होनहार घटना से परिचित हो जाने पर भी मनुष्य चाहे

कोटानिकोट उपाय करे परन्तु वह होकर ही रहती है। जैसे दृष्टान्त है कि जब परीक्षित के पुत्र जनमेजन राज्याधिकारी थे तो उन्होंने एक दिन पंडितों को बुला कर भविष्य की बात पूछी तब पंडित जनों ने कहा कि "हे महाराज भविष्य में आप कोढ़ी होंगे। अब आप चाहे जितना प्रयत्न करें परन्तु यह होनहार अमिट है।,, तब जनमेजन ने कहा—

"इसके बचने के उपाय बतलाइये।,, यह सुन कर पंडितों ने राजा को चार बातें बतलाईं। (१) आपके नगर में एक घोड़ा बिक्री के लिये आवेगा आप इच्छुक होकर न खरीदिये परन्तु तुम अवश्य ही उसे खरीदोगे। यह होनहार है मिट नहीं सकती। (२) दूसरे उस घोड़े पर सवार होकर दक्षिण दिशा को आखेट के लिये नहीं जाना। परन्तु तुम इस बात को नहीं मान सकते। (३) तीसरे दक्षिण दिशा में तुम को एक नव युवक कन्या मिलेगी उसको साथ न लाना। परन्तु आप इसको भी नहीं मान सकते। (४) चौथे यज्ञ में वृद्ध ब्राह्मणों को बुलाना युवकों को नहीं। आपके कोढ़ी होने के चार कारण हैं और अमिट हैं। राजा ने यह सुन कर कहा कि कोढ़ के चार कारणों से परिचित हो गया। अगर मैं इन मार्गों पर ही पदार्पण न करूंगा तो कोढ़ी किस तरह हो जाऊंगा ऐसे तो पूर्वज ही थे जो परस्पर लड़कर मर गये। तब उसके गुरू ने कहा कि "राजा तुम होनहार से परिचित होने पर भी नहीं टाल सकते हो।

यह बात थोड़े ही दिनों में प्रत्यक्ष हो जायगी। अब धीरे२ कालानुसार एक व्योपारी आया। राजाको यह घोड़ा अद्वितीय लूम पड़ा और इच्छुक होगया। उसी समय गुरू आदि ब्राह्मणों ी बताई हुई बात स्मरण होगई। परन्तु चेष्टा से लोभ उत्पन्न ता है। और लोभ से शुद्ध बुद्धि नष्ट हो जातीहै। इसी प्रकार जा चेष्टा में मग्न होकर तत्वज्ञान को भूल गया। और मन के शीभूत होकर विचार किया कि गुरु के बताये हुये तीन कामों ो न करूंगा। घोड़ा तो अवश्य ही खरीद लेना चाहिये। यह चार कर उस घोड़े को खरीद लिया। इसी प्रकार राजा के में आया कि दक्षिण दिशा को भी देखना चाहिये वहां जो व युवक कन्या मिलेगी उसे साथ न लाऊंगा। उसी ड़े पर सवार होकर राजा दक्षिण दिशा को चल दिया। वहां र उसको बताई हुई नव युवक कन्या मिली। राजा उसके रूप देखकर मोहित होगया और उसने मन रूपी अश्व पर सवार ना चाहा किन्तु मन ही राजा की बुद्धि पर सवार हो लिया। र हृदय के सारे तत्व ज्ञान को भुला दिया, अन्त में राजा स कन्या को साथ ही ले आया और उसको अपनी सह- मिणी स्वीकार कर लिया और धर्म सहित प्रजा पालन में ग गया। थोड़े दिन पश्चात जब होनहार के दिन आए तो जा ने विश्व विजय के लिए अश्व मेध यज्ञ आरम्भ किया र गुरु आदि ब्राह्मणों की बात पर विचार करके वृद्ध ब्राह्मणों बुलाया। परन्तु होनहार तो अमिट है। जब यज्ञ में वृद्ध

ब्राह्मण दांत न होने की वजह से स्वाहा को स्वाहा बोलने लगे तो राजा ने क्रोधित होकर उनको यज्ञ से निकाल दिया और युवक ब्राह्मणों को बुलाया. जब अश्व लिङ्ग पूजन का समय आया तो रानी के हाथ पर अश्व का लिंग रखा गया। यह चरित्र देख कर सारे यज्ञकर्ता युवक ब्राह्मण हंस पड़े। राजा को उस समय अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हुआ और तलवार लेकर सब ब्राह्मणों का सर उड़ा दिया। ब्राह्मणों का सिर उड़ाने के कारण राजा ब्रह्म हत्या का दोषी हुआ और ब्रह्महत्या के दोष से राजा के शरीर में कोढ़ पैदा होगया।

तब उन्हीं गुरु आदि ब्राह्मणों ने कहा " जनमेजय होनहार अमिट है या नाशवान। तुमको प्रत्यक्ष मालूम पड़ा है या नहीं। तुम होनहार से जानकार होने पर भी उससे न बच सके। अब आप बतलाइए कि आप मूर्ख हैं या आपके पुरखा राजा यह सुन कर बहुत लज्जित हुआ। फिर गुरु जी ने कोढ़ को दूर करने के लिये राजा को महाभारत की कथा सुनाई और कह दिया कि तुम महाभारत को किसी बात को झूंठी न बतलाना। अन्त में कथा सुनते २ उसके शरीर का कोढ़ दूर होगया। परन्तु जब यह सुना कि भीमसेन ने हाथी आकाश में फेंक दिये। राजा इसको झूंठी समझ कर नाक सिकोड़ गया। बस उसके नाक ही में कोढ़ रह गया।

भावार्थ॥

इससे स्पष्ट होता है कि चाहे कोई कितना ही परिश्रम

करे परन्तु होनहार हो कर ही रहती है ।

॥ दोहा ॥

होनहार होतव्यता, तैसी मिले सहाय ।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहां लै जाय ॥

नं० २६ नेक कमाई की बरकत

प्राचीन काल में भारतवर्ष में एक धर्मज्ञ, प्रजा पालक प्रतापी और उन्नतिशील राजा था। अहिंसा प्रिय दया का मानो चन्द्रमा ही था और वह अपनी प्रजा को प्राणों के समान प्रिय समझता था। चाहे कैसा ही ब्राह्मण उसके दरवाजे पर आता, उसे दान देता और आदर सत्कार करता था। यही कारण था कि भारतवर्ष उस समय उन्नति के शिखर पर था और यह सोने की चिड़िया कह कर पुकारा जाता था। उसी समय में एक वन में एक विद्वान ब्राह्मण रहता था। परन्तु वह महा गरीब थो और वेदानुसार धन उपार्जन करके अपनी जीविका व्यतीत करता था। एक उसके बारह वर्ष की कन्या थी। एक दिन ब्राह्मणी ने कहा " कन्या विवाह के योग्य है इस कारण इसका कुछ प्रबन्ध होना चाहिए।,, ब्राह्मण बोला कि " कन्या तो विवाह के योग्य है परन्तु उसके विवाह के लिए धन कहां से एकत्रित हो।,,

तब ब्राह्मणी ने कहा "महाराज आपका यश चारों ओर फैल रहा है क्योंकि आप पूर्ण धुरन्धर पण्डित हैं और भिक्षा माँगना ब्राह्मण का मुख्य धर्म है। इसलिये आप किसी राजा महाराजा से भिक्षा मांगे तो आप से कोई भी मना नहीं कर सकता। ब्राह्मण को यह राय बहुत अच्छी मालूम पड़ी और खाने को भोजन लेकर अपने देश के राजा के पास गया। द्वारपाल ने राजा को ब्राह्मण के आने का समाचार सुनाया तो राजा सिंहासन को छोड़ कर दरवाजे पर आया और ब्राह्मण को आदर पूर्वक सभा में ले गया। और सिंहासन पर बिठला कर कुशल क्षेम पूछी। तब ब्राह्मण ने कहा कि "जब आप ऐसे धर्मज्ञ, शील राजा हैं तो किसकी सामर्थ है जो आपके सामने पड़कर प्रजा को कष्ट पहुंचाये परन्तु आप बतलाइये कि राज्य में कोई तरह की अशान्ति के कारण आत्मा को क्लेश तो नहीं है। तब राजा ने यह कहा कि जिस देश में विद्वान सतोगुणी, वेदानुवादी महात्मा निवास करते हैं, वह देश मानो रत्नों की खान तथा सुख ऐश्वर्य का घर है यह वेदों ने कहा है—

बाद कुशल क्षेम के राजा ने कहा कि "हे नाथ! आप अपने आने का कारण बतलाइये। तब ब्राह्मण ने कहा कि मैं केवल भिक्षा ही की इच्छा से आयो हूँ। राजा ने यह सुनकर अपने धनकोषाधिकारी को बुलाकर आज्ञा दी कि इन ब्राह्मण देव को दससहस्र मुद्रा दो। ब्राह्मण ने सुनते ही उत्तर दिया कि

हे कृपानाथ यह तो थोड़ा है। फिर राजा ने कहा अच्छा बीस हजार स्वर्ण मुद्रा दो।,, फिर भी ब्राह्मण ने कहा हे राजन् यह भी थोड़ा है। अब राजा ने धीरे २ ब्राह्मण का दास बनना अंगीकार किया। और अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया। तब भी ब्राह्मण ने यह ही कहा "कि कृपानिधि यह तो बहुत ही थोड़ा है। यह सुनकर राजा ने कहा कि" मैं शरीर तक आप को दे चुका अब मेरे पास देने को क्या शेष है।, तब ब्राह्मण देव बोले " कि आप मुझे अपना वह धन दीजिये जो प्रजा के हितार्थ धर्म पूर्वक स्वयं परिश्रम करके कमाया हो। राजा ने ब्राह्मण की आज्ञा शिर धारण की। और नम्रता पूर्वक कही "कि कल तक आप ठहरिए। ब्राह्मण ने यह बात स्वीकार कर ली। उसी रात को राजा अपना स्वरूप बदल कर प्रजा के सुख दुख की परीक्षा करने के लिए और स्वयं परिश्रम से धन पैदा करने के लिए निकला तो क्या देखता है कि शहर के सारे मनुष्य सुख की नींद सो रहे हैं। परन्तु एक लुहार अपनी दुकान खोले स्वयं परिश्रम कर रहा है। राजा ने उसके पास जाकर कहा कि" हे सज्जन यदि आपके पास कुछ अधिक काम है तो हमें बतला दीजिये।,, यह सुन कर लुहार ने कहा कि " मेरे पास काम तो साधारण ही है परन्तु तुम इस काम को पूरा कर दीजिए। हम तुम्हें चार पैसे देंगे। राजा ने उस बात को स्वीकार कर लिया। लुहार अपने घर पर जाकर सो गया। राजा ने उस काम को प्रात काल तक पूर्ण कर दिया। लुहार

देखते ही सुवह को बहुत प्रसन्न हुआ और चार पैसे के बजाय पांच पैसे देने लगा परन्तु राजा ने कहा कि "मुझसे चार पैसे नियत हुये हैं।,,

इस लिये मैं चार ही पैसे लूंगा। लुहार से चार पैसे लेकर राजा चल दिया। और नित्य प्रति के अनुसार दरबार जोड़ा। कुछ समय के बाद वह ब्राह्मण भी वहां आ गया। ब्राह्मण को राजा ने चार पैसे दिये। और ब्राह्मण ने प्रसन्नता पूर्वक ले लिये और तुरन्त ही घर का मार्ग लिया। ब्राह्मणी ने ब्राह्मण को आता देख कर बहुत हर्ष मनाया और ब्राह्मण से पूछा कि भिक्षा में क्या धन लाए हो।

तब ब्राह्मण ने कहा चार पैसे तब ब्राह्मणी ने चार पैसे छुड़ा कर आंगन में फेंक दिए और ब्राह्मणी सोरही। प्रातकाल जब वे दोनों उठे तो क्या देखते हैं कि उन चार पैसों के स्थान पर चार वृक्ष खड़े हुए हैं और उनकी पत्तियां स्वर्ण की और फल फूल मानों जगमगाते हुए हीरा मोती हैं। ब्राह्मणी और ब्राह्मण यह देख कर बहुत खुश हुए और इन वृक्षों से धन लेकर अपनी कन्या का विवाह कर दिया और नित्यप्रति अत्यन्त पुण्य दान किया। अन्त में वह ब्राह्मण एक धनाढ्य पुरुष होगया।

उसके धनवान होने का समाचार उसी राजा के पास गया। राजा ने सुनकर आश्चर्य किया और परीक्षा के निमित्त ब्राह्मण के घर आया। तब ब्राह्मण ने प्रश्न किया कि आपके

पास यह धन कहां से आया।

तब ब्राह्मण ने कहा कि हे राजन् तुम्हारे नेक कमाई के चार पैसे मुझे फलीभूत हुए हैं और चारों वृक्षों को उखाड़ कर राजा को जड़ में चार पैसे ही दिखला दिए।

राजा को विश्वास हो गया कि अवश्य ही नेक कमाई की बरकत है।

॥ भावार्थ ॥

इससे सिद्ध होता है कि परिश्रम द्वारा जो धन उपार्जन होता है वह निरन्तर उन्नतिकारी होता है।

नं० २७ शरीर जीव का साथी है या स्वार्थी

मनुष्य का शरीर पंच भूतों से मिल कर बनता है। अन्त में वह भी मिट्टी में मिल जाता है। मनुष्य का गुण ही पड़ा है इसका मांस भी काम में नहीं आ सकता। खाल से बाजे नहीं मढ़े जाते हैं और हड्डों के आभूषण भी नहीं बनते हैं। अर्थात् मनुष्य का मरने के पश्चात कोई भी अंग काम में नहीं आ सकता। यहां तक कि इसको श्वान भी नहीं खा सकते। अस्तु निरन्तर श्री पुरुषोत्तम भगवान का स्मरण करे था परोपकार ही करे। भवसागर से पार होने का यही एक सुगम उपाय है। अपने शरीर पर मनुष्य को भूल कर भी गर्व न करना चाहिए। क्योंकि ये स्वार्थी है क्योंकि भूखा रहने

पर तो मान बिगाड़ता है और मर जाने पर दृष्टि को बिगाड़ता है। इस परे एक दृष्टान्त है कि—

एक बहेलियो एक दिन तीर कमान हाथ में लिए हुए बन में एक नदी के पास पहुंचा जिसमें एक प्यासी हिरनी अपनी प्यास बुझा रही थी। बहेलिये ने हिरनी को देख कर उसके बदन में तीर मार दिया। हिरणी तीर के लगते ही भाग गई और आगे बहुत दूर निकल कर एक झाड़ी में बैठ गई।

इधर बहेलिया ने विचार किया कि यह हिरणी कहीं न कहीं पर गाफिल होकर अवश्य ही गिर पड़ेगी। इस कारण आगे चल कर देखना चाहिए। जिस समय हिरनी भागी थी उस समय उसके शरीर से रुधिर टपकतो जाता था। वह बहेलिया उस रुधिर के खोज पर चलने लगा। चलते २ वह रुधिर ठीक झाड़ी ही के पास बन्द मालूम पड़ा। यानी झाड़ी से आगे रुधिर का निशान न था। बहेलिये ने कहा कि रुधिर से इस झाड़ी तक हिरनी का पता चलता है। आगे रुधिर का निशान नहीं है। इस से सिद्ध होता है कि हिरनी अवश्य ही इस झाड़ी में मौजूद है। आगे बढ़ कर देखा तो हिरनी झाड़ी में बैठी हुई है। बहेलिया ने तुरन्त ही उसके मारने को तीर सम्हाला। त्योंही हिरनी बोली कि "थोड़ी देर ठहरा,,। पीछे आपकी इच्छा हो सो करना। परन्तु मेरी एक बात का उत्तर दो। बहेलिये ने यह सुन कर कहा कि " अच्छा पूछो ,,तब हिरनी

बोली कि " तुम जो जीव हिंसा करते हो इस पाप में तुम्हारे घर वाले भी शामिल हैं या नहीं । बहेलिया ने कहा कि " जब मैं नित उनकी उदर पूर्ति करता हूं तो वे मेरे साथी क्यों नहीं होंगे । तब हिरनी ने कहा कि यह बात तुम्हारी असत्य है। संसार में कोई किसी का नहीं है । वेद भी यही कहता है कि " अहिंसा परमोधर्म " तब बहेलिया ने कहा " कि तुम मुझे प्रमाण सहित समझाओ कि संसार में कोई किसी का नहीं है। उस समय हिरनी ने उसे प्रमाण देकर समझाया कि जब मेरे शरीर में चोट पहुंच जाती तो मैं चाट कर या भूखी प्यासी रह कर अपनी चोट में आराम पहुंचाती और भूख लगने पर दस दस कोस तक जाकर उदर पूर्ति करती और खून में पानी की कमी होने के कारण जब प्यास लगती तो मैं दुख सह कर बीस २ मील पर जाकर नदियों में प्यास बुझाती थी ।

खून में पानी की कमी से जब मैं नदी में पानी पी रही थी तो तुमने तीर मार दिया । तो भी मैं इस शरीर की रक्षा के लिए यहां आई परन्तु इस शरीर के स्वार्थी रुधिर ने ही तुमको मेरा पता बतला दिया और तुम्हें यहां तक ले आया । अब बतलाओ जब शरीर भी अपना साथी नहीं है जिसके लिए जीव दुख सह कर परिश्रम करता है। तो घर वाले किस तरह साथी होंगे । उसी दिन से बहेलिया वैरागी हो गया ।

॥ भावार्थ ॥

इसका भावार्थ यह है कि सम्पूर्ण संसार स्वार्थी है।

कोई किसी का निःस्वार्थ प्रेमी नहीं है।

———०———

लोभ से बनावटी बातों पर विश्वास न करो

एक बहेलिया वृक्ष पर बैठी हुई एक चिड़िया को जाल में फंसा कर ले आया और मार्ग में हर्ष पूर्वक जा रहा था। चिड़िया ने कहा कि " तुम मुझे ले जा कर अवश्य ही मारोगे। इस से मैं मरने से पहिले ही एक शिक्षाप्रद बात बतलाती हूं कि लोभ से कभी किसी की बनावटी बातों पर विश्वास न करना। " बहेलिया ने कहा " बहुत अच्छा। "

थोड़ी दूर पर चल कर चिड़िया ने फिर कहा " कि मैं इस समय मोती निकालूं तो इस लिए तुम मुझे कुछ ढीला करदो। बहेलिया चिड़िया की शिक्षाप्रद बातों को भूलकर लोभ में आकर उसे ढीला कर दिया। वह तुरन्त ही उड़ कर पेड़ पर बैठ गई और बोली कि तुम तो मेरी बात को थोड़ी ही देर में भूल गए। बहेलिया यह सुन कर लाचार हो गया और अपने घर लौट आया

॥ भावार्थ ॥

इससे यह भावार्थ निकला कि "कभी किसी की लोभमयी बातों में न आना चाहिए क्योंकि लोभ की नाव डूबती है।"

नं० २९ सांसारिक नाता सत्य है या असत्य

महाराज परीक्षित ने पूछा कि हे मुनिनाथ! सांसारिक जो नाता है वह सत्य है या असत्य। इस पर शुकदेव जी बोले कि ईश्वर के साथ जो नाता है वही सत्य है। और सब नाते असत्य हैं। जैसे कि—

एक मनुष्य एक महात्मा के पास चेला होने के लिए गया। महात्मा ने उसको अपना चेला बना कर प्राणायाम चढ़ाना तथा उतारना और मरे हुए को जीवित करना यह सब विद्यायें सिखला दीं। एक दिन महात्मा ने कहा कि संसार में न कोई किसी का बाप है न माता, सब स्वार्थी हैं। यह जीव तो आदि से ही सनातन है।

जब तक संसार में जीवन है तभी तक का ये नाता है। यह सुनकर चेला बोला कि "हे नाथ! मेरे तो बाप तथा माता, भाई, कुटम्बी, स्त्री, और बहिन सब अति प्रिय हैं। और वे भी मुझे प्राणों से प्यारा समझते हैं। महात्मा ने कहा कि बच्चा, यह स्वार्थी प्यार है।" परन्तु चेला ने इस बात को न माना। तब महात्मा ने कहा कि तुमको हम परीक्षा करके दिखला सकते हैं कि कोई किसी का नहीं तुम अपने घर जाकर प्राणायाम चढ़ा लेना। तब मैं तेरे माता पिताओं की परीक्षा लूंगा। एक जहर के कटोरे को जब तेरा कोई न पीवेगा तब मैं पी लूंगा और प्राण त्याग दूंगा। फिर

तुम धीरे २ अपने प्राण उतार लेना और विद्या से मुझे भी जीवित कर लेना। महात्मा की इस बात को सुन कर शिष्य चल दिया और अपने घर प्राणायाम चढ़ा कर लेट गया। उसके घर वाले उस पुत्र को मरा हुआ जान कर चिल्लाने लगे। पीछे से वही महात्मा वहां आए और उसके घर वालों को बहुत ही समझाया। परन्तु उसकी समझ में कुछ नहीं आया। तब महात्मा ने सब कुटम्बियों के सामने एक कटोरा लेकर पानी में जहर मिला दिया। और उसकी माता से कहा कि "पुत्र के साथ माता का अतुलनीय प्रेम होता है।"

इसलिए यदि तुम अपने पुत्र को जीवित चाहते हो तो इस जहर के प्याले को पी लीजिए। तुम मर जाओगी और तुम्हारा पुत्र बच जायगा। तुम्हारे मरने का समय भी है यह सुन कर माता ने उत्तर दिया कि मैं इस प्याले को नहीं पी सकती। इसके मरने से क्या हुआ, मेरे उदर से और पुत्र ही उत्पन्न हो जांयगे। मैं अपने प्राण क्यों दूं। हम तो लकीर के फकीर हो कर शोक मनाते हैं। फिर महात्मा ने पुत्र के पिता से वही प्रश्न किया। पिता ने कहा कि "यह पुत्र नहीं था पूर्व जन्म का दुश्मन था जो बदला लेकर चला गया। मैं इसके पीछे वृथा ही क्यों प्राण दूं। मेरे और ही पुत्र उत्पन्न हो जाँयगे। इसके पश्चात महात्मा ने उसकी बहिन से प्याला पीने को कहा परन्तु उसने भी इनकार कर दिया कि मेरे और भी भाई उत्पन्न हो जावेंगे।

फिर महात्मा ने उसकी स्त्री को बुला कर समझाया। स्त्री का धर्म है कि पति की सेवा करे। इसलिए तुम पति के कार्य में प्राणदान करो और स्वर्ग को जाओ। इस पर स्त्री ने कहा कि जो आया है सो अवश्य ही जायगा। इसमें कोई संशय नहीं। इस कारण पति के मरने का मुझे कोई दुख नहीं है। मरना तथा जन्म लेना यह तो सांसारिक नियम है। हानि, लाभ, जीवन, मरण, व यश और अपयश सब विधाता के हाथ हैं। इस लिए मैं अपने प्राण नहीं दे सकती। महात्मा इन बातों को सुन कर हंसे और कहा कि " कुटम्बियो तुम लोगों में से कोई इस प्याले को पी सकता है। सब ने कहा " नहीं " जब इसके माता पिता ने ही नहीं पिया तो हम क्यों कर पीवें।,, महात्मा ने बात की बात ही में उस प्याले के जल को पी लिया और प्राण त्याग दिए। इसके बाद उस शिष्य ने धीरे २ अपने प्राण उतार लिए और परीक्षा देख कर हर्षित हुआ। उसने अपनी विद्या के बल से महात्मा को भी जिला लिया। तब महात्मा ने कहा " बच्चा सांसारिक नाता सत्य है या असत्य। "

चेला लज्जित हो गया और उसी दिन से मोह त्याग विरक्त होगया।

॥ भावार्थ ॥

जीव और ईश्वर के साथ में नाता है वह सत्य है और

सब सांसारिक नाते असत्य हैं। और जगत के सब पदार्थ मिथ्या तथा सार रहित हैं। ये मृग तृष्णा जल के समान हैं और ठूंठ में मनुष्य तथा सीप में चांदी मालूम होना ये सब मिथ्या है। वास्तव में यह सत्य नहीं परन्तु अज्ञानता के कारण सत्य प्रतीत होते हैं। बस यही संसार का हाल है। किसी कवि ने क्या ही अच्छा लिखा है—

॥ सवैया

वारिध तात हते विधि से सुत, सूरज सोम सहोदर दोऊ ।
रंभा, रमणी भगिनी जो भई, मघवा मधुसूदन से बहनेऊ ।
तुच्छ तुषार इतौ परिवार, भयौ न सहाय कोई विपति परेऊ ।
त्यौ कहिके जल मांहि गिरयौ, सुख सम्पति में सबको सबकोऊ ॥

—o—

नं० ३० भक्त बड़े हैं भगवान से

एक बार अरब के बादशाह को पुत्र मर गयो तो बादशाह को बहुत शोक हुआ और शहजादे की माता तो शोक में पागल हो गई। अन्त में सात दिन बीतने पर बादशाह ने एक नाव में तेल भरवा कर उस शहजादे को रख दिया और अपना दरबार जोड़ा। उसमें बहुत से फकीर, मौलवी, और काजी मातमपुरुषी के लिए आए। तब बादशाह ने प्रश्न किया कि कुरान शरीफ में लिखा है कि फकीर उसी का नाम है जो मरते को जिन्दा तथा जिन्दे को मार दे। इस कारण

एक साल के अन्दर ऐसा ही फकीर लाओ। नहीं तो मैं सब मौलवी फकीरों को कत्ल करा दूंगा। बादशाह की इन बातों को सुन कर सभा में सन्नाटा छा गया। और सब काठ की मूर्ति के समान देखने लगे। काटो तो उसके शरीर में रुधिर नहीं और अपनी जान बचाने का प्रयत्न करने लगे। फिर उन्होंने ऐसे फकीर की तलाश को देश २ में भ्रमण करने के लिए नेता चुने।

भारतवर्ष में जो नेता आया था उसका नाम फैजी था। हर एक नेता के खाने को तथा घर के प्रबन्ध को बादशाह ने रुपये दिये। जिस समय फैजी भारतवर्ष में आयो था उस समय यहां अकबर बादशाह का शासन-प्रबन्ध था। फैजी दिल्ली गया और बादशाह को सारा वृतान्त सुनाया तब अकबर ने अपने प्रधान प्रतिनिधि बीरबल को बुलाकर फैजी का सारा सन्देशा सुना दिया तब बीरबल ने कहा कि हमारे देश में ऐसे अनेक फकीर होंगे जो मरे को जिन्दा कर दें परन्तु मैं ऐसे तीन फकीरों का नाम जानता हूँ। (१) पहिले श्रीवृन्द्रावन में सूरदास जी (२) श्री अयोध्या जी में गोस्वामी तुलसी दास जी (३) तीसरे शिवपुरी (अर्थात् काशी जी में महात्मा कबीरदास जी, यह सुन कर बादशाह ने एक पत्र लिख कर फैजी को दे दिया और वृन्द्रावन में सूरदास जी के पास भेज दिया।

फैजी ने वहां जाकर सूरदास जी को बादशाह

का पत्र दिया महात्मा जी ने पत्र पढ़ कर उत्तर दिया किमधु-सूदन श्री वृन्द्रावन विहारी की कृपा से यह काम तुच्छ है, परन्तु मैं चौरासी कोस व्रजमंडल को त्याग कर दूसरी जगह नहीं जा सकता हूं यदि आप शाहजादे को वृन्द्रावन लाओ तो सब काम सिद्ध हो सकता है।

यह सुन फैजी अयोध्या पहुंचा और वही बादशाही पत्र महात्मा तुलसीदास जी को दिया। पत्र को पढ़ते ही महात्मा जी ने उत्तर दिया कि मेरा हिन्दू धर्म है और अरब में मुसलिम धर्म है अस्तु वहां जाने को मेरा चित्त सन्नद्ध नहीं होता। यदि आप शाहजादे को यहां लाओ तो श्री राम कृपा से जीवित हो सकता है कोई काम भगवान को दुश्कर नहीं है। यह सुन फैजी वहां से चल कर शिवपुरी पहुंचा।

महात्मा कबीरदास जी पत्र के पढ़ते ही अरब जाने को प्रस्तुत हो गये क्योंकि वे तो सबको ब्रह्ममय जानते थे। अरब पहुंच कर आप बादशाह के दरबार में पहुंचे। बादशाह ने अति सत्कार किया पुनः महात्मा जी ने शाहजादे की लहास को मगाया और कहा कि उठ खुदा के हुक्म से, परन्तु वह न उठा दुबारा फिर कहाकि उठ कुदरत के हुक्म से परन्तु वह फिर भी सजीव होकर न उठा। अन्त में महात्मा जी ने कहा कि उठ मेरे हुक्म से भक्त के प्रताप से शाहजादा उठ बैठा। सजीव होने पर बाद-शाह अपने दल से मिला और महात्मा जी से कहा कि कुरान शरीफ में लिखा है कि जो फकीर खुदा से बड़ा बने वह मूर्ख

दंड देने के काबिल है। आप भी खुदा से बड़े बने हो इस कारण दंड देना उचित है।

यह सुन कबीरदास जी ने कहा कि बादशाह आपकी अक्ल में फर्क है क्योंकि अभी तक तुम को यह मालूम नहीं है कि भक्त का कैसा प्रताप होता है। भगवान भक्त को अपने से बड़ा मानते हैं।

॥ तत्वार्थ ॥

भगवान अपना अपमान सह सकते हैं परन्तु भक्त का अपमान नहीं सह सकते। प्रमाण को ऋषि दुर्वासा और अम्बरीश की कथा है। कलियुग में भगवन नाम ही सार है। इस हेतु थोड़ा बहुत प्रेम पूर्वक नाम कीर्तन अवश्य करना चाहिए क्योंकि भवसिंधु से पार होने का यही एक उपाय है।

नं० ३१ नग्न कौन है

नग्न कौन है तथा नग्न किसे कहते हैं और किस प्रकार के आचरण वाला पुरुष नग्न संज्ञा प्राप्त करता है। नग्न के स्वरूप का यथावत् वर्णन करते हैं।

ऋक्, साम और यजु यह वेदमयी वर्णों का आवरण स्वरूप है जो मनुष्य मोह के वशीभूत होकर इसका त्याग कर देता है वह पापिष्ट 'नग्न, कहलाता है। समस्त वर्णों क संवरण (ढकने वाला वस्त्र) वेदमयी ही है, इस हेतु उसका त्याग कर देने पर पुरुष 'नग्न, हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं।

ब्रह्मचारी, ग्रहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यासी—ये चार ही आश्रम हैं। जो जन ग्रहस्थ आश्रम को छोड़ने के पश्चात वान-प्रस्थ या सन्यासी नहीं होता वह पापी भी 'नग्न, ही है।

जो ब्राह्मणादि वर्ण अपने धर्म को त्याग कर परधर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं अथवा हीनवृत्ति का अवलम्बन करते हैं वे 'नग्न, कहलाते हैं ऐसा विद्वान वर्णन करते हैं।

प्राचीन काल में सौ दिव्य वर्ष तक देवता और राक्षसों का परस्पर संग्राम हुआ। उसमें ह्राद और प्रभृति असुरों द्वारा सुरगण पराजित हुए। अत देवगणने क्षीर सागर पर जाकर भगवान की आराधना की कि दयानिधि रक्षा करो असुर हमको दुख देते हैं। देवताओं ने भगवान को प्रेम पूर्वक महान बिनती की भगवान तो दयानिधि हैं ही। वहीं पर शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण करके प्रगट हुए और देवताओं से आरा धनो का कारण पूछा।

देवता बोले हे नाथ! प्रसन्न होकर हम सरणागतों की रक्षा कीजिए।-हे भगवान! दैत्यों ने ब्रह्मा की आज्ञा उल्लंघन कर हमारे और त्रिलोकी के यज्ञ भागों का अपहरण कर लिया है। हमारे द्रोही अपने वर्ण धर्म के पालक तथा वेदमार्गावलम्बी और तपस्वी हैं अस्तु हमसे वे नहीं मारे जाते आप ही कोई यत्न बतलाइए।

भगवान ने यह विनय सुन कर अपने शरीर से माया मोह को प्रगट किया और कहा कि यह उन सब दैत्यगणों को

मोहित कर देगा, तब वे वेद मार्ग का उल्लंघन करने से तुम लोगों से मारे जा सकेंगे।

भगवान की ऐसी आज्ञा होने पर देवगण उन्हें प्रणाम कर जहां से आए थे वहां चले गये तथा माया मोह असुरों के पास गया। माया मोह ने देखा कि दैत्यगण तपस्या में लगे हुये हैं। तब मयूर-पिच्छधारी दिगम्बर और मुंडित केश माया मोह ने असुरों से इस तरह कहा। माया मोह बोला—हे असुरो कहिये आप किस कामना से तपस्या कर रहे हैं। किसी लौकिक फल की चेष्टा है या पारलौकिक की।

असुरगण बोले—हे महामते! हमने पारलौकिक फल की इच्छा से तपस्या आरम्भ की है। अब आपको क्या कहना है।

माया मोह बोला—यदि आपको मुक्ति की इच्छा है तो जैसा मैं कहता हूं वैसा करो। आप लोग मुक्ति के खुले द्वार रूप इस धर्म का पालन कीजिए। यह धर्म परमोपयोगी है। इससे बढ़ कर और कोई धर्म नहीं। इस प्रकार अनेक भांति की युक्तियों से अति रंजित वाक्यों द्वारा माया मोह ने असुरों को वैदिक धर्म से भ्रष्ट कर दिया। यह धर्म युक्त है यह धर्म विरुद्ध है। यह सत् है, यह असत् है, इससे मुक्ति होगी इससे नहीं, यह परमार्थ है यह अपरमार्थ है। यह कर्म है यह अकर्म है, यह दिगम्बरों का धर्म है यह साम्बरों का धर्म है। इस प्रकार के अनन्त वादों को दिखला कर माया मोह ने असुरों को स्वधर्म

से च्युत कर दिया।

मायामोह ने दैत्यों को त्रयी धर्म रहित कर दिया और वे मोहग्रस्त हो गये। पीछे अन्य दैत्य भी ऐसे ही कर दिये। मतलब यह है कि सारे असुरगण धर्म से विमुख कर दिये।

माया मोह ने रक्त वस्त्र धारण कर असुरों के समीप जा मधुर वाक्यों से कहा कि, यदि तुमको मोक्ष की इच्छा है तो पशुहिंसा को त्याग कर बोध प्राप्त करो। यह सम्पूर्ण जगत विज्ञानमय है ऐसा जानो। विद्वानों का ऐसा मत है कि, यह संसार अनाधार है, रागादि दोषों से दूषित है। इस संसार संकट में जीव अत्यन्त भटकता फिरता है ऐसा जानो। इस भांति माया मोह ने अल्पकाल ही में असुरों से वैदिक धर्म की बात चीत करना भी छुड़ा दिया।

उनमें से कोई वेदों की, कोई देवताओं की और कोई ब्राह्मणों की निन्दा करने लगे, [वे कहने लगे—] "हिंसा से भी धर्म होता है-अग्नि में हवि जलाने से फल होगा-यह भी बच्चों की सी बात है। अनेकों यज्ञों के द्वारा देवत्व लाभ करके यदि इन्द्र को शमी आदि काष्ट का ही भोजन करना पड़ता है तो इससे तो पत्ते खाने वाला पशु ही अच्छा है। यदि यज्ञ में बलि किए पशु को मोक्ष प्राप्त होती है तो यजमान अपने पिता ही को क्यों नहीं मार डालता। यदि किसी और पुरुष के भोजन करने से भी किसी पुरुष को तृप्ती होसकती है तो देशाटन के समय खाद्य पदार्थ के लेजाने की क्या आवश्यकता है। पुत्रगण

घर पर ही श्राद्ध कर दिया करें। इसलिए श्राद्धादि कर्मकांड जार्गो को अन्ध श्रद्धा ही है, इस प्रकार के अनेक वचन कह कर माया मोह ने असुरों को धर्म पथ से विचलित कर दिया। अत. वे वेदमयी के त्याग से नग्न होगये। इतने ही काल में देवों ने तैयारी करली और युद्ध छिड़ा, उसमें सम्पूर्ण विरोधी असुर गण देवों द्वारा मारे गये।

पहिले उनके पास जो स्वधर्म रूप कवच था। उसी से उनकी रक्षा हुई थी अब की बार उसके नष्ट हो जाने से वे नष्ट हो गए क्योंकि वेदमयी रूप वस्त्र का त्याग कर के नग्न हो गये थे इससे यह शिक्षा मिली कि स्वधर्म को कभी न त्यागना चाहिये यदि स्वधर्म का पालन करोगे तो असुर गणों की तरह रक्षा कर सकते हो और त्याग करने पर उन्हीं की तरह नष्ट होना पड़ेगा ऐसा पुराण वर्णन करते हैं।

---

३२ निष्काम कर्म योगी बालक

एक नगर में एक पुरुष के पुत्र उत्पन्न हुआ जो अपाहिज था। उसके माता व पिता उसे उसी अतुलनीय प्रेम की दृष्टि से देखने लगे। और अत्यन्त हर्ष से प्यार करने लगे।

एक दिन जब वह अपाहिज बालक कुछ बड़ा होगया था। अपने पिता समेत मकान पर बैठा हुआ था। उसे देख कर गांव के दो चार मनुष्य वहां पर आ विराजे। कुछ देर पश्चात् वहां पर यह प्रश्न छिड़ा कि बेचारे इस बालक का

जीवन किस प्रकार व्यतीत होगा। यह सुन कर उसके पिता ने कहा कि अभी तो यह हमारे आश्रय है क्योंकि नित प्रति हम ही उदर पूर्ती करते हैं। हमारे मरणोपरान्त इसके जीवन का कोई आधार न रहेगा, यदि यह हमारे सामने ही मर जाय तो बहुत ही हित कर हो।

इतने में पिता ने प्यार से कहा बेटा तुम किस के भाग्य का खाते हो। पुत्र ने उत्तर दिया कि अपने भाग्य का और जो सम्पूर्ण संसार का आश्रय है वही मेरा भी आधार है क्योंकि जो जल मेघों द्वारा बरसाया जाता है वह प्राणियों के जीवन के लिये अमृत रूप होता है और औषधियों का पोषण करता है हे पिता! उस वर्षा के पानी से महान वृद्धि को प्राप्त होकर समस्त औषधियाँ और फल पकने पर सूख जाने वाले (गोधूम यव आदि अन्न) प्रजावर्ग के [शरीर की उत्पत्ति और पोषण आदि के] साधक होते हैं। उनके द्वारा मनुष्य गण नित्यप्रति यज्ञ कर के देवताओं को सन्तुष्ट करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण यज्ञ, वेद, ब्राह्मणादि वर्ण, समस्त देव समूह और प्राणिगण वृष्टि के ही आश्रित हैं। हे पिताजी! अन्न को पैदा करने वाली वृष्टि ही इन सब को धारण करती है तथा उस वृष्टि की उत्पत्ति सूर्य से होती है। सूर्य का आधार ध्रुव है, ध्रुव का शिशुमार चक्र है, तथा शिशुमार के आश्रय श्री नारायन हैं उस शिशुमार के हृदय में श्री नारायन स्थित हैं जो समस्त प्राणियों के पालनकर्ता तथा आदि भूत सनातन पुरुष

है। वे ही सब के पालक है और कोई किसी का पालक नहीं।

पुत्र के वचन सुन कर पिता ने उसे बहुत बुरा भला कहा और यह भी कहा कि यदि तू ऐसा ही जानता है तो आज से हमारे आश्रय न रह कर अपनी उदर-पूर्ति कर, अब देखिये भावी प्रबल है क्या कराती है। विधाता ने भाग्य में जो कुछ अंकित किया है वह सब अमिट है। अपाहिज बालक भी इसी प्रकार विचार करते हुये भगवान के आश्रित हो सरकता हुआ चल दिया।

भगवान भी दया समुद्र हैं। अपने भक्त को इस तरह दुखी देख कर दुखी हुए। बालक ने विश्वास-पूर्वक भगवान का आश्रय लिया था। इसी से वह भक्त कहा गया। कहा भी है कि भगवान विश्वास निवासी हैं इसी से तो बालक का अपने में दृढ़ विश्वास देख कर कृपा की और हृदय रूपी आकाश में विज्ञान चन्द्रमा का प्रकाश किया।

ज्ञान चन्द्र के उदय होने पर बालक सरकता हुआ आगे वन में समाधि लगा बैठ गया और निर्भय हो कर भव-भय-हारी त्रिय-ताप-निकंदन भगवान का पूर्ण ध्यान किया, न अन्न खाता था और न पानी पीता था।

एकदिन श्रीभगवान की प्रेरणा से नारदजी वहां होकर निकले और बालक को तप में लवलीन देख कर अति प्रसन्न हुए और समीप जाकर बोले कि हे पुत्र! मैं देवर्षि नारद हूं, तेरी तपस्या से अति हर्षित हूं अब तू अपनी मनोकामना पूर्ण कर, परन्तु

बालक ने इसका कुछ उत्तर न दिया श्री ब्रह्म रिषि नारद जी के बहुत कहने पर यही उत्तर दिया कि जहां आपके दर्शन मिलें वहीं मेरे लिए सर्वस्व है और मुझे घर की आवश्यकता नहीं है। अन्त में नारद जी उससे जितेन्द्रिय कह कर चल दिये और यह भी कहा कि तेरी तपस्या अटल रहे।

पुनः नारद जी ब्रह्मा जी के दरबार में गए और प्रणाम कर उस अपोहिज निष्काम कर्मयोगी बालक का वृतान्त सुनाया। ब्रह्मा जी यह सुन कर उसके दर्शन के लिये इच्छुक हुये और त्रिलोचन भगवान शंकर के पास पहुंचे। और सारा वृतान्त सुनाया। महादेव जी भी दर्शन को तैयार हो भगवान विष्णु के पास पहुंचे।

भगवान विष्णु भी उस हाल को सुन कर उनके साथ हो लिये और उसी वन में पहुंच कर उस बालक के दर्शन करने लगे। पुनः ब्रह्मा जी बालक के निकट जा कर बोले कि हे पुत्र! मैं ब्रह्मा तुम्हारे उग्र तप से अति प्रसन्न हूं और मन वांछित फल देने वाला हूँ। अब जो कुछ तुम्हारी अभिलाषा हो सो मेरे द्वारा पूर्ण करो। परन्तु बालक ने उत्तर न दिया। अन्त में यही कहा कि हे पितामह जी! आपके दर्शन ही सर्व कल्याण कारक है मुझे और कोई चेष्टा नहीं है। ब्रह्मा जी ने बार २ ही वर देने को कहा परन्तु बालक ने बार २ ही मना कर दिया। अन्त में ब्रह्मा जी प्रसन्न हो चल दिए और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारी समाधि अटल रहे। इसके पश्चात्

भगवान शंकर गए।

भगवान शंकर ने कहा कि पुत्र मैं त्रिपुरारि तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूं। अब तुम अपनी मनोकामना पूर्ण करो। महा तपस्वी बालक ने कहा कि आपके दर्शन ही प्रधान सुख के देने वाले हैं। अन्त में महादेव जी भी प्रसन्न वदन हो आशीश देकर चल दिये।

पुनः कमल नयनभगवान बालक के पास गये और गोदी से उठा कर बोले कि पुत्र मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं। तुम्हारी जो मनोकामना हो सो मुझसे कहो। बालक ने कहा कि हे स्वामी जब एक अव्यक्त, अजर अमर और अविनाशी भगवान पुरुषोत्तम मेरे लोचनों के सामने हैं तो मैं ऐसे फल के सिवाय और किस फल की चेष्टा करूं क्योंकि सांसारिक सम्पूर्ण सुख व्यर्थ है केवल आपकी निष्काम कर्म द्वारा भक्ति ही मोक्ष कारी है।

जो पुरुष आपकी भक्ति तथा दर्शन रूप हीरा मणि को त्याग कर काँच रूप सांसारिक सुखों को ग्रहण करे वह महा मूर्ख संसारी बन्धनों में बधने वाला अधम जड़ है। हे भगवान! आपकी जिस मूर्ति के लिये ब्रह्मा तथा महेश और अनेक देव मुनि निरन्तर तप करते हैं और वेद नेति २ कह कर पुकारते हैं। मैं ऐसे कृपासागर, दीन निवाज, आपकी भक्ती को छोड़ कर और किस पदार्थ को बड़ा समझ कर उसकी चेष्टा करूं। भगवान अन्तर्यामी, बालक के इस प्रकार वचन सुन कर और

फल की कामना से रहित देख कर अत्यन्त प्रसन्न हुये और उसी वक्त सारूप मोक्ष दी (अर्थात् अपने रूप से मिला लिया)

अब विचार कीजिये कि निष्काम कर्मयोग क्या चीज़ है। जिसके प्रताप से मन वचन से परे जो परमात्मा है तथा ब्रह्मा और शिव इस कर्म कर्ता के दर्शन करने को स्वयं आये। और जिस भगवान का सुर, नर मुनि और किन्नर सदैव निरन्तर ध्यान करते हैं तब भी नहीं मिलते वे भगवान निष्काम योगी के दर्शनों को पधारे।

॥ भावार्थ ॥

संसार में मनुष्य को नित प्रति भगवान का जप करना चाहिये और सब कुछ भगवान का समझ कर सिद्ध असिद्ध में समत्व भाव रखे, अशक्ति और फल की इच्छा का त्याग करे और भगवत आज्ञानुसार केवल भगवान ही के लिये सब कर्मों का आचरण करे तथा श्रद्धा भक्ति पूर्वक मन, वाणी और शरीर से सब भांति कमल नयन भगवान ही की शरण हो कर नाम, गुण और प्रभाव सहित उनके स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करे। इस प्रकार के निष्काम कर्मयोग द्वारा भवसिन्धु का पार करना महा सुगम है।

———o———

तत्वज्ञान की भूल से दुख होता है।

मनुष्य का मुख्य जो तत्वज्ञान होता है कारणवश उस के भूल से त्यागने पर दुख प्राप्त होता है जैसा श्री कपिल

भगवान ने कहा है कि—

तद्विस्मरणो अपि भेको वतः

किसी देश में एक राजा राज्य करता था। वह बड़ा धर्मात्मा था। शम, दम, धृति, क्षमा, सत्य, पराक्रम, नीति, नम्रता, और अनुग्रह आदि क्षत्रिय धर्मों से सम्पन्न था। प्रजा को प्राणों के समान समझता था।

एक दिन राजा आखेट को वन में गया और जब शिथिल होकर अपने शहर की ओर लौटा तो उसे एक नव युवक कन्या मिली। राजा उसके स्वरूप को देख कर मोहित हो गया और बोला कि हे सुन्दरी! तुम कौन हो? तब उसने कहा कि हे प्रभावशाली नीति निपुण राजा! मैं मेंढ़क राज की कन्या हूं।

राजा ने कहा कि तुम मेरी सहधर्मिणी बनना स्वीकार करो। प्रथम तो कन्या ने मना किया, परन्तु राजा के बार २ आग्रह-पूर्वक कहने से कन्या ने कहा कि यदि आप मुझे चाहते हैं तो मेरा एक व्रत आपको पूरा करना होगा, सो क्या? कि मेरी दृष्टि में कभी जल न आवे। राजा इस वचन को अंगीकार करके उस कन्या को अपने नगर में ले आया।

एक दिन राजा और वह नव युवक कन्या शैया पर आनन्द में मग्न थे। उसी क्षण कन्या ने कहा कि महाराज यहां कहीं जल है? राजा ने अपने तत्वज्ञान को भूल कर उसे जल दिखला दिया। जल के देखते ही वह उस में प्रवेश कर गई।

राजा उसके विरह में महा दुखी होकर रोने लगा और जल में उसकी तलाश की परन्तु वह न मिली तो राजा उसके विरह में पागल हो गया ।

॥ तत्वार्थ ॥

इस दृष्टान्त से यह सिद्ध हुआ कि तत्वज्ञान के भूलने से दुख प्राप्त होता है अतः अपने तत्वज्ञान पर अटल रहना चाहिए ।

नं० ३४ प्रारब्ध मुख्य है

जो कुछ विधाता ने भाग्य में लिख दिया है वह होकर ही रहता है, चाहे कोई कितना ही परिश्रम करे परन्तु जैसा प्रारब्ध में लिखा है वैसा ही रहेगा, प्रारब्ध न बढ़ती है और न घटती है ।

एक पुरुष अपनी स्त्री सहित कहीं जा रहा था और साथ अपना एक पुत्र भी था । मार्ग में उसे भगवान शंकर और पार्वती जी मिले । पार्वती जी को उनकी दशा देख कर दया आगई और महादेव जी से कहा कि हे नाथ इन पर दया करनी चाहिए । महादेव जी ने कहा कि, ये तीनों कमनसीब हैं मेरी दया से इनको लाभ न होगा । पार्वती जी ने बार बार आग्रह पूर्वक कहा तब महादेव जी ने उस से कहा कि तुम तीनों एक २ चीज मुझसे मांग लो वही तुरन्त मिल जायगी ।

तब औरत ने सुन्दर स्वरूप मांगा वह तुरन्त रूपवती हो गई । एक राजा उसे देख कर हाथी पर चढ़ा ले चला । जब उस

के पति ने देखा कि मेरी स्त्री भी हाथ से गई तो महादेवजी से कहा कि इस औरत का रूप सुअर के समान हो जाय सो उसी क्षण होगई। अब जो राजा हाथी पर चढ़ा ले जारहा था उसके रूप से घृणा करके छोड़ दिया। अब पुत्र ने अपनी माता को बदसूरत जान कर यह मांगा कि मेरी माता पहिले जैसी थी वैसी ही हो जाय वह तुरन्त वैसी ही हो गई। मतलब यह है कि तीनों को कुछ न मिला। तब महादेवजी ने पार्वती से कहा कि विधाता ने जो प्रारब्ध में लिखा है वही मिलता है।

॥ तत्वार्थ ॥

जो प्रारब्ध में लिखा है वही होता है।

नं० ३५ मन के जीते जीत होती है।

मन के जीतने पर पारलौकिक विजय सुगम है क्योंकि जब मन विजय हो जाता है तो फिर पुन्यवृती बलवती हो जाती है जिससे वह धर्मात्मा कहलाया जाता है। पुन उसका अन्त: करण निर्मल हो जाता है क्योंकि धर्मादिक कर्म करने से अन्त:करण शुद्ध होता है। अन्त: करण के शुद्ध हो जाने पर हृदय में ज्ञान का विकास होता है जिसके आधार से पार लौकिक विजय प्राप्त करना महा सुगम है।

एक शिष्य अपने गुरू के पास दर्शन करने जा रहा था। तब उसके पालतू तोते ने पूछा कि तेरे गुरू में क्या कमाल है। तब चेले ने कहा कि हमारे गुरु भगवन्नाम उच्चारण करते हैं

तोते ने कहा कि जब तक मैंने साहब का नाम नहीं लिया तब तक खुश था। और जब से साहब का नाम लिया है तब से पिंजरे में बन्द रहता हूं। आपके गुरू को यह प्रश्न पूछना चाहिए। चेले ने गुरू से वही बात पूछी। गुरूजी यह सुन कर प्राणायाम चढ़ा कर मुर्दे के समान हो गये तब चेले ने यह हाल तोते से कहा।

तोते ने यह सुन कर अपनी दशा भी गुरू जैसी करली चेला ने उसे मृतक समझ कर फेंक दिया। तोता प्रसन्न होकर उड़ गया और बोला कि तेरे गुरू ने मेरे प्रश्न का उत्तर तपस्या के प्रभाव से दिया है अर्थात् यह कि सिर्फ नाम लेना ही काम नहीं आता किन्तु मन को मारने से मुक्त होता है। गुरूजी ने मेरे छूटने की तदवीर भी प्राणायाम चढ़ा कर बतला दी थी सो भी मैं समझ गया और तेरे हाथ से छूट गया।

॥ भावार्थ ॥

इसका भावार्थ यह है कि यह तोता रूपी जीवत्मा पञ्च भूत से बने हुए पिंजड़े रूप शरीर में अज्ञान वश हो आजाता है और पीछे पश्चाताप करता है और तोते के पालने वाले के समान मन के अधिकार में रहता है। परन्तु जब मन को विजय कर लेता है तो इसकी पारलौकिक विजय हो जाती है। गुरु ने भी उत्तर दिया था कि यदि तू जाना चाहता है तो अपने खाने पीने का लोभ छोड़ कर मुर्दे के मानिन्द हो नहीं तो इसी कारागार में बन्द रहना पड़ेगा। इसी प्रकार यदि जीवात्मा मुक्त होना चाहता

है तो मन को वस में कर, क्योंकि मन पापों का मूल है और
के नाश से कार्य का नाश होता है। अस्तु मन के जीते
ा जाती है।

———o———

र ने सब वस्तु सोच कर ही बनाई हैं।

परमात्मा ने संसार में जो कुछ उत्पन्न किया है वह सब
विचार कर ही उत्पन्न किया है। इस पर दृष्टान्त है कि एक
बेचारा रास्तागीर हारा थका हुआ एक जामुन के वृक्ष तले आया
और अपनी गर्मी को शान्त किया। जब शीतल हवा ने सुख
पहुंचाया तो वह अब चारों तरफ दृष्टि फेंकने लगा।

कुछ देर बाद उसकी दृष्टि जामुन पर पड़ी। पुनः
सन्मुख खेत में काशीफलों पर दृष्टि पड़ी तो असमंजस में पड़
कर कहने लगा कि भगवान बड़ा नासमझ है जो इतने विशाल
वृक्ष पर तो इतना छोटा फल और बेलों पर इतना बड़ा फल
लगाया है। यदि मैं ईश्वर होता तो इसके बिल्कुल ही विपरीत
काय करता अर्थात् बड़े वृक्ष पर बड़ा फल और छोटे पर छोटा
फल लगाता।

इतने ही में विचार करते २ वह सो गया क्योंकि मार्ग
का हारा थका था और दूसरे जंगल की शीतल हवा बह रही
थी। कुछ देर बाद दैवयोग से जामुन का फल टूट उसके मुंह
पर गिरा त्योंही वह जाग्रत हो गया। पुनः उसके हृदय में विचार
उत्पन्न हुआ कि ईश्वर ने जो कुछ उत्पन्न किया है वह समझ

कर ही किया है। उसके खेल निराले हैं। मुझको प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया कि भगवान की कारीगरी निराली है। यदि इस वृक्ष पर बड़ा फल होता तो मेरी जान कैसे बचती इसी से तो भगवान ने बड़े फल बेलों पर लगाये हैं क्योंकि पृथ्वी पर पड़े रहेंगे। सच है ईश्वर की माया अपार है।

॥ भावार्थ ॥

ईश्वर की सम्पूर्ण सृष्टि रहस्य से भरी हुई है। इसमें कोई को संशय नहीं है॥

——o❁o——

नं० ३७ आप काज महा काज

आप काज महाकाज का अर्थ यह है कि, जो काम अपने हाथों से किया जाता है उसमें सफलता प्राप्त होती है। जो पुरुष अपने कामों को दूसरे के सुपर्द करता है उसमें असफलता प्राप्त होती है। यदि सफल हो भी जाता है तो बड़ी कठिनता सहन करके यदि अपना काम दूसरों से कराना है तो उसमें मदद अवश्य करनी चाहिये। इस पर निम्नलिखित दृष्टान्त है कि—

एक बार मुल्क अमरीका में लड़ाई हो रही थी। लड़ाई ही के काल में एक जमादार अपने सिपाहियों से काम ले रहा था वे सिपाही एक बड़े भारी शहतीर को उठा रहे थे और जमादार साहब अलग खड़े थे और कहते जाते थे कि धन्य है वीरो, बल लगाओ। बेचारे सिपाहियों ने बहुत सा बल लगाया परन्तु वह शहतीर न डिगा उसी वक्त वहां एक और अफसर आया जिसका

३८ सेवा करे सो मेवा खाय ।

उपरोक्त कहावत का भावार्थ यह है कि सेवा का फल मेवा के समान मधुर होता है । इस पर दृष्टान्त है कि—

एक दिन शरीर के सब अङ्ग परस्पर सलाह करने लगे कि हम तो काम करते २ मरे जाते हैं और यह स्वार्थी मेदा बैठा २ मुफ्त ही में खाता है, हमको नौकर समझता है । सब ने कहा कि आज से काम करना ही छोड़ दीजिये । ये थोड़े ही दिनों में स्वार्थीपने को भूल जायगा । ऐसा निर्णय कर पैरों ने चलना, तथा हाथों ने कार्य करना त्याग दिया । नेत्र देखने से बन्द होगये और कानों ने सुनना छोड़ दिया तथा मुंह ने भोजन करना बन्द कर दिया मतलब यह है कि सम्पूर्ण अंगों ने अपना २ कार्य छोड़ दिया ।

मेदे ने बहुत कुछ समझाया बुझाया परन्तु उसका प्रभाव किसी पर कुछ न पड़ा । मेदे ने फिर समझाया कि देखो ऐसा करने से तुमको पीछे पछताना पड़ेगा और तुम्हारी दशा उस नादान घोड़े के समान होगी जो कि अपने स्वामी के गिराने के निमित्त कूये में कूद पड़ा था । परन्तु उन्होंने मेदे की बात पर कुछ ध्यान न दिया क्योंकि विनाश काले विपरीति बुद्धी । उन्हों ने अपने आग्रह को न छोड़ा एक दो दिन तो उन्होंने अपने प्रण का निर्वाह किया । परन्तु जब अन्न न मिलने से क्षुधा बढ़ी और खून में पानी की कमी होने से तृषा ने दुख दिया । जब खुराक ही बन्द हो गई तो मेदा कहाँ से बने और बिन मैदा के धातु नहीं

बनती मतलब यह है कि धातु बनना भी बन्द होगया। अब बिना धातु के सर्व अंगों को तकलीफ पहुंची। दिमाग चक्कर खाने लगा हाथ पैर और दिनकी अपेक्षा काम न करने पर भी शिथिल हो गये। यहां तक कि खून की गरदिश होना बन्द हो गया। अब सब घबराने लगे तब मेदे ने कहा कि, अब समझे कि नहीं मैं स्वार्थी हूं या निःस्वार्थी। तुम जब मेरी आज्ञासे काम करके मेरी रक्षा करते थे तो मैं भी आठौ याम तुम्हारा हित करता रहता हूं। रात्रि में आप तो सब निन्द्रा में अचेत हो जाते हो परन्तु मैं तब भी तुमको खुराक पहुंचाने के निमित्त लगा ही रहता हूं। यह सुन सब ने अपने अपने काम आरम्भ किये और अपनी भूल पर पश्चाताप किया।

॥ तत्वार्थ ॥

अपने गुरु, पिता, माता और बड़े भाइयों की सेवा निस्वार्थ करनी चाहिये। सेवा ही से भगवान प्रसन्न होते हैं। नौकरी व्यापार कृषि आदि किसी काम में बिना सेवाके धन नहीं मिलता है। इसी से कहते हैं कि, सेवा करे सो मेवा खाय।

———०ॐ०———

नं० ३९ लालच बुरी बला है

किसी शहर में एक लालची महाजन रहता था। उसके पास धन बहुत था। परन्तु ज्यों २ वह वृद्ध होता जाता था त्यों त्यों उसकी चेष्टा भी बलिष्ठ होती जाती थी।

एक दिन एक विद्वान महात्मा उस महाजन के पास आये

और महाजन को स्वभाव से ही लालची जानकर बोले कि हे महाजन आप अपनी मनोकामना हमसे पूर्ण कीजिये। यह सुन महाजन ने कहा कि, मुझे यह वरदान दो कि, जो कुछ वस्तु मैं अपने हाथ में लूं वह सब स्वर्ण की हो जाय तब महात्मा ने कहा कि, हे महाजन ! यह तुम्हारी नादानी है, जिस धन को तुम वास्तविक सुख समझते हो वह दुख का हेतु है। जैसे बच्चे को पहिले खेल छोड़ कर विद्या अध्ययन करना महा दुख प्रतीत होता है परन्तु वह उल्टा होता है जिस विद्या को दुख समझता है वह सुख का हेतु होती है और जिन खेलों को पहिले सुख समझता है वह दुख रूप प्रतीत हो जाते हैं। ऐसे ही विषयों का त्यागना विष के समान मालूम होता है परन्तु यह भी उल्टा अर्थदायक है। देखो महाजन लोलच बड़ी बुरी बला है और कनक का मद कनक से भी अधिक होता है। यथा—

दोहा—कनक २ ते सौगुनी, मादकता अधिकाय।
जाय खाये बौरात है, जाइ पाये बौराय॥

महाजन ने महात्मा जी की बात पर कुछ ध्यान न दिया। अन्त में महात्मा जी एवमस्तु कह कर चल दिये।

अब महाजन जिस वस्तु को हाथ में लेता वही सोने की हो जाती यहां तक कि पहिनने के वस्त्र भी स्वर्ण के हो गये।

एक दिन महाजन ने अपनी लड़की की गुड़िया हाथ में ली वह भी सोने की होगई इस पर लड़की ने रोना शुरु किया महाजन ने प्यार पूर्वक लड़की को अपनी गोद में बैठा लिया तो

वह भी सोने की हो गई। और जो कुछ खाने पीने को मगाता वह भी सोना हो जाता यह गति देख कर महाजन घबड़ाया।

अब महात्मा की तलाश होने लगी जब महात्मा जी महाजन के पास पहुंच गये तो यों बोले कि, हमने तो तुमको पहिले ही समझाया था। परन्तु तुम तो धन के मद में अन्धे होही गये सो हमारी शिक्षा पर किंचित् ध्यान न दिया। महाजन के बहुत कुछ विनय करने पर महात्मा ने उसको पूर्व जैसा बनाया और पुत्री को भी जिन्दा किया।

॥ तत्वार्थ ॥

सच है कुछ खोकर बुद्धि ठिकाने आती है। मनुष्य को भूल कर भी लालच न करना चाहिये क्योंकि धन तो अस्थिर है। सर्वदा कभी किसी पुरुष पर नहीं रहता इस कारण भगवन्नाम जपते रहो। भवसागर से पार होने का यही एक सुगम प्रयत्न है।

———o❀o———

नं० ४० सोने की थाली

एक ग्राम के स्वामी ने एक घोर अत्याचार किया और उसमें ग्राम के मनुष्यों को साथ देने के लिये कहा। सब ने हर्ष पूर्वक उसकी सहायता की परन्तु एक साधारण पुरुष ने सहायता करना अंगीकार न किया। इस कारण उस दुष्ट स्वभाव ने उस दीन कृषक को अप्रसन्न हो कर तीन साल कारागार का दंड दिया।

उस कृषक के कर्तव्य से देवताओं ने प्रसन्न होकर एक मन्दिर में अकस्मात् एक स्वर्ण थाली डाली और गगन वाणी की कि यह स्वर्ण थाली किसी धर्मात्मा पुरुष को मिलनी चाहिये। यह घोषणा तमाम देश में फैल गई और आप पास के छोटे व बड़े धर्मात्मा स्वर्ण थाली के लोभ से इच्छा करके आये और बहुत से दीन दुखी कोढ़ी अपाहिज भी वहाँ पर आये और मन्दिर में उस स्वर्ण थाली को पड़ी देख सब लोभाधीन हो उत्कण्ठित हुए। उन में एक मनुष्य ने ज्यों थाली को उठाने के लिये अंगुली रक्खी त्योंही वह स्वर्ण थाली राँग की हो गई और जब तक अंगुली का पाप उसमें रहा तब तक राँग की रही और बाद में फिर सोने की हो गई इसी प्रकार सब मनुष्य निरास होकर अपने को पापी जान चले गये इस प्रकार उस थाली को पड़े हुए बारह माह व्यतीत हो गये।

दूसरे साल में एक दिन मन्दिर के पुजारी ने निर्णय किया कि, इसको कोई उपकारी ही ले सकता है किन्तु उपकारी धन के लोभ से यहाँ आ नहीं सकते पर अपना काम तो करना ही चाहिये अस्तु पुजारी ने देश के उपकारियों के पास विनय पत्र भेजे।

विनय पत्र को पढ़ते ही बहुत से परोपकारी हर्ष पूर्वक उस मन्दिर पर आये और वहाँ पड़े हुए दीन दुखियों को बहुत सा दान दिया और बाद में स्वर्ण थाली के पास गये परन्तु वह छूते ही राँग की हो गई निदान समस्त परोपकारी अपने को पापी

जान कर अपने २ घर को चले गये।

इसी प्रकार थाली को पड़े तीन साल के व्यतीत का अन्तिम दिन आया तभी वह साधारण कृषक जिसको निरपराध ही देस के राजा ने तीन साल का कारागार दिया था वहां आ निकला और वहां पर पड़े हुए दीन दुखियों को देख कर उस का हृदय दया से भर गया और पास जाकर उनकी सेवा की और भगवान से प्रार्थना करने लगा कि, हे भगवान मुझे ऐसी शक्ति प्रदान करो जिससे मैं इन दीनों का दुख निवारण करूं।

हे चराचर के स्वामी! देवादि देव मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान आपकी जय हो। हे करुणासागर! इस दीन पर करुणा कीजिए। जब पुजारी ने कृषक को स्तुति करते देखा तो विचार किया कि निश्चय ही यह मनुष्य इस स्वर्ण थाली का भागी है। ऐसा विचार कर पुजारी ने उस कृषक को उस स्वर्णमय थाली को दिखा कर कहा कि यह थाली भगवान ने आप को दान दी है अस्तु, आप ऐसे दानी के दान को अंगीकार कीजिए।

ज्योंही उसने थाली की ओर हाथ बढ़ाया त्योंही वह चौगुनी दमकने लगी। कृषक ने थाली को उठा लिया। काशिराज भी यह समाचार सुन कर मन्दिर पर आए और क्रोध भरे वचन कहने लगे परन्तु पुजारी के समझाने से शान्त हो वह थाली कृषिक को ही दे दी।

वह कृषक बड़ा सदाचारी और धर्मज्ञ था। नित्य प्रति भगवान के गुणानुवाद करता था और स्वयं कथा पढ़ता और दूसरों को सुनाता सुनता था। जिसका फल ऐसा मिला।

॥ भावार्थ ॥

इसी प्रकार हमको भी नित्य प्रति सब काम छोड़ कर घंटा दो घंटा भगवत भजन करना चाहिए जिससे अपार संसार से पार हो और चाहे भाई हो या कोई नातेदार हो परन्तु वह अत्याचारी हो तो ऐसे की भूल कर भी सहायता न करे, यह नीति है। किसी ने कहा भी है कि—

न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है।

——०❀०——

नं० ४१ गुरुभक्ती

प्राचीन समय में भारतवर्ष में आयोदधौम्य नाम के ऋषी थे। उनके आश्रय में कई शिष्य विद्याध्ययन किया करते थे। उनमें आरुणि नाम का एक शिष्य था।

एक दिन वर्षा अधिक हुई और गुरू के खेत का जल बाहर निकलने लगा तब गुरू ने कहा कि बेटा आरुणि तुम जा कर खेत की मेंढ़ बांधो नहीं तो सारा जल बाहर निकल जायगा। आरुणि आज्ञा पाकर खेत की मेंढ़ बांधने लगा परन्तु जल का जोर होने तथा गीली मिट्टी के कारण वह न रोक सका। पुनि आरुणि ने विचार किया कि गुरू से किस मुंह से कहूँगा, कि मैं खेत की मेंढ़ न बांध सका, अस्तु आप ही वहां लेट गया

ऐसा करने से गुरु की आज्ञा का पालन हुआ और जल रुक गया।

इधर जब कश्यप-सुत अस्त हो गये और आरुणि घर न पहुंचा तो गुरुजी ने और शिष्यों से उसका पता पूछा।

शिष्यगण—महर्षि प्रातः काल आपने उसे मेंढ बाँधने को भेजा था तभी से नहीं आया है।

महर्षि—अचम्भित होकर, "अभी तक नहीं आया" चलो चल कर देखें किस संकट में फंस गया है।

जब आयोदधौम्य खेत के पास जाकर पुकारने लगे।

महर्षि—बेटा आरुणि ! तुम कहां हो ?

महर्षि की टेर सुन कर आरुणि गुरु के पास आया और प्रणाम कर सन्मुख खड़ा हो गया।

महर्षि—शिष्य अब तक तुम कहां थे ?

आरुणि—भगवन, जब मैं खेत का पानी किसी तरह न रोक सका तब स्वयं ही मेंढ़ बन गया, अब आपकी मेरे योग्य क्या आज्ञा है। दास सेवा को सन्नध खड़ा है।

महर्षि—बेटा मैं तुम्हारी सेवा से बहुत ही प्रसन्न चित्त हूं। तुम्हारा कल्याण हो और शास्त्र में पूर्ण विद्वान हो, मैं अब तुम्हारा नाम उद्दालक रखता हूं। इस प्रकार चौदह विद्याओं में निधान हो आरुणि ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया और गुरु सेवा के फल से प्रधान सुख का भोक्ता हुआ।

नं० ४२ गुरु भक्ती

उन्हीं गुरु आयोदधौम्य के दूसरे शिष्य उपमन्यु थे। जो गुरु की सेवा के प्रभाव से अन्त में शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हुए।

एक दिन महर्षि ने कहा कि मैं तुम को आज से गौ चराने का काम देता हूं तुम बड़ी मिहनत के साथ रक्षा करना उपमन्यु गुरु की आज्ञा शिर धारण करके गौओं को चराता और सन्ध्या को आश्रम में जाकर हाथ जोड़ खड़ा हो जाता इसी प्रकार जब कुछ दिन व्यतीत हो गये तो गुरु ने विचार किया कि उपमन्यु, नित्य मति मोटा होता चला जाता है। इसका क्या कारण है आश्चर्य युक्त होकर बोले।

महर्षि—प्रिय वत्स तुम्हारी ऐसी तन्दुरुस्ती का प्रधान कारण क्या है।

उपमन्यु—नाथ भिक्षा में जो कुछ एकत्रित होता है उसी से अपनी उदर पूर्ती करता हूं और तन्दुरुस्त हूं।

महर्षि—वत्स यह तो तुम धर्म के विरुद्ध काम करते हो क्यों कि हमको विना दिखलाये ही खा लिया करते हो। देख विद्वान कहते हैं कि—

गुरु से कपट मित्र से चोरी। कै होय निर्धन कै होय कोढ़ी॥

यह सुन उपमन्यु लज्जित हो गया और नित्य प्रति जो भिक्षा मांग कर लाता गुरु के सामने रख देता गुरु उस में से उपमन्यु को कुछ न देते तो भी उपमन्यु मोटा ही होता जाता तब गुरु ने फिर आश्चर्य में आकर उससे पूछा।

महर्षि—प्रिय वत्स भिक्षा का अन्न तो मेरे पास रहता है। तो भी तुम मोटे होते जाते हो अब तुम क्या खाते हो।

उपमन्यु—हे नाथ एक बार तुम्हारे लिये भिक्षा लाता हूं। फिर दुबारा अपने लिये लाता हूं और उसी को खाता हूं।

महर्षि—यह तो तुम स्वार्थ का काम करते हो क्योंकि दूसरों की भिक्षा मारी जाती है। इसलिये ऐसा मत करो।

उपमन्यु—महाराज, जो आज्ञा

अब उपमन्यु एक बार हो भिक्षा मागने जाता तिसको भी गुरू रख लेते थे। बेचारा गऊ चराता तिस पर भी हृष्ट पुष्ट रहता। यह देख कर महर्षि ने फिर पूछा।

महर्षि—न तो तुम दुबारा भिक्षा मागते हो और न मैं ही देता हूं तिस पर भी तुम हृष्ट पुष्ट हो सो क्यों?

उपमन्यु—दयानाथ अब मैं गौओं का दूध पीता हूं।

महर्षि—यह तो तुम अधर्म करते हो क्योंकि बिना हमारी आज्ञा के दूध पीते हो, आयन्दा ऐसा न करना।

उपमन्यु लज्जित हो गया दिन भर गौ चराता परन्तु फिर भी न लटा यह देख मुनि महा अचिम्भत होकर बोले।

महर्षि—वत्स अब तुम न तो दुबारा भिक्षा लाते हो न दूध पीते हो तो भी तन्दुरुस्त हो सो क्या कारण है।

उपमन्यु—नाथ बछड़ों के दूध पीते समय मुख से जो फेन गिरता है आज कल उसी को सन्तोष से खाता हूं।

महर्षि—राम २ बेटा तुम बहुत बुरा काम करते हो क्योंकि दूसरों का हक खाते हो दूसरों का हक खाना महा पाप है वे तुम्ह पर दया करके अधिक फेन टपकाते होंगे और आप भूखे रह जाते होंगे इस हेतु कदापि भी ऐसा न करना।

उपमन्यु—जो आज्ञा भगवन।

अब बिचारे के भोजन के सभी मार्ग रुक गये, न भिक्षा मांग सकता न दूध पी सकता और न फेन ही खाता तो भी गुरू की गौएं चराता और जब क्षुधा अधिक पीड़ित करती तो वृक्षों के पत्ते खाकर उदर पूर्ती करता। ऐसा करते २ जब कुछ दिन व्यतीत हो गये तो बेचारा उपमन्यु अन्धा हो गया और लौटते समय कूआ में गिर पड़ा जब सन्ध्या हो गई और उपमन्यु आश्रम पर न पहुंचा तो गुरू को बड़ी चिन्ता हुई और अपने शिष्यों से बोले कि आज उपमन्यु नहीं आया न जाने क्रुद्ध होकर कहीं रुक गया है अस्तु चलकर पता लगाना चाहिए। वन में जाकर पुकार ने लगे बेटा तुम कहाँ हो। उपमन्यु ने कूआ में से आवाज दी कि, महोदधि में आक के पत्ते खाने से अन्धा होने के कारण कूआ में गिर पड़ा हूं यह सुन महर्षि बोले।

महर्षि—अच्छा अश्विनी कुमारों की विनय कर तुम ठीक हो जाओगे। यह सुन उपमन्यु ने अश्विनी कुमारों की स्तुति की। तब वे अशिवनी कुमार पास आकर बोले

कि, हम तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न हैं और तेरे लिये यह मिठाई लाये हैं इसे तू खाले।

उपमन्यु—चाहे प्राण चले जाँय परन्तु धर्म को नहीं छोड़ सकता मैं बिना गुरु के अर्पण किये कदापि मिठाई नहीं खा सकता।

अश्विनी कुमार—तुम गलती पर हो एक बार हमारे इसी तरह मिठाई देने पर आयोद्धौम्य ने बिना गुरु आज्ञा के खाली थी इसी लिये तुम भी ऐसा ही करो।

उपमन्यु—चाहे कुछ हो मैं तो ऐसा नहीं कर सकता।

अश्विनी कुमार—हम तुम्हारी गुरु भक्ति को देख कर प्रसन्न हैं तेरा सर्व कल्याणहो और आंख भी अच्छी हो जायगी।

यह कह अन्तरध्यान हो गये और उपमन्यु ने कुआ से निकल गुरु के पास जा सारा वृतान्त सुनाया।

महर्षि—अश्विनी कुमारों ने जैसा कहा है सो पूर्ण होगा और तू वेद ज्ञाता, शास्त्रार्थी धर्मावलम्बी और धुरन्धर पंडित होगा। जा मेरी यही आशीष है विद्वान उपमन्यु ने भी गृहस्थाश्रम को प्रवेश किया।

महर्षि आयोद्धौम्य इसी प्रकार अपने शिष्यों की परीक्षा किया करते थे। धन्य है ऐसे गुरु और शिष्य धन्य ऐसा देश जिस में उनके जन्म हुए थे।

॥ भावार्थ ॥

भूत और वर्तमान काल के गुरु शिष्यों की समता में

राई पर्वत का अन्तर है । पहिले जैसे महर्षियों की विद्या प्रचार से भारत उन्नति शिखर पर था तो अब की विद्या से नाश होता जाता है । यदि ऐसा ही रहा तो भारत जैसा अब विद्यमान है वैसा भी न रहेगा ।

नं० ४३ गूढ़ार्थी सम्वाद

एक शिष्य ने अपने गुरू से प्रश्न किया कि, हे दयानिधि इस संसार में—

जल से गहरो कहा, कहा पृथ्वी से भारी ;
कहा अग्नि से तेज, कहा काजल से कारौ ।

गुरु—अपने शिष्य से इस प्रकार उत्तर देते हुए बोले—

जल से गहरौ ज्ञान, पाप पृथ्वी से भारी ।
क्रोध अग्नि से तेज, कायरी काजल कारी ॥

शिष्य—सो कैसे महाराज ।

गुरु बोले—हे शिष्य संसारी जन रस्सी द्वारा पृथ्वी तल (कूआ) से जल को निकाल लेते हैं परन्तु आत्मा एक है या अनेक और मैं क्या हूं अथवा परमार्थ ज्ञान की प्राप्ति किसी विरले ही को कठिनता से होती है। अर्थात् ज्ञान कूप से भी अधिक गहरा है और जल में निवास भगवान नारायन का है जल को नारा भी कहते हैं अस्तु नारा (जल) है अयन (घर) जिसको सो नारायन की भी प्राप्ति ज्ञान द्वारा होती है और आत्म ज्ञान होना पर्वत शिखर पर कूप खोदने से भी

कठिन है इसी कारण ज्ञान को जल से गहरा कहा है।

पाप पृथ्वी से भारी यों कहा जाता है कि, बड़े २ पर्वत समुद्रादि चर अचर प्राणियों के मय धल को शेष नाग और दिग्गज धारण करते हैं तो भी बोझ का भार दुखकारी नहीं है। परन्तु जब संसारी जीव अत्यन्त दुष्कर्म करते हैं तो उन पापों के भार को न पृथ्वी ही ओटती है और न शेष तथा दिग्गज ही सब कम्पायमान हो जाते हैं और पृथ्वी भी हिलने लगती है। यहां तक कि सब जाकर भगवान से प्रार्थना करते हैं तब वे अविनाशी नर तन धारण कर के पृथ्वी के भार का निवारण करते हैं। तब शेष जी ज्यों के त्यों पृथ्वी भार को सहन करते हैं। आज कल तो यह बात प्रत्यक्ष मालूम पड़ती है अस्तु प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। जैसे सतयुग, त्रेतादि युगों में इसी पृथ्वी के भार से शेष नाग कभी२ विचलित होते थे परन्तु कलि में उसी पृथ्वी के भार से शेष नाग बार २ विचलित होते हैं। इसका यही कारण है कि, हमारे पूर्वज सदाचरणी थे परन्तु अब हम दुराचरणी होकर पाप कमाते है जिनके भार से सब कम्पति हो जाते हैं इसी से पाप को पृथ्वी से भारी बतलाया गया है।

क्रोध अग्नी से तेज यों है कि, अग्नी के जले की दवा अनेक हैं परन्तु क्रोध क जले की दवा कोई नहीं। हां यदि शान्ती को ग्रहण किया जाय तो उत्तम दवा है। क्रोध हृदय

के अन्दर एक छिपी अग्नी है जो विचार रूपी पवन के लगते ही धधक उठती है और विवेक बुद्धि आदि रक्त मांस को नष्ट कर देती है इसलिये क्रोध अग्नी से तेज है।

कायरी को काजल से भी काला इस कारण बतलाया गया है कि, काजल का धब्बा साबुन आदि से रजक के घर छूट सकता है परन्तु बदन पर कायरी का धब्बा लगने से कोटि उपाय करने पर भी नहीं छूटता तुलसीदास जी ने भी कहा है कि—

दोहा—तुलसी निज कीरति चहहिं, पर कीरति को खोय।
तिनके मुंह मसि लागि है, मिटिहिं न मरि है धोय॥

इसी कारण कायरी को काजल से भी काला बतलाया गया है शिष्य यह सम्वाद सुन कर हर्षित हुआ।

———❀———
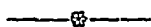
४४ हिन्दू गऊ रक्षक हैं या भक्षक

सतयुग, त्रेता, द्वापर में गऊ की बड़ी भारी मानता थी। यहां तक कि राजा भी गऊ पालक थे। गऊ ब्राह्मणों को पृथ्वी के दो खम्भ बतलाते थे परन्तु कलियुग में वे दोनों ही गिर गये पहिले दोनों की महिमा अपार थी सज्जनो निम्नलिखित दृष्टान्त की समता करके पूर्ण पता चल जायगा कि हिन्दू गऊ रक्षक हैं या भक्षक।

सतयुग में बौला नाम की एक गऊ थी। जिसके तीन पैर थे एक ब्राह्मण उसकी सेवा करता था। वह बौला को

अपना प्राण ही समझता था। उस गऊ के एक बछड़ा था। और वह नन्दन बन में चरने जाया करती थी अति हृष्ट पुष्ट थी।

एक दिन उसके शरीर को देखकर और गऊओं ने कहा कि, ऐसी कौन सी खुराक खाती है जिससे ऐसी हृष्ट पुष्ट है बौला ने कहा कि, मैं नन्दन बन की हरी २ घास सन्तोष से खाती हूं। यह सुन कर और २ भी गऊ बोलीं कि, कल हम भी तुम्हारे साथ चलेंगी बौला ने स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन गऊ अपने बछड़ा को क्षीर पिला कर साथ में और गौओं को लेकर नन्दन बन में चरने गई। कुछ देर पश्चात एक सिंह की गर्जना सुनाई दी। साथ की गौ तो भय भीत होकर भाग गई परन्तु बेचारी बौला पर न भागा गया इतने में सिंह पास आगया तब बौला ने कहा कि, हे मृगराज मैं अपने बछड़ा को क्षीर पिला कर आपके पास आजाऊंगी परन्तु अब आप मुझे छोड़ दीजिये नहीं तो वह मेरा प्यारा बछड़ा और पालक (ब्राह्मण) वियोग में प्राण त्याग देंगे यह सुन सिंह ने कहा कि, ऐसा इस संसार में कौन होगा जो एक बार जान बचने पर फिर मरने आजाय तिस में भी तू स्त्री जाति है बता मैं तेरा कैसे विश्वास करूं यदि अब मैं छोड़ दूंगा तो तू मरने के लिये फिर कदापि न आयगी। यह सुन बौला ने कहा कि, यदि मैं न आऊं तो मुझको निम्न-लिखित दोष हों। दो गौवों के एक कूआ को पाटने से जो

दोष होता हो दूसरे ब्रह्म हत्या का दोष हिंसा का दोष आदि २ समस्त दोष मुझको लगें। यह बात सुनकर सिंह को विश्वास हो गया और उसे जाने की आज्ञा दे दी।

बौला वहां से भाग कर अपने वत्स के पास आई जिस के नेत्रों से अश्रु धारा वह रही थी। बछड़ा अपनी माता की यह दशा देख कर बोला कि हे जननी तुम क्यों रोती हो। ऐसा कौन सा भारी संकट आकर पड़ा है। बौला बोली कि वत्स तुम क्षीर पी लो आज मेरा अखीर हो जायगा। तब बछड़ा ने कहा कि मैं क्षीर तभी पीऊंगा जब तुम सारा वृतान्त ठीक २ बतला दोगी। गऊ यह सुन कर बहुत रोई और अपने प्रिय बछड़ा को सारा हाल बतला दिया, तब बछड़ा बोला कि हे जननी! तेरी खातिर यदि मेरे प्राण चले जांयगे तो भी तुझसे उऋण नहीं हो सकता हूं। अस्तु, मैं सिंह के पास जाता हूं पुत्र का माता के प्रति यही कर्तव्य है जिस पुत्र के सामने माता पिता दुखी हों वह पुत्र अवश्य ही नरक का अधिकारी होता है यह सुन गऊ ने अत्यन्त शोक किया और कहा कि बेटा मैं ही अपना जीवन व्यतीत करूंगी। परन्तु बछड़ा ने एक भी न मानी और आप आगे २ चल दिया। सिंह के पास जाकर दोनों खड़े हो गये तब बौला ने कहा कि, हे मृगराज भक्षण करो परन्तु सिंह उसके सत को देख बोला कि मुझ पर भक्षण नहीं की जाती है इसी प्रकार वाद विवाद में कई दिन बीत गये गौ भक्षण को कहती है परन्तु वह नहीं भक्षण करता

बछड़ा भी मरने को तैयार है ऐसे सत से भगवान का सिंहासन हिला तब भगवान ने नारद जी को सन्देशा लेने को भेजा। नारद जी ने वहां आकर सारा दृश्य देखा और जाकर भगवान से कहा भगवान भी देवताओं के सग विमान लेकर आये और गऊ तथा सिंह के कहने से अपनेर साथियों समेत सय ब्राह्मण के स्वर्ग को गये जब भारत के पशु पक्षी भी सतधारी थे तभी तो देश उन्नति के शिखर पर था क्योंकि पशु ही जब सतधारी थे तो मनुष्यों का तो कहना ही क्या। कलि में गऊ कसाई के हाथ बेची जाती हैं और दिन रात उनकी गर्दन पर कटार चलाई जाती है अब बतलाइये इस तरह गऊ कटने से हिंदू गऊ रक्षक हैं या भक्षक। गऊ माता कह कर पुकारी जाती हैं। हाय शोक है माता ही की गर्दन पर कटार चलाई जाती है। हिंदुओं के गऊ बेचने ही से ऐसा होता है। जब हिंदू अपनी गऊ को कसाई के हाथ बेचकर विक्रय से उदर पूर्ती करते हैं तो गऊ भक्षक ही हुए।

नं० ४५ हिन्दू गऊ रक्षक हैं या भक्षक।

एक दिन महाराज दिलीप ने विचार किया कि मेरी वृद्ध अवस्था आगई परन्तु पुत्र एक भी नहीं है हाय पुत्र के बिना भानु कुली बिलकुल नष्ट हो जायगी ऐसा विचार कर के गुरु बशिष्ट के पास गये और अपनी हृदय चिन्ता का वर्णन किया।

गुरू ने कहा कि राजन् एक दिन कामधेनु आकाश मार्ग से चली आरही थी। तुमने उसके लिये हाथ नहीं जोड़े थे अस्तु उनके क्रोधित हो श्राप दे दिया था कि तुम सन्तान रहित हो इस हेतु तुम निःसन्तान हो राजा ने हाथ जोड़ कर कहा कि उसके प्रसन्न करने का भी कोई उपाय है तब गुरू वशिष्ट ने कहा कि, तुम कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की सेवा करो वह मेरे आश्रम में बंधी है इसी की कृपा से तुम्हारा कल्याण हो जायगा। और मन वांछित फल प्राप्त होगा। राजा उसी दिन से नन्दिनी की सेवा करने लगे जब प्रात काल चराने जाते तो रानी भी कुछ दूर उनके साथ जाती शाम को स्थनों से भरी नन्दिनी हुंकार मारती हुई चली आती थी। इस प्रकार सेवा करते२ बहुत दिन व्यतीत हो गये तब नन्दिनी ने राजा की परीक्षा लेनी चाही तो चरतीर सरयू के एक खार में पहुंच गई। राजा सामने पर्वत के एक दृश्य को देख रहे थे कि, अचानक नन्दिनी की दुख भरी आवाज सुनाई दी राजा ने देखा तो सिंह ने नन्दिनी को दबा रक्खा है। यह देख राजा ने ज्यों ही तरकस की थैली पर हाथ डाला त्यों ही हाथ चिपक गये और राजा आश्चर्य में पड़ गये।

सिंह बोला कि, मैं महादेव जी की आज्ञानुसार इस देवदारु के वृक्ष की रक्षा करता हूं और यहाँ जो कोई पशु आता है वही मेरा चारा है अस्तु मैं तुम्हारी गऊ को नहीं छोड़ सकता आप अब अपने घर जाइये। तब राजा ने कहा कि, मैं गुरू से किस मुख से कहूंगा कि नन्दिनी की रक्षा न कर

सका यह मेरे गुरू की गऊ है। तब सिंह ने कहा कि इसके बदले में सहस्त्र गऊ देकर अपने गुरू को मना लेना यह सुन राजा ने कहा कि तुम नन्दिनी के बदले में मुझे भक्षण कीजिये सिंह ने अस्वीकार किया किन्तु राजा ने सिंह को बातों में हराकर इस पर निश्चित किया कि नन्दिनी के बदले में मुझे भक्षण करो। बाद में राजा का हाथ तरकस से छूट गया और सिंह के आगे नीचे को मुख कर बैठ गया राजा अपने हृदय में यह सोच ही रहा था कि सिंह मेरे ऊपर झपटने ही वाला है इतने ही में आकाश से फूलों की वर्षा हुई। नन्दिनी ने कहा कि बेटा मैंने तुम्हारी परीक्षा ली थी यह सब मेरी ही रचना थी। सिंह को क्या सामर्थ है जो मेरी ओर दृष्टि उठाकर देखे जा मैं तेरी सेवा से प्रसन्न हूं, तेरी मनोकामना पूरण हो। अन्त में राजा अपने घर आये और उसी दिन से रानी के गर्भ रह गया और समय पर महाराज अज हुए। अब विचारिये कि पहिले राजा महाराजा भी गऊ की सेवा में अपने प्राण तक देने को तैयार हो जाते थे।

परन्तु आजकल के हिन्दू अधिकतर संख्या में इसके विपरीति हैं। देखिये भगवान को भी गऊ-द्विज-हितकारी कहते हैं परन्तु गऊ द्विज के हम अहितकारी होते जाते हैं तो ऐसे कर्म से ईश्वर क्यों न क्रोधित होंगे, अवश्य होंगे।

नं० ४६ धर्म के काम में विलम्ब न करो

जिस समय रावण के नाभि में रामचन्द्र जी महाराज ने बान मार दिया और वह पृथ्वी पर गिर पड़ा तब रामचन्द्र भगवानजी ने लक्ष्मण जी से कहा कि तुम रावण से राज नीति सीख लो। लक्ष्मण जी रावण के शिर की ओर खड़े हो कर बोले कि हे रावण तुम हमको राजनीति बतलाइये। परन्तु रावण न बोला तब लक्ष्मण जी रामचन्द्र जी के पास आकर बोले कि नाथ वह तो बोला नहीं है तब भगवान ने पूछा कि तुम किस ओर खड़े हुए थे लक्ष्मण जी ने कहा कि शिर की तरफ। रामचन्द्र जी बोले कि तुम ने भूल की क्योंकि एक तो हम क्षत्री और वह ब्राह्मण दूसरे जिससे ज्ञान प्राप्त करना होता है उस के पैरों में खड़ा होना पड़ता है यह नीति है अस्तु तुम पैरों की ओर खड़े होकर नीति पूछना।

लक्ष्मण ने रावण के चरणों की ओर खड़े होकर कहा कि हे रावण हमको राजनीति सिखला दीजिये। रावण यह सुनते ही बैठा हो गया और बोला कि तुम पहिले से आते तो मैं राजनीति सिखलाता परन्तु अबतो मैं शिथिल हूं जैसी सामर्थ है सुनाता हूं सुनो।

हे लक्ष्मण जी मैंने विचार किया था कि लंका के पास चार सौ कोस विस्तार वाला खारी समुद्र है मैं इसको मीठा

सोचा था कि स्वर्णमयी लंका है इसमें सुगन्ध बसा दूंगा। (३) तीसरे यह सोचा था कि पिता के सामने पुत्र न मरने दूंगा यमराज तथा ब्रह्मा से जबरदस्ती यह काम करा डालूंगा, (४) चौथे यह सोचा कि बड़े २ मुनीश्वर उग्र तप करते हैं तो भी स्वर्ग नहीं मिलता अस्तु स्वर्ग की सीढ़ी बना दूंगा और आशा को पुरानी कर दूंगा तथा काल को अधिकार ही में रक्खूंगा। परन्तु मैं इन धर्म के कामों को अभी तक न कर सका और मरने का समय आन पहुंचा, तृष्णा ने मुझे ही पुराना कर दिया और काल ने भी मुझ ही पर अधिकार कर लिया और जो अधर्म काम जगतमाता जानकी जी के हरने का था तिसके करने में मैंने विलम्ब न किया तिसका परिणाम यह निकला कि सपरिवार नष्ट हो ही गया सो हे लक्षमण जी एक नीति तो यही है कि धर्म के काम में विलम्ब न करे और अधर्म के काम में सलाह ले यदि कोई सलाह देभी दे तो टालता ही रहे हाय मैंने त्रिभुवन पति श्री रामचन्द्र जी से द्रोह किया। हे लक्षमण जी धर्म के काम को—

दोहा—कालि करै सो आजु करि, आजु करै सो अब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करोगे कब ॥

अस्तु धर्म के काम में विलम्ब न करे और मैंने जो चार बात विचारी थीं सो कल्पना मात्र हो गई।

४७ मनोइच्छा नास्ती दैवी इच्छा वर्तते।

रावण ने कहा कि मन की जो कल्पना होती है वह नाशवान् होती है, एक राजा के कन्या उत्पन्न हुई थी। राजा ने एक ब्राह्मण को बुलाया। ब्राह्मण ने कन्या की हस्तरेखा देख कर कहा कि, राजन् इसके वरने वाला राजा होगा। राजा तो होना ही चाहिए क्योंकि राजपुत्री है किन्तु वह चक्रवर्त्ती राजा होगा इतने ही में ब्राह्मण के उदर में विचार उठा कि यदि किसी तरह यह कन्या मुझे मिल जाय तो मैं ही चक्रवर्त्ती राजा हो जाऊंगा। यह विचार कर राजा से कहा कि नाथ इसके वरने वाला तो राजा होगा परन्तु यह कन्या आपको दुखदाई होगी इस हेतु इसको एक सन्दूक में बन्द करके नदी में छोड़ दीजिये, क्योंकि इसका मोह अभी तो दुख न देगा राजा ने ऐसा ही किया।

अब इधर वे ब्राह्मण भी दूर जा नदी के तीर बैठ गये परन्तु बीच में दैवयोग से एक राजा ने आकर अपने नौकरों से उसे निकलवा लिया और वन में से एक रीछ पकड़ कर सन्दूक में बन्द कर दिया कन्या को अपने घर ले गया। इधर जब सन्दूक उस ब्राह्मण के तीर पहुंचा तो ब्राह्मण फूला न समाया और सन्दूक को लेकर घर पहुंचा और मन ही मन में चक्रवर्त्ती हो गया जब घर में जाकर सन्दूक को खोला तो रीछ ने निकल उसे मार दिया सो हे लक्ष्मण जी मनोइच्छा नास्ती दैवी इच्छा वर्तते।

मैंने जो मन में कल्पना की थी सो सब का नाश हुआ और दैव की जो इच्छा थी सो वही बस में अब इतनी ही शिक्षा दे सकता हूँ अब आप जाइये । लक्ष्मण जी वहाँ से फिर राम जी के पास आ गये और सारा हाल बतला दिया ।

---

४८ जिस वस्तु का जो जितना रसज्ञ होगा वह उसे उतनी ही सरस होगी ।

यह नियम है कि पदार्थ चाहे एक ही हो किन्तु उसका जो मनुष्य जितना रसज्ञ होगा उसे वह उतनी ही सरस मालूम पड़ेगी और जो रस को जानता ही नहीं उसे तो रस मय पदार्थ भी सरस प्रतीत नहीं होता जैसे ब्रह्म सर्वत्र ही है परन्तु उसके परमानन्द की सबको समान अनुभूति नहीं होती उसकी स्फुट प्रतीति तो भावुक भक्त गण तथा आत्माराम मुनियों को ही होती है ।

एक चित्रकार ने एक चित्र बना कर तैयार किया और उसे हर्ष पूर्वक राज दरबार में ले गया किन्तु राजा को उसे देख कर विशेष प्रसन्नता न हुई तथापि अपने वैभव की ओर ख्याल करके धनकोषाधिकारी को हुक्म दिया कि इसे एक हजार रुपये पुरुस्कार में दे दीजिये यह सुन चित्रकार ने राजा को चित्र न दिया और वापिस ले कर अपने घर जा रहा था । मार्ग में राजा का एक कर्मचारी मिला और चित्र के देखने को

लालायित हुआ परन्तु चित्रकार ने यह सोच कर कि जस राजा तस प्रजा उसे चित्र न दिखाया परन्तु कर्मचारी के बार २ आग्रह पूर्वक कहने से चित्र दिखला दिया। वह चित्र को देखते ही दंग रह गया और कहने लगा कि आपकी हस्त कौशल को कोटि बार धन्यवाद है। मैं इसे लेना चाहता हूं परन्तु मेरे पास एक धोती के कुछ नहीं अस्तु एक लंगोटी भर धोती फाड़ कर आपने पहिन ली और सब चित्रकार को देदी, चित्रकार भी हर्ष पूर्वक ले गया।

इधर जब राजा ने इस समाचार को सुना तो क्रोधित हो उस चित्रकार को बुलाया और कहा कि तू ने क्या समझ कर हमारा अनादर किया जो चित्र एक हज़ार रुपये में न देकर फटी धोती में ही देदिया। तब चित्रकार हाथ जोड़कर बोला कि हे स्वामी आप चित्र के महत्व अर्थात् कला कौशल को नहीं समझे। परन्तु अपने वैभव के ख्याल से उदास चित्त हो कर एक हजार रुपये दे रहे थे। तथापि आपके कर्मचारी ने इसके महत्व को समझा है जो उस समय इसके पास जो कुछ था हर्ष पूर्वक मुझे दे दिया। मैंने भी आपके एक हजार रुपयों से इसके प्रसन्न चित्त अल्प पुरुस्कार को अधिक समझ कर सहर्ष ले लिया। राजा यह सुन कर लज्जित हो गया और उसे पुरुस्कार दे छोड़ दिया

——❀——

नं० ४९ संत और असंत

विज्ञानी सन्त उसी को कह सकते हैं जो सांसारिक सुखों को तृण के समान त्याग दे और लोभ हर्ष भय तथा आमर्ष रहित हो अथवा विषय अलपट हो और शीलादि गुणों का निधान हो। पराये दुख में दुखी और सुख में सुखी हो जिसका न कोई बैरी हो और न प्रिय हो समत्व भावुक तथा खल जनों के बुराई करने पर भी उनको भलाई करे जैसे कहा है कि—

दोहा०—तुलसी सन्त सुअम्ब तरु, फूल फलहिं पर हेत ।
इतते वे पाहन हने, उतते वे फल देत ॥

सन्त और असन्त की ऐसी करनी है जैसी कुठार की चदन के साथ, कुठार के काटने पर भी चंदन अपने गुण से उसकी धार में सुगंध बसा देता है इसका फल यह होता है कि वही चंदन फिर देवताओं के शिर पर चढ़ाया जाता है और कुठार की यह गति होती है कि आग में तपा कर तथा निहाई पर रख कर घन की चोटों से कूटा जाता है। संत जनों का स्वभाव ऐसा होता है कि बुराई करने पर भलाई करते हैं। इस पर निम्नलिखित दृष्टान्त प्रमाण देकर संत के स्वभाव की पुष्टि करता है।

एक नगर में एक महा दरिद्री ब्राह्मण रहता था यही

तक कि उसको पेट पूर्ती के लिये भिक्षा भी कम मिलती थी और वह ब्राह्मण के वेद कथित कर्मों से रहित था विद्या तो बिल्कुल ही न पढ़ा था । इस प्रकार की दरिद्रता के दुख से दुखी था कुछ दिन पश्चात उसके भाग्य ने पल्टा खाया तो स्वयं ही उसके हृदय में विचार उत्पन्न हुआ कि अब मुझको राजा के घर जाय भिक्षा मांगनी चाहिए ऐसा निश्चय कर अपनी पत्नी से कुछ भोजन का सामान कराके और घर का प्रबन्ध करके चल दिया ।

चलते २ मार्ग में उसे एक सुन्दर तालाब मिला उस का पानी निर्मल था ब्राह्मण ऐसे स्थान को देख कर वहीं पर स्नान करके भोजन के लिये बैठा तो सामने की बामी से एक काला भुजग निकला ब्राह्मण उसे देखकर भयभीत हुआ ब्राह्मण को भयभीत देख सर्प ने कहा कि आप निर्भय हो जाइये मैं तुमको न काटूंगा किन्तु यह बतलाइये कि आपने कहाँ को और किस हेतु प्रस्थान किया है । ब्राह्मण बोला कि मैं महा दीन हू अस्तु राजा के द्वार भिक्षा की चेष्टा कर के जाता हूं । नाग बोला कि तुम को इस प्रकार धन नहीं मिलेगा हम बतावें सः प्रयत्न करना ।

सर्प बोला कि प्रथम तुमको राज मंत्री मिलेगा तुम उससे कहना कि मैं ज्योतिषी ब्राह्मण हूं और राजा के एक प्रश्न का उत्तर एक साल के लिये देता हूं फिर वह तुमको राजा के पास ले जायगा फिर तुम को राजा सम्वत् के विषय

में पूछेगा तब तुम कह देना कि राजन् इस साल में अधिक वर्षा होगी जिससे मनुष्य पशु और पक्षी सब दुख पावेंगे।

जब ब्राह्मण देवता राजा के नगर में पहुचा तो प्रथम उसे मंत्री ही मिला मन्त्री ने पूछा तुम कौन हो। ब्राह्मण ने कहा कि मैं ज्योतिषी पंडित हूं और केवल राजा के एक ही प्रश्न का उत्तर एक साल को देता हूं। मंत्री ने उसे अपने मकान पर आदर पूर्वक ठहराया और सवेरा होते ही टायम पर ब्राह्मण को राज दरबार में ले गया और राजा को सब वृतान्त सुनाया तो राजा ने वही नाग वाला प्रश्न पूछा ब्राह्मण ने प्रसन्न हो नाग ही वाला उत्तर बतला दिया।

राजा के दरबार में ब्राह्मण चार माह तक रहा अन्त में वह प्रश्न वर्षा का ठीक निकला तो राजा ने ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर बिदा किया और कहा कि महाराज कुछ और आज्ञा है तब उस असंत ब्राह्मण ने यह शोच कर कि इस प्रश्न को नाग किसी और को भी बतला देगा तो मेरी रोटी मारी जायगी अस्तु उसे मार देना चाहिये यह सोच राजा से कहा कि महाराज सौ कहार मेरे साथ भेज दीजिये राजा ने ऐसा ही किया।

ब्राह्मण सौ कहारों को उसी तालाब पर लाया और संत सर्प की बामी में पानी डलवाने लगा और पुन बामी को पानी से भरवा कर अपने घर आया और आनन्द पूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

जब दूसरी साल प्रारम्भ हुई तो फिर पहिले की तरह ही उसी तालाब में स्नान करके भोजन को बैठा तभी वही सर्प बामी में से निकल कर दिखलाई दिया ब्राह्मण उसे देख कर हुत भयभीत हुआ कि मैं तो इसको मरा जान कर चला या था किन्तु यह तो जिन्दा है अस्तु अब क्रोधित होकर फ़े न छोड़ेगा। नाग उसे बहुत डरायमान् जान कर बोला कि आप निर्भय हो जाइये मैं आपसे कुछ न कहूंगा।

नाग ने कहा कि अब आपने कहां को प्रस्थान किया है ब्राह्मण बोला कि उसी राजा के यहां जाता हूं, तब नाग ने कहा कि अबकी बार क्या बतलाओगे, ब्राह्मण बोला कि अधिक र्षा।

सर्प—इस तरह पोल खुलने पर तुमको दण्ड मिलेगा, अब से यह कहना कि अग्नी भय होगा।

यह सुन विप्र वहां से चल दिया। जब राजदरबार में हुंचा तो ब्राह्मण को राजा ने प्रणाम कर पूछा कि महाराज जी अबके कैसा सम्वत् है।

ब्राह्मण—राजन्! अबके अग्नी भय है, प्रजा दुखी रहेगी।

राजा ने चार माह तक उसे अपने राज्य में रक्खा तो प्रत्यक्ष ही अग्नी भय हुआ फिर राजा ने ब्राह्मण को धन देकर विदा किया और चलते समय पूछा कि महाराज कुछ और आज्ञा है।

ब्राह्मण—सौ गट्ठा लकड़ी भिजवा दीजिये राजा ने वही किया।

अब उस दुष्ट स्वभाव ब्राह्मण ने सर्प की बामी पर लकड़ी रखवाकर अग्नि देदी और अपने घर की राह ली और आनन्द से रहने लगा।

जब तीसरी साल प्रारम्भ हुई तो फिर उसी तालाब पर स्नान कर भोजन को बैठा तो वही सर्प फिर निकला अब ब्राह्मण कांपने लगा परन्तु नाग ने फिर भी प्रिय भाषण किया और कहा कि राजा से अब की बार यह कहना कि प्रजा सुखी रहेगी। ब्राह्मण ने राजा के यहां जाकर पूछने पर वही बतलाया। राजा ने फिर भी उसे चार माह तक रक्खा और सम्वत् ज्यों का त्यों हुआ राजा ने प्रसन्न हो उसे अत्यन्त धन दिया और कहा कि कुछ और आज्ञा है तब ब्राह्मण ने विचार किया कि नाग ने मुझे तीन बार सम्वत् प्रश्न बतलाकर धन दिलवाया है किन्तु मुझ पर अज्ञानी ने ऐसे संत के साथ ऐसा बुरा बर्ताव किया है। ऐसा विचार कर राजा से सौ गढ़ा दूध माँग कर बामी पर ले गया और सर्प की विनती की तब सर्प पहिले जैसा स्वभाव से हो निकला ब्राह्मण ने हाथ जोड़ कर क्षमा प्रार्थना की।

नाग बोला कि तुमने मेरे साथ में जो दुष्कर्म किया मैं न उससे क्रोधित हुआ और न अब दूध डालने से प्रसन्न हूं सदैव एक स्वभाव रहता हूं तुमने जो कुछ किया उसमें तुम्हारा दोष नहीं क्योंकि मैं भी तो राजा के राज्य में निवास करता हूं। जब तुमने राजा से कहा था कि जल

से प्रजा दुखी होगी तो मैं भी जल से तुम्हारे द्वारा दुखी हुआ और दुबारा अग्नी भय में अग्नी से दुखी हुआ फिर तीसरी बार प्रजा के सुखो रहने से तुम मुझको भी दूध लाये हो सो हे ब्राह्मण जिस भाँति प्रजा रही उसी तरह मैं भी रहा क्योंकि मैं भी तो राजा की प्रजा में निवास करता हूं इसी प्रकार वार्तालाप कर के ब्राह्मण अपने घर आया और प्रमोद से जीवन व्यतीत किया ।

——o——

नं० ५० चार बातें

एक दिन धर्मराज युधिष्ठर ने श्री मदन मोहन भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी से पूछा कि हे नाथ ! इस ससार में जो बढ़ै ही बढ़ै वह क्या है तथा जो घटै ही घटै वह क्या है और जो घटै भी बढ़ै भी सो क्या है और जो न घटै न बढ़ै वह क्या है ।

यह सुन भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी ने कहा कि जो बढ़ै बढ़ै वह तृष्णा है क्योंकि तृष्णा बालकपन में पैरों में रहती और युवावस्था में वह शरीर (पेट) में पहुंच जाती है, तथा द्वावस्था में तृष्णा का निवास जिभ्या पर रहता है। जिभ्या स्त्री है वह हर वक्त कुछ न कुछ नई वस्तु की चाह करती ही रहती है ऐसा शास्त्र पुराण भी वर्णन करते हैं कि ज्यों २ मनुष्य की उम्र घटती है त्यों २ तृष्णा बढ़ती है । मनुष्य उसी के पूर्ण करने में लवलीन रहता है और जो भवसिंधु से पार

में पूछेगा तब तुम कह देना कि राजन् इस साल में अधिक वर्षा होगी जिससे मनुष्य पशु और पक्षी सब दुख पावेंगे।

जब ब्राह्मण देवता राजा के नगर में पहुचा तो प्रथम उसे मंत्री ही मिला मन्त्री ने पूछा तुम कौन हो। ब्राह्मण ने कहा कि मैं ज्योतिषी पंडित हूं और केवल राजा के एक ही प्रश्न का उत्तर एक साल को देता हूं। मंत्री ने उसे अपने मकान पर आदर पूर्वक ठहराया और सवेरा होते ही टायम पर ब्राह्मण को राज दरबार में ले गया और राजा को सब वृतान्त सुनाया तो राजा ने वही नाग वाला प्रश्न पूछा ब्राह्मण ने प्रसन्न हो नाग ही वाला उत्तर बतला दिया।

राजा के दरबार में ब्राह्मण चार माह तक रहा अन्त में वह प्रश्न वर्षा का ठीक निकला तो राजा ने ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर बिदा किया और कहा कि महाराज कुछ और आज्ञा है तब उस असंत ब्राह्मण ने यह शोच कर कि इस प्रश्न को नाग किसी और को भी बतला देगा तो मेरी रोटी मारी जायगी अस्तु उसे मार देना चाहिये यह सोच राजा से कहा कि महाराज सौ कहार मेरे साथ भेज दीजिये राजा ने ऐसा ही किया।

ब्राह्मण सौ कहारों को उसी तालाब पर लाया और संत सर्प की बामी में पानी डलवाने लगा और पुन बामी को पानी से भरवा कर अपने घर आया और आनन्द पूर्वक दिन व्यतीत करने लगा।

जब दूसरी साल प्रारम्भ हुई तो फिर पहिले की तरह ही उसी तालब में स्नान करके भोजन को बैठा तभी वही सर्प बामी में से निकल कर दिखलाई दिया ब्राह्मण उसे देख कर बहुत भयभीत हुआ कि मैं तो इसको मरा जान कर चला गया था किन्तु यह तो जिन्दा है अस्तु अब क्रोधित होकर मुझे न छोड़ेगा। नाग उसे बहुत डरायमान् जान कर बोला कि आप निर्भय हो जाइये मैं आपसे कुछ न कहूंगा।

नाग ने कहा कि अब आपने कहां को प्रस्थान किया है ब्राह्मण बोला कि उसी राजा के यहां जाता हूं, तब नाग ने कहा कि अबकी बार क्या बतलाओगे, ब्राह्मण बोला कि अधिक वर्षा।

सर्प—इस तरह पोल खुलने पर तुमको दण्ड मिलेगा, अब से यह कहना कि अग्नी भय होगा।

यह सुन विप्र वहां से चल दिया। जब राजदरबार में पहुंचा तो ब्राह्मण को राजा ने प्रणाम कर पूछा कि महाराज जी अबके कैसा सम्वत् है।

ब्राह्मण—राजन्! अबके अग्नी भय है, प्रजा दुखी रहेगी।

राजा ने चार माह तक उसे अपने राज्य में रक्खा तो प्रत्यक्ष ही अग्नी भय हुआ फिर राजा ने ब्राह्मण को धन देकर विदा किया और चलते समय पूछा कि महाराज कुछ और आज्ञा है।

ब्राह्मण—सौ गट्ठा लकड़ी भिजवा दीजिये राजा ने वही किया।

अब उस दुष्ट स्वभाव ब्राह्मण ने सर्प की बामी पर लकड़ी रखवाकर अग्नि देदी और अपने घर की राह की और आनन्द से रहने लगा।

जब तीसरी साल प्रारम्भ हुई तो फिर उसी तालाब पर स्नान कर भोजन को बैठा तो वही सर्प फिर निकला अब ब्राह्मण कांपने लगा परन्तु नाग ने फिर भी प्रिय भाषण किया और कहा कि राजा से अब की बार यह कहना कि प्रजा सुखी रहेगी। ब्राह्मण ने राजा के यहां जाकर पूछने पर वही बतलाया। राजा ने फिर भी उसे चार माह तक रक्खा और सम्वत् ज्यों का त्यों हुआ राजा ने प्रसन्न हो उसे अत्यन्त धन दिया और कहा कि कुछ और आज्ञा है तब ब्राह्मण ने विचार किया कि नाग ने मुझे तीन बार सम्वत् प्रश्न बतलाकर धन दिलवाया है किन्तु मुझ पर अज्ञानी ने ऐसे संत के साथ ऐसा बुरा बर्ताव किया है। ऐसा विचार कर राजा से सौ गड़ा दूध माँग कर बामी पर ले गया और सर्प की विनती की तब सर्प पहिले जैसा स्वभाव से ही निकला ब्राह्मण ने हाथ जोड़ कर क्षमा प्रार्थना की।

नाग बोला कि तुमने मेरे साथ में जो दुष्कर्म किये मैं न उससे क्रोधित हुआ और न अब दूध डालने से प्रसन्न हूं सदैव एक स्वभाव रहता हूं तुमने जो कुछ किया उसमें तुम्हारा दोष नहीं क्योंकि मैं भी तो राजा के राज्य में निवास करता हूं। जब तुमने राजा से कहा था कि जब

से प्रजा दुखी होगी तो मैं भी जल से तुम्हारे द्वारा दुखी हुआ और दुबारा अग्नी भय में अग्नी से दुखी हुआ फिर तीसरी वार प्रजा के सुखी रहने से तुम मुझको भी दूध लाये हो सो हे ब्राह्मण जिस भाँति प्रजा रही उसी तरह मैं भी रहा क्योंकि मैं भी तो राजा की प्रजा में निवास करता हूं इसी प्रकार वार्तालाप कर के ब्राह्मण अपने घर आया और प्रमोद से जीवन व्यतीत किया ।

——o——

नं० ५० चार बातें

एक दिन धर्मराज युधिष्ठर ने श्री मदन मोहन भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी से पूछा कि हे नाथ ! इस संसार में जो बढ़ै ही बढ़ै वह क्या है तथा जो घटै ही घटै वह क्या है और जो घटै भी बढ़ै भी सो क्या है और जो न घटै न बढ़ै वह क्या है ।

यह सुन भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी ने कहा कि जो बढ़ै ही बढ़ै वह तृष्णा है क्योंकि तृष्णा बालकपन में पैरों में रहती है और युवावस्था में वह शरीर (पेट) में पहुंच जाती है, तथा वृद्धावस्था में तृष्णा का निवास जिम्या पर रहता है। जिम्या इन्द्री है वह हर वक्त कुछ न कुछ नई वस्तु की चाह करती ही रहती है ऐसा शास्त्र पुराण भी वर्णन करते हैं कि ज्यों २ मनुष्य की उम्र घटती है त्यों २ तृष्णा बढ़ती है । मनुष्य उसी के पूर्ण करने में लवलीन रहता है और जो भवसिंधु से पार

कर्त्ता मेरा नाम है उसे भूल कर इस अमूल्य नर देह से हाथ धो बैठता है अर्थात् मर जाता है परन्तु तृष्णा तब भी संग जाती है, कहा भी है कि—

माया मरी न मन मरे, मरि २ गये शरीर।
आशा तृष्णा ना मिटी, कथि गये दास कबीर॥

अन्त में मनुष्य को तृष्णा का दास बन कर आवागमन में भ्रमण करना पड़ता है अस्तु तृष्णा का सदैव त्याग करना उचित है।

दूसरे जो घटै ही घटै वह उम्र है, (३) तीसरे जो घटै भी और बढ़ै भी मन की चंचलता है और (४) चौथे जो न घटै न बढ़ै वह प्रारब्ध है, जो कुछ विधाता ने प्रारब्ध में लिख दिया है वह कदापि भी नहीं मिटता और न बढ़ता है।

———❀———

नं० ५१ मैं कौन हूं

एक शिष्यने अपने गुरु से कहा कि हे स्वाभाविक दयालु गुरो आप आत्म तत्व के जानने हारे पुरुषों में शिरोमणि हो। भगवान मैं कौन हूं क्या मैं यह स्थूल शरीर हूं या दस इन्द्रिय हूं अथवा चंचल मन में हूं या पंच प्राण हूं अथवा बुद्धि मैं हूं या इन सम्पूर्ण इन्द्रिय मन प्राणादिकों का जो समूह है सो मैं हूं अर्थात् इन षट् विकल्पों में से कौन हूं कृपा कर मेरे प्रति वर्णन कीजिये।

गुरू ने कहा कि हे शिष्य तूने प्रथम कहा है कि यह स्थूल शरीर मैं हूं सो तू नहीं है क्योंकि तेरा यह शरीर तो पञ्च भूत (आकाश, वायु, अग्नि, अम्बु (जल) और पृथ्वी) से मिलकर बना है किन्तु आत्मा इन पंच्च तत्वों से सर्वथा पृथक है अस्तु शरीर में आत्म बुद्धि करना निरर्थक है विष्णु पुराण में लिखा है कि—

पंचभूतात्मके देहे देही मोहतमोवृत।
अहंममैतदित्युच्चै कुरुते कुमतिर्मतिम् ॥

अर्थ—यह अज्ञानी जीव मोह रूपी अन्धकार से आवृत हो इस पंच तत्व से बनी देह में मैं और मेरापन का भाव करता है। किन्तु शरीर तो जड़ है क्योंकि मात पिता के रजो वीर्य और अन्न दूधादि जड़ पदार्थों का कार्य है ऐसा नियम है कि जैसा कारण होता है तैसा ही कार्य होगा अस्तु शरीर के कारण अन्नादि जड़ हैं तो यह भी जड़ हुआ इसलिये तू शरीर तो कदापि नहीं हो सकता है और जीव तो नित्य है किन्तु शरीर अनित्य है जैसा कहा है कि—

जीवापेत वाव किलेदं म्रियतेने जीवो म्रियते।

अर्थ—जीव से पृथक हुआ शरीर ही नाश हो जाता है जीव नहीं मरता निदान यहाँ भी शरीर से जीव पृथक हुआ।

———०———

५२ इन्द्रिय ही जीव का स्वरूप नहीं है।

जब शिष्य ने दूसरा विकल्प जो किया था कि इन्द्रिय

स्वरूप मैं ही हूं इस पर गुरुजी ने कहा कि तुम इन्द्रिय स्वरूप भी नहीं हो सकते हो क्योंकि शब्दादि विषयों के ग्रहणकरने हारी नेत्र श्रोतादि पांच ज्ञानेन्द्रिय और हस्त पादादि पांच कर्मेन्द्रिय क्रमशः सतोगुण और रजोगुण से उत्पन्न हैं, सतोगुण और रजोगुण जड़ है, निदान इनकी कार्य रूपा इन्द्रिय भी जड़ हुई अस्तु जीव इन्द्रिय स्वरूप भी नहीं है क्योंकि जीव तो चैतन्य है और कल्पना की जाय कि इन्द्रिय ही जीव स्वरूप हैं तो अन्धे बहिरे मूक और पंगु आदि जो इन्द्रिय हीन हैं उनका निर्वाह कैसे होता है जब तक इस शरीर रूपी पिंजड़े में जीव रूपी पक्षी निवास करता है तब तक तो पुरुष को जीता कहते हैं और जीव निकलने पर मरा हुआ जब इंद्रिय ही जीव स्वरूप हैं तो अन्धे मूकादि जो इंद्रिय रहित हैं उनका तो निर्वाह होना ही नहीं चाहिये परन्तु ये तो औरों की तरह ही खाते पीते चलते फिरते दृष्टि आते हैं अस्तु दस इंद्रिय भी तू नहीं है। सामवेद की छांदोग्य उपनिषद में यह प्रसंग लिखा है कि एक समय इंद्रियों में वाद विवाद छिड़ा एक कहती थी मैं श्रेष्ट हूं दूसरी कहती मैं श्रेष्ट हूं इसी भांति सब श्रेष्ट बनने लगीं तब सब परस्पर सलाह करके पितामह ब्रह्माजी के पास गईं और बोलीं कि हे नाथ हम सब में से कौन श्रेष्ट है यह सुन पितामह जी ने कहा कि तुम में से जिस के बिना शरीर स्थिर न रहे वही श्रेष्ट है यह सुन पहिले वाचा इन्द्रिय निकल गई और साल बाद आई परन्तु शरीर को ज्यों का त्यों पाया तब कहने

लगी कि तुम मेरे विना कैसे बचीं यह सुन औरों ने कहा कि जैसे गूंगा पुरुष सर्व व्यवहार करता हुआ जीता रहता है तैसे हम भी रहीं इसी प्रकार सब इन्द्रियाँ निकल कर एक साल बाद आती रहीं परन्तु शरीर का कुछ भी न बिगड़ा परन्तु जब प्राणों के सहित जीवात्मा निकलने लगा तो सर्व इन्द्रियाँ व्याकुल हो गई और शरीर पतित होने लगा परन्तु इन्द्रियों के प्रार्थना करने पर जीवात्मा के स्थिर होने से शरीर स्थिर रहा यदि इन्द्रिय ही जीव स्वरूप होतीं तो उनके न रहने पर शरीर भी न रहता अस्तु तू इन्द्रिय भी नहीं है और जैसे हमको किसी चीज को जानना है तो चीज संज्ञा और जानना क्रिया और जानने वाला कर्ता है ऐसे ही यह मेरे नेत्र हैं यह मेरे हाथ पैर हैं और ये मेरे कान हैं इस भाँति तू सर्व इन्द्रियों को जानता है अस्तु तू कर्ता इन्द्रियाँ कार्य [संज्ञा] और जानना क्रिया पृथक २ हैं और यह नियम भी है कि जो जिस को जानता है वह उससे पृथक होता है अस्तु तू दश इन्द्रिय भी नहीं है ॥

---o---

५३ मन भी जीव स्वरूप नहीं है

तीसरे विकल्प में शिष्य ने जो कहा था कि मन मैं ही हूं इस पर गुरूजी कहते हैं कि तू मन भी नहीं है क्योंकि पंच महा भूतों के सत्व अंश का कार्य होने से जड़ है और ऐसा कथन है कि जिस समय जिस गुण की अधिक प्रबलता होती है

उस समय मन की वैसी ही वृतियाँ हो जाती हैं जैसे कि तमोगुण के प्रबल होने पर तन्द्रा भ्रान्ति निद्रा ग्लानि मन की वृतियाँ हैं और रजो गुण के प्रबल होने पर भोग तथा वैभव की चेष्टा और कर्म करने में उत्साह तथा स्त्री धन पुत्रादिक विषयों में राग मन की वृतियाँ हैं और सतोगुण के प्रबल होने पर शाँति विराग धर्म में रुचि और प्रसन्नता आदि मन की वृतियाँ हैं और मनकी गति पवन से भी तीव्र है। इस हेतु मन विकारी हुआ किन्तु वेद, शास्त्र, पुराण और संतादि आत्मा को निर्विकार बतलाते हैं और यह नियम है कि जो वस्तु विकारी है सो अवश्य ही नाश होगी परन्तु आत्मा अविनाशी है जैसा कि श्रीकृष्ण भगवान जी ने गीता जी में कहा है—

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥ २३ ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएवच ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोयं सनातनः ॥ २४ ॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।

अर्थ—हे अर्जुन इस आत्मा को न शस्त्रादि काट सकते हैं और न अग्नि जला सकती है तथा जल गीला नहीं कर सकता है और पवन इसको सुखा नहीं सकता है ॥ २३ ॥ क्योंकि यह आत्मा अच्छेद्य है और अदाह्य, अक्लेद्य और अशोष्य है तथा यह आत्मा निःसन्देह नित्य सर्वव्यापक अचल स्थिर रहने वाला और सनातन है ॥ २४ ॥ और यह आत्मा इन्द्रियों

का अविषय, मन का अविषय और विकार रहित अर्थात् न बदलने वाला कहा जाता है और यह अखँडित आत्मा मन की श्रेय और अश्रेय वृतियों को सवदा जानता है यदि आत्मा विकारी होता तो कभी जानता और कभी न जानता अस्तु आत्मा निर्विकार ही सिद्ध हुआ और मन अपने विषयों को कभी जानता है कभी नहीं अस्तु यह विकारी है। इस कारण हे शिष्य तू मन भी नहीं है।

॥ नं० ५४ प्राण भी जीव स्वरूप नहीं है ॥

शिष्य ने चौथे विकल्प में जो कहा था कि प्राण ही मैं हूं तिस पर गुरू जी कहते हैं कि हे शिष्य इस नाशवान शरीर के अन्दर १ प्राण २ अपान् ३ व्यान ४ समान ५ उदान ६ नाग ७ कूर्म ८ कृकल ९ देवदत्त १० धनंजय दस भांति का प्राणगण है सो भी तू नहीं है क्योंकि पंच महाभूतों का कार्य है अस्तु जड़ हैं यदि प्रान समूह को चेतन्य माना जाय तो यह शंका है कि जिस समय पुरुष शयन करता है तो प्राण चलते रहते हैं किन्तु अवसर पाकर समीप रक्खे हुए धन को चोर चुरा ले जाते हैं यदि यह जड़ न होता तो क्या इसको खबर न पड़ती अस्तु तू प्राण समूह भी नहीं है।

नं० ५५ बुद्धि भी जीव स्वरूप नहीं है

शिष्य के पांचवे विकल्प का उत्तर देते हुए गुरू जी कहते हैं कि अच्छे और बुरे कर्मों के जानने हारी जो बुद्धि है सो तू नहीं है क्योंकि यह बुद्धि पंच महाभूतों के सत्व अंश का कार्य होने से जड़ है और विकारी भी है क्योंकि जाग्रत और स्वप्नावस्था में तो बुद्धि रहती है और सुषुप्ति काल में इसका विलय हो जाता है अस्तु उत्पत्ति और नाशवान् होने से बुद्धि विकारी है और आत्मा इनसे सर्वदा पृथक और अमर है इस हेतु हे शिष्य तू बुद्धि भी नहीं हो सकता है। अस्तु तू एक निर्विकल्प अजर अमर आत्मा है।

नं० ५६ हरि गर्व के खर्वकारी हैं

एक दिन सत्यभामा ने विचार किया कि मैं त्रिलोकीनाथ की प्रिय भार्या हूं इस कारण इस विधि की सृष्टि में मुझ से बड़ा कौन है मैं ही संसार की जननी (माता) हूं।

इसी प्रकार पक्षिराज के हृदय में अहंकार उत्पन्न हुआ कि भगवान चौदह भुवनों को धारण किये हुए हैं तिन भगवान का मैं वाहन हूं जो इतने बोझ को लेकर उड़ता हूं इस संसार में मेरे समान तीव्र गामी कोई नहीं है अस्तु मैं उड़ने में अद्वितीय हूं इसी हेतु तो भगवान ने मुझे अपना वाहन बनाया है।

इसी भांति चक्र सुदर्शन ने विचारा कि मैं भगवान का

आयुध हूं और अजेय हूं अस्तु मुझसे बड़ा कोई नहीं है।

श्री कमल नयन भगवान तो घट २ निवासी हैं तीनों के अहंकार को जान गये और खिन्न चित्त होगये यह देख सत्यभामा ने पूछा कि हे करुणा अयन सोच विमोचन भगवान आप आज शोक से उदास चित्त क्यों हैं।

भगवान—मुझे अपने पुराने भक्त का स्मरण हो आया और अब उनके बिन देखे एक पल भी काटना कठिन है।

सत्यभामा—हे नाथ ऐसे परम प्यारे भक्त को बुला क्यों नहीं लेते।

भगवान—यदि मैं राम रूप धारण करूं तो वे भक्त आ सकते हैं नहीं तो इस रूप से इनके विरह में दुख ही भोगना पड़ेगा। इस पर भी यहां तुम कोई सीता का रूप धारण नहीं कर सकती हो।

सत्यभामा—नाथ मैं सीता का रूप अवश्य धारण करूंगी।

यह सुन भगवान ने ऋष्यमूक पर्वत पर गरुड़ को भेजा तुम पवन तनय हनुमान को बुला कर लाओ। उनसे कहना कि द्वारिकापुरी में श्री रामचन्द्र जी भगवान ने तुमको स्मरण किया है। गरुड़ जी ने ऐसा ही किया। अंजनि कुमार श्री रामचन्द्र जी का नाम सुनते ही ऐसे व्याकुल हो दौड़े कि एक निमष कमलश्रत (ब्रह्मा) के वरषों की श्रेनी के समान व्यतीत होने लगा। पवन कुमार भगवान कृपा से अल्प काल में ही द्वारिका पुरी आगये और गरुड़ जो अपने गमन का अहंकार करता उस पर एक निमष भी हनुमान जी के साथ न उड़ा गयो यह

सब दयानिधि ही की माया थी द्वार पर जो चक्र अजित बनत था उसने हनुमान जी को पका किन्तु महावीर जी ने उसे पुः माला की भाँति हाथ में डाल लिया।

अब श्रीकृष्ण भगवान ने सतभामा से सीता बनो ऐसा कह स्वयं श्री राम रूप धारण करलिया किन्तु सत्यभामा सीत श्रृंगार को सोचती ही रह गई इतने ही में रुक्मिणी जी ने सीत का रूप धारण किया बस हनुमान जी आकरी चरण में ले: गये। भगवान ने तीनों का गर्व निवारण किया अस्तु अहंकार का सर्वदा त्याग करना उचित है।

नं० ५७ पापात्मा के अन्न से साधू के भी स्वभाव बदल जाते हैं

किसी नगर में एक शास्त्र वेता विद्वान ब्राह्मण रहता था। उसकी विद्वता का यश चारों ओर फैल गया था उसी नगर में एक सुनार रहता था और बड़ा भारी पापिष्ठ था। एक दिन उसने उस महात्मा को न्योता दिया। महात्मा उस के पाप द्वारा धन संचय करने से परिचित न थे। उसने महात्मा को भोजन करा दिया। तो उसके भक्षण करते ही महात्मा की धर्म बुद्धि का क्षय हो गया क्यों कि पापात्मा का धन अपना प्रभाव अवश्य ही दिखाता है जैसा प्रसिद्ध है कि जिस समय महाभारत के अन्त में द्रौपदी समेत पांडव सर शैया पर पड़े हुए भीष्म

पितामह के पास राजनोति सीखने गये थे तो भीष्म जी ने राजनीति वर्णन की थी उस समय द्रोपदी ने कहा था कि आपकी यह राजनीति उस दिन कहां गई थीं जब दुष्ट दुर्योधन ने मेरा चीर खिचवाया था। यह सुनते ही भीष्म पितामह जी वहुत दुखी हुए और फिर प्रेम पूर्वक बोले कि हे पुत्री मैंने दुर्योधन पापात्मा का अन्न खाया था अस्तु मेरे पर उसी का प्रभाव था। जब मैं रण भूमि में उसके अन्न का बदला दे चुका हूं तब अब मेरी वुद्धि निर्मल हुई है ऐसे सुनार का अन्न खा कर महात्मा की वुद्धि में अन्तर पड़ गया।

महात्मा की कुटी के पास नगर के साहूकार का एक लड़का नित्य प्रति खेलने आया करता था उस दिन वह वालक कुछ सोने की रकम पहिन आया वालक को देखते ही महात्मा लोभ को प्राप्त हो गया और उसे अपने पास वुलाकर थोड़ी ही देर में शिशु हत्या करदी और मन्दिर में छिपा दिया जब साहूकार तलाश करता २ महात्मा के पास गया और पूछने लगा—

महात्मा जी कुछ बढ़ा कर कम्पायमान् चित्त से बात करने लगे इतने ही में किसी मनुष्य ने कहा कि अभी हाल तो इन्ही के पास था। साहूकार ने सन्देह से उस मन्दिर में ढूढ़ा तो वह मराहुआ मिला निदान यह केस राज दरवारमें गया राजा ने आश्चर्य प्राप्त किया कि ऐसा समदर्शी तथा धर्मात्मा महात्मा जिस पर ऐसा पाप कैसे वना इस में अवश्य ही कोई भेद है। राजा ने साधू से पूछा तुमने आज भोजन कहाँ किया।

महात्मा——इस नगर के सुनार के घर।

राजा तुरन्त ही ताड़ गया कि सुनार पर कोई निकृष्ट धन आया होगा। जिसके भक्षण करने से महात्मा की बुद्धि भ्रष्ट हो गई अन्त में सुनार को बुलाया और पूछा कि तुमने आज कल में किस का आभूषण बनाया है यह सुन सुनार ने कहा कि एक कसाई का आभूषण बनाया था उसी के माल का भोजन महात्मा को भी कराया है। यह सुन राजा को दया आ गई और महात्मा को छोड़ दिया और साहूकार को भी समझा बुझा दिया।

॥ भावार्थ ॥

सच है निकृष्ट भक्षण से साधू भी असाधु हो जाते हैं अन्न की तो क्या निकृष्ट पापात्मा से वार्तालाप करने पर भी पुन्यात्मा के पुन्य क्षीण हो जाते हैं। विष्णु पुराण में कहा है कि—

देवर्षिपितृ भूतानि यस्य निःश्वस्य वेश्मनि।
प्रयान्त्यनर्चितान्यत्र लोके तस्मान्न पाप कृत्।

अर्थ—जिन मनुष्य के घर से देवता व मुनीश्वर और भूत गण बिना सन्मान पाये निःश्वास छोड़ते अन्यत्र चले जाते हैं उन से बढ़कर दूसरा और कोई पापी नहीं है—

सम्भाषणानुप्रश्नादि सहास्यां चैव कुर्वतः।
जायते तुल्यता तस्य तेनैव द्विज वत्सरात्॥

अर्थ—ऐसे पुरुष के साथ एक वर्ष तक सम्भाषण तथा कुशल प्रश्न और उठने बैठने से मनुष्य उसी के समान पापात्मा हो

जाता है तिस में तो महात्मा ने ऐसे के घर भोजन किया था फिर क्यों न बुद्धि मलीन होगी ।

—०—

नं० ५८ मित्र व्यवहार निभाना अति दुर्गम है॥

संसार में धन संचयकरना, ज्ञानप्राप्त करना, मानी होना आदि बहुत कर्मसरल हैं परन्तु मित्रता को निभाना महा दुर्गम है। मित्र से प्रेम में एक बार भी बिगड़ने से उसमें गाँठ पड़ जाती है। जैसे रस्सी के टूटने पर उसमें बहुत सी गांठ लगाते हैं परन्तु वह किसी न किसी दिन खुल ही जाती है। मित्रता के निर्वाह पर एक दृष्टान्त सुनाते हैं कि एक दिन जल ने दूध से कहा कि हे भाई आप हमारे साथ मित्रता करें। दूध ने प्रथम तो अंगीकार न किया परन्तु जब जल का मित्र भाव पर दृढ़ तथा निर्वाही जान कर उसे मित्र बनाया और अपने में मिला अपने ही समान बना लिया। जब दूकानदार ने दूध को भट्टी पर गर्म करने रख दिया तो जल ने अपनी बारी समझ कर अपना मित्र भाव दिखलाया कि अग्नी से आप जल गया परन्तु जब तक आप जीवित रहा तब तक मित्र को न जलने दिया। अब जब दूध ने अपने मित्र का वियोग पाया तो महादुखित हो उफन कर कड़ाही में से निकलने लगा जब दूकानदार ने एक लोटा पानी उसमें मिला दिया। जब दूध को अपना मित्र मिला तो तुरन्त ही उफनने से बन्द हो गया अन्त में दुकानदार ने भट्टी से उतार लिया और बिक्रय किया तो दूध ने अपने मित्र जल

को भी अपने ही भाव में बिकाया।

सच है मित्रता हो तो ऐसी ही हो। मित्रता निर्वाह यह कैसा अनुपम दृष्टान्त है।

नं० ५९ मित्र व्यवहार हो तो ऐसा हो।

मित्र व्यवहार पर ही यह दूसरा लौकिक दृष्टान्त है कि एक मनुष्य ने अपने विदेश यात्रा के समय १००००) दस हजार रुपये गिन कर एक सन्दूक में बन्द कर दिये किन्तु अवसर पाकर उनमें से उसकी स्त्री ने ५००) रुपये निकाल लिये। जब वह विदेश गया तब सन्दूक को उठा कर अपने मित्र के घर रख गया और कुछ दिन पीछे आया और मित्र से वह सन्दूक मांगी मित्र ने कहा कि जहाँ धर गये थे वहां से उठा ले जाइये। यह सुन वह उठा ले गया और अपने घर जाकर ताला खोल कर रुपये गिने तो ५००) पांच सौ रुपये कम निकले। तब वह मित्र के घर गया और बोला कि ५००) पाँच सौ रुपये कम निकले हैं मित्र ने ५००) पाँच सौ रुपये अपने घर से दे दिये जब फिर लौट कर अपने घर आया तो उसकी स्त्री ने कहा कि रुपये गिन कर कहाँ गये थे। पुरुष ने कहा कि ५००) पांच सौ रुपये कम निकले थे सो लाया हूँ तब स्त्रीने कहा कि वे तो मैंने निकाललिए थे। मर्द ने कहा कि तूने पहिले से क्यों नहीं कहा। रुपया लेकर मित्र के घर गया और बोला कि हमारे रुपये तो घर ही मिल गये

यह सुन मित्र ने कहा कि मिल गये तो घर जाओ कोई डर की बात नहीं है। बस इसी तरह निष्कपट मित्रता होनी चाहिये।

——*——
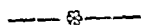
नं० ६० किसी के साथ अधिक स्नेह और संग का रहना दुखकारक है।

श्रीमद्भागवत में यह एक दृष्टान्त है कि एक कबूतर किसी वन की झाड़ी में घोंसला बना कर सहधर्मिणी समेत रहा करता था। ग्रहस्थ और परस्पर के प्रेम बन्धन से बंधे हुए दृष्टि में दृष्टि और मन से मन मिलाये हुए रहते थे। वे उस निर्जन वन में बेखटके खाते पीते, सोते बैठते और बात चीत करते थे। कबूतरी जब जिस वस्तु की चेष्टा करती कबूतर तभी अत्यन्त कष्ट उठा कर उसे वही वस्तु लाकर देता था। कालान्तर में कबूतरी के गर्भ से कई बच्चे उत्पन्न हुए। उनकी मीठी २ बोली और कलरव से हर्षित होते हुए उन दम्पतियों ने बड़े प्रेम से उनका पालन पोषण किया। उनके सुकोमल स्पर्श तथा फुदकनेसे जननी जनक को अत्यन्त प्रमोद होता था इस प्रकार भगवान की माया से मोहित हो कर परस्पर स्नेह बन्धन में बंधे हुए अपनी सन्तान का पालन करते रहे।

एक दिन वे कबूतर कबूतरी चारा लाने के लिए वन में गये और इधर अकस्मात् एक बहेलिये ने घोंसले के आस पास फिरते हुए उन कपोत शावकों को जाल में फंसा लिया। इतने

में कपोत कपोतिनी भी चारा लेकर अपने घोंसला के पास आये और कपोतिनी ने अपने प्राणप्यारों को जाल में फंसे और चिल्लाते देखा तो महादुखित हो और दैव माया से बे सुध हो उस जाल में आ फंसी।

जब कपोत भी अपने प्राण प्यारों को जाल में फंसे देख कर विलाप करने लगा। अहो मुझ दुर्मति पर यह कैसा वज्रपात हुआ। मेरे आज दोनों लोक बिगड़ गये न तो मैं अपने परलोक को सुधार सका और न संसार सुख से ही तृप्त हुआ था। आज मुझ मन्द भाग्य की सब प्रकार योग्य और आज्ञाकारिणी अनुगामिनी भार्या मुझे अकेला छोड़ कर प्यारे बच्चों के साथ स्वर्ग जा रही है। हाय मेरे जीने को धिक्कार है।

इधर कपोतिनी और बच्चे उस जाल में महा दुखी हो कर छूटने को छटपटा रहे थे तो भी यह मन्दमति कबूतर स्नेह वस हो पुत्र पत्नी को मृत्यु के मुंह में जाता देख कर भी बिना सोचे विचारे उस मृत्यु पाश में जा फंसा। अन्त में बहेलिया हर्षित होकर सब को अपने घर ले गया।

एवं कुटिम्ब्यशान्तात्मा द्वन्द्वारामः पतत्रिवत्।
पुष्णन्कुटम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति॥

अर्थ—इस प्रकार जो मनुष्य कुटम्बी शान्ति चित्त रहित हमेशा द्वन्द में ही पड़े रहते हैं वे अपने कुटम्ब के पालन में ही लगे रहने के कारण स्नेह बन्धन में बंध कर दीन हो उस कबूतर की तरह दुख के भागी होते हैं।

यह नर देही मानो मुक्ति का खुला हुआ दरवाजा है जो

जीव इसको पाकर भी कबूतर की तरह घर में लवलीन है वह अज्ञानी महा विमूढ़ कहा जाता है।

महात्मा तुलसीदास जी ने रामायण में लिखा है कि—

नर तन पाय विषय मन देहीं। पलटि सुधाते शठ विष लेहीं॥

अर्थ—यह जो मनुष्य का शरीर है वह अति दुर्लभ और सर्व श्रेष्ट है क्योंकि भगवान ने अपनी अजेय मायाशक्ति से वृक्ष, सरीसृप, पशु, पक्षी, डाँस, और मत्स्य आदि अनेक प्रकार की योनियां रचीं परन्तु उनसे सन्तुष्ट न होने के कारण पुनि उन्होंने ब्रह्म दर्शन की योग्यता वाले इस नर देह को रचा और रच कर अत्यन्त प्रसन्न हुए इसलिए यह मनुष्य देह सर्व श्रेष्ठ है जिसकी देवता हमेशा चेष्टा करते हैं। वास्तव में यह अनित्य है तो भी अति दुर्लभ है। अनेक जन्मों के पश्चात् इस परम पुरुषार्थ के साधन रूप मनुष्य शरीर को पाकर विषयों में मन देते हैं सो वे शठ हाथ में आये हुए अमृत को पलट कर विष हलाहल लेते हैं अर्थात् मनुष्य देह मोक्ष का दरवाजा कहा है जो इस अमृत रूप मोक्ष के दरवाजे को त्याग कर मोह वस विषय रूपी विष को लेते हैं अन्त में वे फिर इस आवागमन के चक्कर में पड़ जाते हैं। यदि प्रत्येक योनि में एक ही साल रहे तो यह मनुष्य देह ८३९९९९९ वर्ष में मिलेगी।

———※———

नं० ६१ तत्वोपदेश से विवेक प्राप्ति।

इस बात को वेद, पुराण और शास्त्र सभी वर्णन करते

है कि तत्वोपदेश से विवेक प्राप्त होता है। सांख्य शास्त्र में कपिल भगवान ने कहा भी है--

राजपुत्रवत्तत्वोपदेशात् ।

अर्थ---राजा के पुत्र के समान तत्वोपदेश होने से विवेक प्राप्त होता है जैसे कि एक राजा के गंड रोग युक्त एक पुत्र पैदा हुआ। राजा ने घृणा करके उसे बाहर बन में फिकवा दिया। उस नव शिशु को शाबर (भील) उठा ले गया और यथाविधि उसका पालन पोषण किया। जब वह राजपुत्र बड़ा हो गया और अपने को शबर मानने लगा उसी काल में उस बालक के पिता राजा का मन्त्री वहाँ आ पहुंचा और राजपुत्र के भील कर्म देख कर बोला कि पुत्र तुम भील नहीं हो किंतु आर्य कुल तिलक हमारे महाराज के पुत्र हो। जब बालक को अपने जन्म का गुप्त वृतान्त ज्ञात हुआ तो वह उसी क्षण से भील कर्म को छोड़ कर राजकर्म में तत्पर हो गया और कालानुसार राज्याधिकारी भी हुआ।

॥ भावार्थ ॥

बस राजा और राजपुत्र के समान ही जीव और ब्रह्म में अन्तर है। परन्तु यह अज्ञान के कारण माया वस अपने को जीव समझ कर आवागमन के जाल में फंसा हुआ है किन्तु जीव ब्रह्म का अंश है गुरू से तत्वोपदेश अर्थात् आत्म ज्ञान होनेपर अपने को जानने लगता है कि मैं कौन हूं। ऊपर राजपुत्र वत् कहने का भी यही आशय है कि जीव और ब्रह्म में राजा

और पुत्र के समान भेद है यदि ऐसा न होता तो राजपुत्रवत् कहने की क्या आवश्यकता थी राजवत् ऐसा ही कह देते। श्री रामचन्द्र भगवान ने भी लक्ष्मण जी से कहा है कि—

दोहा—माया ईश न आपु कहं, जानि कहिय सोइ जीव।
बन्ध मोक्ष प्रद सर्व पर, माया प्रेरक सीव॥

——)ॐ(——

नं० ६२ तत्वोपदेश से विवेक प्राप्ति।

एक वन में एक मृगराज और उसकी पत्नी निर्भय विचरते थे। एक दिन मृगराज की स्त्री ने सिंह उत्पन्न किया। कालान्तर में वह एक गड़रिये के हाथ पड़ गया और उसका लालन पालन करने लगा वह सिंह का बच्चा भेड़ बकरियों के साथ चरता और बड़ा होने पर भी अपने को भेड़ समझने लगा।

एक दिन भेड़ों के साथ वह वन में चरने गया। कुछ देर पश्चात् अचानक ही वहाँ सिंह आ गया उसे देख कर भेड़ बकरियां भागने लगीं तिनके साथ में वह सिंह का बच्चा भी भागने लगा सिंह ने यह देख कर उस सिंह के बच्चे से कहा कि तुम क्यों डर के भागते हो तुम तो सिंह वंशज हो। यदि सत्य न मानो तो मेरा रूप देख कर पानी में अपना प्रतिबिम्ब निहारो। सिंह के बच्चे ने ऐसा ही किया जब उसे अपना रूप ज्ञात हो

गया तो वह भी भेड़ों के खाने में समर्थ हुआ और उसके साथ हो लिया।

॥ भावार्थ ॥

बस इसी प्रकार आत्मज्ञान बिन नर भूल कर जीव कहलाता है ॥

—ॐ—०—ॐ—

नं० ६३ आशा का त्याग ही दुख का त्याग है

आशा कहा या चिन्ता ये शरीर में पावक के तुल्य हैं। यह उर के भीतर ही धुधियार्ती हैं और धूम्र प्रगट नहीं होता है। रक्त और माँस जल जाता है सिर्फ हड्डी शेष रह जाती हैं।

कपिल भगवान ने कहा भी है कि—

निराशा सुखी पिंगलावत्—

जो मनुष्य आशा का सर्वथा त्याग कर देता है वह सदाँ सुखी रहता है जैसे कि पूर्व काल काल में विदेह नगरी में पिंगला नाम की एक वैश्या थी। उसकी चार मनुष्यों के आने का अवसर देखते २ बहुत रात व्यतीत हो गई परन्तु कोई विषयी उसके पास न आया तब वह जाकर पलंग पर सो रही कुछ देर पश्चात् उसे विचार हुआ कि शायद अब कोई आवे। ऐसा विचार कर बाहर आ बैठी रही किन्तु कोई धनवान उसके पास न आया कोई द्वार के सामने होकर जाता तो यह सोचती है कि कोई धन देकर रमण करने वाला नागरिक धनाढ्य होगा। किन्तु जब वह मनुष्य वहां होकर निकल

जाता तो फिर सोचती है कि कोई अधिक धन देने वाला मनुष्य आता होगा। धन की दुराशासे प्रतीक्षा करते २ उसे बहुत रात बीत गई और चित्त व्याकुलता को प्राप्त हो गया। उस समय धनकी चिन्ता से व्याकुल होते हुए उसे परम आनन्दकारी वैराग्य उत्पन्न हुआ, वह कहने लगी कि—

आशा हि परमं दुखं नैराश्यं परमं सुखम्।

अर्थ—आशा परम दुख की मूल है और निराशा परम सुख की मूल है। इस प्रकार कह भगवान के चरणों में प्रेम बढ़ाकर वह शान्ति चित्त हो अपनी सैया पर सो गई और अन्त में परम सुख को प्राप्त हुई। भागवत में कहा भी है कि—

निर्वेद आशा पाशानां पुरुषस्य यथाह्यसिः।

अर्थ—मनुष्य के सुदृढ़ आशा पाश के लिये वैराग्य खड्ग के समान है। जब तक शरीर मे वैराग्य नहीं होता तब तक कोई भी देह बन्धन से छूटना नहीं चाहता। अस्तु आशा को ही दुख जान कर इसी का त्याग सर्व प्रथम परमावश्यकीय है।

—o—

नं० ६४ सांसारिक सुख दुखों का धन ही मूल है।

कपिल भगवान ने कहा है कि—

श्येनवत् सुख दुखी त्याग वियोगाभ्याम्।

संसार का यह नियम है कि जब धन प्राप्त होता है तब तब तो सुख और जब २ वह चला जाता है तब तब दुख होता है।

जैसे कोई बाज किसी पक्षी का मांस लिये चला जाता था। उसी समय किसी व्याध ने उसे पकड़ लिया और उससे वह मांस छीन लिया तो वह बड़ा भारी दुखी हुआ। यदि स्वयं ही उस मांस को त्याग देता तो क्यों दुख भोगता। इसी प्रकार मनुष्य को स्वयं ही विषय वासना धन चेष्टा आदि का त्याग कर देना चाहिये नहीं तो अन्त में यह दुखदाई होगा।

॥ भावार्थ ॥

मनुष्य को स्त्री पुत्र तथा कुटुम्बी जन अत्यन्त प्रिय होते हैं जिनका कि मोह त्यागन करना सुलभ नहीं। परन्तु धन इन से भी प्रिय है। धन के लोभ से मनुष्य इन सबों का त्याग कर सकता है किन्तु धन से भी प्रिय प्राण हैं। इन के सुख के लिए धन को भी व्यय करना पड़ता है परन्तु भगवान तो प्राणों के भी प्राण अर्थात् प्राण वल्लभ हैं। यदि भगवान के निमित्त यह प्राण जांय तो यह जीव मोक्षाधिकारी हो जाय किन्तु जीव तो अज्ञान वस दुखदायी सांसारिक वासना जाल में ग्रस्त है तो भी छूटने का यत्न नहीं करता वरन् और जिकड़ना चाहता है।

इति ससार दुखार्क ताप तापितचेतसाम्।
विमुक्ति प दमच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम् ॥

अर्थ—इस प्रकार सांसारिक दुख रूप सूर्य के ताप

से जिनका अन्तःकरण तृप्त हो रहा है उन पुरुषों को मोक्षरूपी वृक्ष की घनी छाया को छोड़ कर कहाँ विश्राम मिल सकता है। वह मोक्ष वृक्ष भगवत् भक्ति द्वारा ही प्राप्त किया जाता है। कहा है कि—

आहे निर्ल्वयिनीवत् ॥ १ ॥

छिन्न हस्तवद्वा ॥ २ ॥

जैसे सांप अपनी पुरानी केंचली को त्याग देता है उसी तरह मुमुक्षु को विषय वासना आदि का त्याग कर देना चाहिये और जैसे किसी मनुष्य का हाथ कट कर गिर पड़ता है तो वह उस कटे धरनी पर पड़े भाग से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता। इसी तरह विवेक प्राप्त होजाने पर विषय वासना नाश हो जाती हैं। फिर मुमुक्षु उन से कुछ सम्बन्ध नहीं रखता है।

नं० ६५ विवेक ही प्रकृति और पुरुष का ज्ञाता है

विवेक के द्वारा प्रकृति और पुरुष दोनों ही दीखते हैं। जैसे कोई मनुष्य अपनी गर्भिणी स्त्री को छोड़ कर विदेश चला गया था। उसके पीछे स्त्री के पुत्र पैदा हुआ। जब वह आया तब तक पुत्र पूरा युवक हो गया। परन्तु उन दोनों में न तो पुत्र जानता है कि ये मेरा पिता है न और पिता ही जानता है कि ये मेरा पुत्र है। तब स्त्री ने ही उसको प्रबोध कराया कि यह तेरा पिता है तू इनका पुत्र है। इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष

के ज्ञात कराने वाला विवेक ही है। तीनों गुणों [सत् रज और तम्] की साम्यावस्था का नाम ही प्रकृति है और पुरुषात्मा अजर अमर निर्गुण और अभेद माया जनित सम्पूर्ण सांसारिक पदार्थों से पृथक है। किसी कवि ने प्रकृत, देह, महतत्व, तामस अहंकार और सत्य पुरुष की उत्पत्ति नीचे के सवैया में कैसे ढंग से की है—

काया यह काहे ते है काया पंचभूत ते है पंचभूत काहे ते हैं तमस अहंकार ते। तामस यह काहे ते है जाको महतत्व कहैं महतत्व काहे ते है प्रकृति मझारते। प्रकृति यह काहे ते जाको सत्य पुरुष कहैं सत्य पुरुष काहे ते है ब्रह्म निरधार ते।

—❀—०—❀—

नं० ६६ नीच को प्रशंसनीय पद देना अनुचित है।

नीच को भूल कर भी प्रशंसनीय पद पर नियुक्त न करना चाहिये यह नीति है क्योंकि वह प्रशंसनीय पद पाकर स्वामी के मारने की चेष्टा करता है। इस पर एक दृष्टान्त है कि—

प्राचीन काल में गौतम मुनि के आश्रम में महातपा नाम के ऋषि थे। एक दिन वहां एक कौवा चूहे के बच्चे को लिये जाता था। मुनि को देख कर दया आ गई क्योंकि महात्मा का दया करना तो स्वाभाविक गुण है। उन्होंने प्रयत्न कर चूहे को छुड़ाया और उसे पाला।

एक दिन एक बिलार चूहे के बच्चे को खाने दौड़ा वह बच्चा मुनि की गोदी में बैठ गया। तब मुनि ने तपोबल से चूहे को भी बिलार बना दिया। तब वह बिलार कुत्ते को देखकर मुनि के पास भागा तब मुनि ने श्वान से निर्भयार्थ करने को उसे भी बलवान श्वान बना दिया। फिर एक दिन श्वान व्याघ्र को देख कर भागा तब मुनि ने उसे भी व्याघ्र कर दिया। परन्तु आप उसे चूहा ही मानते थे। एक दिन कुछ मनुष्यों ने कहा कि इस चूहे को मुनि ने बाघ कर दिया है। तब मन ही मन सोचने लगो कि जब तक यह मुनि जीवित रहेगा तब तक मेरा स्वरूप इसी के हाथ में रहेगा। अस्तु इसे मार कर खा लेना चाहिए। यह विचार मुनि के खाने को आया तब मुनिवर ने कहा कि तू चूहा ही होजा। तुरन्त वह चूहा हो गया। इसलिये नीच को प्रशंसनीय पद देना अपनी जड़ काटना है।

———o———

नं० ६७ भगवान कौन है।

ब्रह्म यद्यपि शब्द का विषय नहीं हैं। तथापि आदर प्रदर्शन के लिये उसका भगवत शब्द से उपचारत कथन किया जाता है। समस्त कारणों के कारण परब्रह्म के लिये ही भगवते शब्द का प्रयोग हुआ है। भगवत शब्द में भकार के दो अर्थ हैं पोषण करने वाला और सब का आधार तथा गकार का अर्थ कर्म फल प्राप्त कराने वाला लय करने वाला और रचने वाला हैं। सकल ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, और वैराग्य इन

छः का नाम भग है ।

उस अखिल भूतात्मा में समस्त भूत गण निवास करते हैं और वह स्वयं भी समस्त भूतों में विराज मान है अस्तु वह अव्यक्त परमात्मा ही वकार का अर्थ है । जो सब जीवों की उत्पत्ति और नाश आना और जाना तथा विद्या और अविद्या को जानता है वही भगवान कहलाने योग्य हैं । त्याग करने योग्य [त्रिविधि गुण और उनके क्लेस] आदि को छोड़ कर ज्ञान शक्ति, बल ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि षट गुण ही भगवन शब्द के वाच्य हैं ।

——❀—o—❀——

नं० ६८ दृढ़ता ही सफलता कुंजी की है ।

जिसको द्रोहियों से न प्रतीति है और न भय तथा प्रीति है उन्ही को धन्यवाद है जिसको हर समय अपना कर्तव्य स्मरण रहता है उसका पुरुषार्थ [उत्साह] कभी कम नहीं हो सकता जैसे बादल सूर्य के काम में अनेक रुकावट करते हैं परन्तु उनके प्रकाश रूप दृढ़ कार्य को नहीं रोक पाते ।

कर्म वीर मनुष्य दुष्ट स्वभावियों से सम्वाद नहीं करता किन्तु शांति तथा बल पूर्वक अपने काम को करता रहता है । यद्यपि नीच जन दुर्वाक्य कह कर उसका अपमान करते हैं तो भी वह अपने धर्म मार्ग पर इस तरह आरूढ़ रहता है जिस भांति हाथी श्वानों के भूंकने से निर्भय हो चला जाता है ऐसे ही दुष्ट कर्म वीर का क्या बिगाड़ सकते हैं । मच्छरों की हुंकार

से गरुड़ कभी भयभीत नहीं हो सकते हैं ।

जैसे एक चन्द्रमा सम्पूर्ण ब्रह्मांड में प्रकाश करता है किन्तु अनेक तारागन नहीं ऐसे ही जो मनुष्य स्वयं पुरुषार्थ से खड़ा हो सकता है वही अपने कुल को प्रकाशित कर सकता है अनेक कुपत्र नहीं कर सकते हैं। जैसे अशिक्षित चतुष्पद सिंह राज शब्द से युक्त है। निजी पुरुषार्थ तथा पराक्रम से ऐसे ही जो जन अपने सिद्धान्त पर अटल रहते हैं वह अज्ञानियों से विजय पाते हुए गौरव प्राप्त करते हैं।

दृढ़ प्रतिज्ञ मनुष्य को कार्य प्रारम्भ करके उसके बिना सफल किये कदापि न हटना चाहिये। जैसे नदियों को अपना प्रिय समुद्र नहीं मिलता तब तक उनका प्रवाह नहीं रुकता और जैसे जब तक सुर असुरों को अमृत न मिला तब तक समुद्र को मथते ही चले गये अर्थात् अपने कार्य पर अटल रहे तो समुद्र से चौदह रत्न लेकर सफलता प्राप्त की। इसी प्रकार मनुष्य अपने कार्य पर दृढ़ रहे तो अवश्य ही सफली भूत होगा।

कहा जाता है कि मेघ वायु के सामने नहीं डरते यह सत्य है किन्तु जो वर्षने वाले बादल होते हैं वे जब तक संसार को जल मय नहीं कर देते तब तक नहीं हटते चाहे कितना ही प्रबल पवन चले। इसी भाँति जो दृढ़ प्रतिज्ञ हैं वे धर्म मार्ग पर पदार्पण करके विचलित नहीं होते अन्त में वे ही सफलता प्राप्त करते हैं और इस काम में न वे अपयश ही के भागी होते

किन्तु वे तो संसार में सुयश के पात्र बन जाते हैं।

जैसे चातक चाहे प्राण त्याग दे परन्तु जब तक उसे स्वाँत नक्षत्र का जल नहीं मिलता तब तक समुद्र तथा सरित के किनारे वास करके भी इनका जल नहीं पीता ऐसे ही कर्म-वीर मनुष्य अपने सिद्धान्त से नहीं टलता चाहे उसे जीवन पर्यन्त क्लेशों का सामना करना पड़े। धीरजवान मनुष्य अनेक आपत्तियों का सामना करके भी धीरज विहीन नहीं होता और जैसे हाथी के दांत बाहर निकल कर फिर भीतर को नहीं जाते चाहे कटकर पृथ्वी पर गिर पड़े ऐसे ही कर्म वीर किसी कार्य में पग बढ़ा कर पीछे को नहीं हटता चाहे प्रानों को त्यागना पड़े और जो कार्य प्रारम्भ करके पीछे छोड़ बैठते हैं तथा आत्मघात कर लेते हैं वे तो संसार में उपहास पूर्ण अपयश के ही आगार माने जाते हैं और हमेशा को सत्पुरुषों की दृष्टि से गिर जाते हैं—

जो मनुष्य निः स्वार्थ होकर संसार की भलाई चाहता है फिर संसार का वह पूजनीय क्यों न कहा जाय जैसे चिन्तामणी जड़ है और काम धेनु पशु है। परन्तु उनके दर्शन के लिये यह संसार उत्कंठित रहता है क्योंकि वे मिलते ही सम्पूर्ण मनोकामना पूर्ण करते है। इसी कारण पूजने योग्य हैं। जैसे अग्नी सम्पूर्ण वस्तुओं को जला देती है तौ भी पवित्र और पूजित है क्योंकि शीत भय और तम का नाश करती है और खाने के पदार्थों को

पकाती है किन्तु हिम शीतल होते हुए भी पूजित नहीं है क्यों कि ये हानिकारक अधिक है। इसी प्रकार यह नीति है कि जो दृढ़ता को धारण करके देश सेवा में तत्पर है वह अवश्य ही पूजनीय है चाहे वह नीच हो। अस्तु हम सबको अपने मार्ग पर दृढ़ रहना चाहिये।
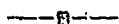
नं० ६८ कुकर्मी को सब जगह बिपत्ति है

जिसके पूर्व कर्म अशुभ हैं वह फिर चाहे जहाँ जाय किन्तु उसका फल तो उसे अवश्य ही मिलेगा। एक पथिक कहीं भ्रमण करने को जा रहा था। उसका सिर वस्त्र रहित था। तिस पर भी वह गंजा था जब सूर्यनारायण की तीव्र किरण उसके सिर पर पड़ी तो वह उसके ताप से एक ताड़ के विटप तले विश्रामार्थ बैठा। इतने ही में अकस्मात् दैवयोग से वृक्ष का फल टूट कर उसके सिर पर पड़ा और सिर में आघात के लगने से वह व्याकुल होकर पृथ्वी पर लेट गया सिर से शोणित की धार बह निकली यह तो हुआ दृष्टान्त अब इसका दृष्टान्त सुनो।

यह जीव रूपी पथिक संसार के आवागवन में भ्रमण करता है जिसके प्रारब्ध कर्म शुभ हैं (अर्थात् गंजा नहीं हैं) उसको न तो सांसारिक दुख रूपी सूर्य का ही ताप व्यापता है

और न पूर्व अशुभ कर्मों का फल रूपी ताड़ वृक्ष दुख सकता है।

नं०७० उत्पन्न आपत्ति का समाधान करना ही बुद्धिमानी है।

ऐसा कहा जाता है कि उत्पन्न आपत्ति का जो मनुष्य समाधान करता है वही बुद्धिमान है जैसे एक वणिक की स्त्री ने आंख के सामने चोर को छिपाया।

पूर्वकाल में विक्रमपुर नगर में समुद्रदत्त नाम का एक वणिक था। उसकी स्त्री का नाम रत्नप्रभा था। वह अपने नौकर पर आशिक थी उससे हर वक्त मजाक करती थी। एक दिन वह अपने नौकर के मुख पर चुंमा लेती हुई समुद्रदत्त ने देख ली। वह स्त्री भयभीत होकर कहने लगी नाथ यह नौकर चोर है नितप्रति छिप कर कपूर खाता है आज मैंने इसे देख लिया तो भी यह अपनी करतूत को स्वीकार नहीं करता इस कारण मैंने इसके मुख को सूंघा था। यह सुन सेवक ने क्रोध करके कहा कि नाथ अब हमारो निर्वाह आपके यहाँ नहीं हो सकता क्योंकि जिस स्वामी की स्त्री प्रतिक्षण सेवक का मुंह सूंघती है वहां सेवक कैसे निर्वाह कर सकता है। यह कह कर चलने लगा परन्तु समुद्रदत्त ने समझा बुझा कर रक्खा। किसी ने सत्य ही कहा है कि—

आहारो द्विगुण, स्त्रीणाँ बुद्धिस्तासाँचतुर्गुणा ।
षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुण, सास्मृत: ॥
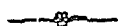
न०७१ मतक्षदोषी के फुसलाने से मूर्ख सन्तुष्ट होता है ॥

पूर्वकाल में श्रीनगर में रथकार नाम का एक निर्बुद्धि मनुष्य था । उसी गाँव में उसकी स्त्री का जार नाम का एक दोस्त था । एक दिन रथकार ने अपनी स्त्री से कहा कि मैं आज फलाँ ग्राम को जाता हूँ ऐसा कह कर चल दिया और फिर लौट आया स्त्री को भेद प्रतीत न हुआ । वह आकर पलिंग के नीचे छिप कर लेट रहा सन्ध्याकाल होने पर वह जार नाम का यार आया और रथकार की स्त्री से पलिंग पर बिहार करने लगा । उसके उपरान्त स्त्री का अंग नीचे लेटे हुये पति से स्पर्श होगया यह तत्काल अपने पति को मायावी (ठग) जानकर उदास चित्त हो गई इस पर जार बोला कि ,आज तुम एकाग्रता से प्रसन्न वदन विहार नहीं करती हो सो क्या प्रयोजन है ।

अब स्त्री ने अपना त्रिया चरित्र दिखाया वह बोली तू मूर्ख है आज मेरे प्राणाधार दूसरे गांव को गये हैं इस हेतु अपर लोगों के रहते हुए भी यह गाँव मुझे ऊजरसा दिखाई देता है क्योंकि पति का वियोग स्त्री को दुख दायक होता है ।

यह सुनकर जार ने कहा कि क्या झगड़ालू रथकार

तुमको इतना प्रिय है । इस पर वह स्त्री बोली देखो सुनो ।

जो पति अपनी स्त्री को कठिन वाक्यों से बोलता है और क्रोध दृष्टि से देखता है तो भी वह पति के सन्मुख प्रसन्न रहती है वही स्त्री धर्म की अधिकारिणी होती है । और पति चाहे वन में रहे चाहे घर में चाहे पापी हो चाहे धर्मात्मा हो जिनका पति प्यारा है उसी की संसार में कीर्ति उदय होती है । और स्त्री का परमाभूषण पति ही है जिस पर यह भूषण नहीं वह स्वरूपवान होकर भी कुरूप है । तुम क्या जानते हो मेरी यह प्रतिज्ञा है कि,मैं पति के जीने से जीती हूं और उनके मरणो परान्त देह त्याग दूंगी क्योंकि ऐसा कहा है कि , साढ़े तीन करोड़ मनुष्य में जो रोम हैं इतने ही काल तक पतिव्रता स्त्री पति सहित स्वर्ग में निवास करती है ।

व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ।
तद्वद्भर्तारमादाय स्वर्ग लोके महीयते ॥ १ ॥
चितौ परिष्वज्य विचेतनं पतिं ।
प्रियाहि या मुंचित देहमात्मन ॥
कृत्वापि पापं शतसंख्यमप्यसौ ।
पतिं गृहीत्वा सुरलोक माप्नुयात् ॥

अर्थ—जैसे मदारी सर्प को बिल से बल पूर्वक निकाल लेता है वैसे ही पतिव्रता स्त्री बलपूर्वक अपने पति को स्वर्गलोक लेजाती है । १ ॥ और जो स्त्री पति के मरणोपरान्त शव को प्रसन्नता से अपनी अंक में ले चिता में बैठ कर शरीर को त्याग

देती है वह पति को सौ पाप करने पर भी स्वर्ग में पहुंचा देती है ।

यह सुन कर उस रथकार ने कहा कि,मेरे लिये धन्य है जो मुझे ऐसी मधुर भाषिनी और पति ही को सर्वस्व मानने वाली स्त्री मिली है । ऐसा विचारता हुआ स्त्री पुरुष सहित उस पलिंग को शिर पर रखकर नाचने लगा । इसी से तो कहा है कि,

प्रत्यक्षेऽपिकृते दोषे मूर्खो सान्त्वेनतुष्यति ।

प्रत्यक्षमें कियेहुए दोष पर फुसलाने से मूर्ख सन्तुष्ट होता है ।
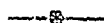
नं० ७२ चोर का स्वाँग ।

हमको भगवान की आराधना नित्यप्रति करनी चाहिये क्योंकि विषय वासना तथा सांसारिक दुख रूपी सूर्य से जिसका अन्तकरण तप्त हो गया है उसको मोक्ष रूपी घने वृक्ष की छाया के सिवाय कहीं पर शान्ती प्राप्त नहीं हो सकती और मोक्ष रूपी वृक्ष के प्राप्त करने के केवल दो ही साधन हैं, पहिला (१) भगवान की भक्ती (२) दूसरा साँख्य योग इन दोनों में भक्ती का मार्ग सुलभ है मनुष्य जिस मार्ग पर चले बस उससे गिरना उचित नहीं है ।

एक चोर किसी राजा के यहाँ चोरी करने को गए किन्तु रात्रि में जब वह चोरी करने को उद्यत हुआ उसी क्ष राजा के यहां जगार हो गई चोर तुरन्त ही भागा परन्तु रा

ने अपने कर्मचारियों सहित आतुरता से उसका पीछा किया। कुछ दूर निकल कर चोर ने देखा कि राजा पीछे देता ही चला आ रहा है तो वह अपनी रक्षा का प्रयत्न सोचने लगा जहाँ पर चोर खड़ा था वहाँ श्मशान था बहुत से मुर्दे पड़े हुए थे। चोर विचार कर उन मुर्दों में लेट गया। इतने ही में राजा सैनिकों समेत वहाँ आ पहुंचा। और सिपाहियों से बोला कि चोर इसी स्थान पर है इतना सुनते ही सैनिकों ने पद प्रहार करके सब मुर्दों को देख लिया परन्तु चोर ने पद प्रहार से आह तक न की तब सैनिकों ने कहा कि महाराज जी यहाँ पर चोर नहीं है। यह सुन राजा ने क्रोध पूर्वक कहा कि नहीं अवश्य ही चोर यहाँ है।

यह सुन एक प्रवीन सैनिक ने हाथ में बल्लम लेकर मुर्दों को छेदा कुछ देर पीछे चोर में भी बल्लम दी बल्लम के लगते ही चोर के तन से रुधिर बह निकला यह दशा निहारते ही सैनिक ताड़ गया कि यही चोर है क्योंकि मुर्दे में रुधिर कहां से आया अपर मुर्दों में तो थाही नहीं ऐसा विचारकर राजा को क्षमा कर देने पर अङ्गीकार करके चोर को बतला दिया।

जब राजा ने चोर की ऐसी हालत देखी तो आश्चर्य युक्त होकर कहने लगे कि मैं क्षमा कर देने का वचन दे चुका हूं इस कारण लाचार हूं नहीं तो तू क्षमा करने के योग्य नहीं था। क्योंकि तूने बल्लम के लगने पर भी आह तक न की। तू बड़ा डाकू है यह सुन चोर निर्भय होकर बोला कि नाथ मुर्दे

का स्वांग फिर सीखा क्या काम अर्थात् जो जिसकी नकल करे उसको उसी के समान हो जाना चाहिये। मैं चोर था किन्तु मुर्दे का स्वांग किया था अस्तु मुझे भी अन्य मुर्दों की तरह होना पड़ा। इसी प्रकार जो भक्त बनना चाहे उसको अन्य पूर्व भक्तों के समान हो जाना चाहिये आपत्तियों का सामना करते हुए अपने सिद्धान्त से विचलित न होना चाहिये।

अब इसका दृष्टान्त इस प्रकार है कि ये जीवात्मा रूपी राजा है और मन रूपी चोर है जो बड़ा परिवारी है इसकी इन्द्रियाँ ही स्त्री हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि पुत्र हैं जो जीवात्मा की चोरी करके छिप जाता है किन्तु जीवात्मा का ज्ञान रूपी प्रवीन सैनिक है जो वैराग्य रूपी बल्लम से इस को वेधित करता तब इसे वस में करता है।
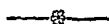
नं० ७३ पुन्य में पाप।

किसी २ समय ऐसा हो जाता है कि मनुष्य किसी कार्य को पुन्य समझ कर करता है परन्तु वह पाप हो जाता है। इस पर महाभारत के कर्ण पर्व का प्रमाण है कि एक सत्यवादी विद्वान महात्मा एक वन में भगवत आराधना किया करते थे। एक दिन आश्रम के निकट से चारे पांच धनाड्य पुरुष निकले और आगे छिप गये इसके पश्चात् कुछ चोर शस्त्र लिये हुए

वहाँ आये और साधू से पूछा कि तुमने चार पाँच पुरुषों को जाते हुए देखा है महात्मा ने अपने सत्य व्यवहार में भूल कर कहा कि अभी हाल आगे को गये हैं चोरों ने जाकर उनको मार डाला और माल को लेकर भाग गये। ऐसा करने से महात्मा को पांच हत्याओं का दोष लगा और मरणोपरान्त नरकवासी हुए क्योंकि सत्य का पुन्य कम रह गया और दोष अधिक लगा।

नं० ७४ पाप में पुन्य।

किसी वन में एक बड़ा हिंसक जानवर रहता था। वह वन के सभी जानवरों को मार खाता था। एक दिन वहां एक बहेलिया आ निकला और उस सोते हुये को मार दिया इससे वन के सम्पूर्ण पशु निर्भय हो गये। अन्त में बहेलिये को स्वर्ग प्राप्त हुआ। यह कथा भी कर्ण पर्व की है। यद्यपि हिंसा करना पाप था परन्तु एक की हिंसा करके सहस्रों की प्राण रक्षा हुई इस कारण पाप में पुन्य भी हो जाता है।

नं० ७५ आलस्य ही दुख का बीज है।

एक मनुष्य को गंगा स्नान करने के लिए जाना था। गाड़ी नौ बजे जाती थी। प्रातकाल होते ही उसकी स्त्री ने

भोजन बना कर कहा कि भोजन तैयार है अस्तु आप भोजन से निवृत होकर जल्दी जाइए नहीं तो गाड़ी निकल जायगी। उसे मार्ग में ही एक बड़ा लाभ दायक काम था। वह बोला कि अभी तो काफी टायम है धीरे २ सब काम कर लूंगा कुछ देर बाद स्त्री ने फिर कहा परन्तु फिर भी उसने उपरोक्त भाँति कह दिया अन्त में साढ़े आठ बजे घर से चला। गाढ़ी स्टेशन पर आगई और सीटी देकर चली गई वह मार्ग में ही हाथ मलते रह गया। फिर बिकल होता हुआ स्टेशन पर गया और दूसरी गाड़ी से गया और मार्ग में जहाँ पर लाभ दायक काम था गया किन्तु समय पर न पहुंचने से वह बिगड़ गया और स्नान का पर्व भी हाथ से जाता रहा अस्तु आलस्य से काम में असावधानी न करनी चाहिए।

॥ तत्वार्थ ॥

इसी प्रकार यह काया रूपी रेल है इसमें बैठने वाला जीवात्मा मुसाफिर है और दश इन्द्रियाँ पटरी हैं और मन तथा बुद्धि ड्राइवर हैं और त्रिगुण (सत्, रज, और तम) घंटी है यह काया रूपी रेल नियत समय पर जाती है फिर एक क्षण भी नहीं ठहरती है अस्तु हे मुसाफिर बे टिकिट गाड़ी से न जाना क्योंकि हिसाब देना पड़ेगा अस्तु राम नाम रूपी टिकिट लेलेनी चाहिये ताकि टिकिट कलक्टर रूप यमदूत और स्टेशन मास्टर रूप यमराज दुख न दे सकें। हिचकी का आना ही तारकी खबर है जब स्वास इन्जन छूट

जाता है तब स्टेशन पड़ा ही रह जाता है । जिसके पा
राम नाम की टिकिट नहीं वह तो कारागार रूपी नरकों
दुख भोगता है और जिसके पास ये टिकिट है वह निःश
मुक्ति रूपी धाम में पहुंच जाता है ।

न० ७८ मौत का घर

एक समय चार चोर चोरी करने के लिये गये किन्तु होनहार वस उनमें से एक मारा गयो । तब शेष ती चोरों ने कहा कि हमारे साथी को किसने मारा है । त किसी ने कह दिया कि मौत ने मारा है ।

यह सुन तीनों को यह धुन सवार हुई कि हमभ मौत का पता लगा कर अपने साथो का बदला ले । मौत क पता लगाते उन्हें बहुत दिन व्यतीत होगये किन्तु मौत कहीं मिली । एक दिन तीनों एक पर्वत की ओर जा निकले वह पर एक वृद्ध मनुष्य मिला उसे देख कर चोर कहने लगे वि तू ही मौत का भाई जान पड़ता है अस्तु या तो अपनी बहि का पता बतला नहीं तो हम तुझे ही मारते हैं यह सुन बेचारा बुड्डा घबरागया किन्तु फिर धीरज धर कर बोलाकि मेरी बहिन का घर पर्वत के शिखर पर है । मैं उसे वहीं पर छोड आया हूं । यह सुन तीनों चोर पर्वत पर चढ़ गये वहां उन्होंने एक गुफा में सोना पड़ा देखा उसे देख लोभ के वशीभूत होगये और अपने एक साथी को भोजन लाने को बाजार भेज दिया ।

उसने बाजार जाकर सोचा कि भाई धन तो बहुत है मुझे आटे में विष मिलाकर ले चलना चाहिये ताकि वे दोनों खाते ही मर जांय और सब धन मुझको प्राप्त होजाय ।

यह विचार कर आटे में विष मिला लाया किन्तु इधर इन दोनों ने शोचा कि इसे मार दो तो इस धन को हम तुम दोनों ही परस्पर बाँट लें । इतने ही में ये आटा लेकर वहाँ पहुंच गया । अब उन दोनों ने इस पर आघात किया और मार डाला । अन्त में निर्भय होकर भोजन पकाया और विभाजित करके खाने को बैठे किन्तु उसमें विष मिला था अस्तु खाते ही मरण को प्राप्त हुए ।

अब विचारिये कि मौत का घर कहाँ रहा । लोभ में रहा सोना बड़ा मददायक है किसी ने कहा है कि—

दो०—कनक[1] कनक[2] ते सौ गुनी, मादिकता अधिकाय ।
यहि खाये बौरात है, यदि पाये बौराय ॥

॥ टिप्पणी ॥

(१) सोना । (२) धतूरा ।

———o———

नं० ७७ बिपत्ति के बारह बार

जिस समय भरत जी अयोध्या में आये हैं और माता की करतूत सुनी है तब कहा है कि—

मातु कुमति बढ़ई अघ मूला । तेहि हमार हितकीन बसूला ।

फलित कुकाठ कर कीन्ह कुयंत्रू । गाड़ि अवध पढ़ि कठिन कुमंत्रू ॥
मोहि लगि इहि कुठाट तेहि ठाटा। घालेसि सब जग बारह बाटा॥

मातानै मेरे लिये ही यह कुठाट रचा और संसार को विपत्ति के बारह बाटों में कर दिया।

श्लोक—"मोहोदैन्यभयंहासो हानिर्ग्लानिःक्षुधातृषा ।
मृत्युःक्षोभो वृथाकीर्तिर्वाटास्त्वे तेहि द्वादश ॥"

अर्थात्—१ मोह २ दीनता ३ भय ४ हास ५ हानि ६ ग्लानि ७ क्षुधा ८ तृषा ९ मृत्यु १० क्षोभ ११ वृथा १२ अकीर्ति ये बारह बाट हैं।

नं० ७८ शरणागत की रक्षा।

एक समय गरुड़ जी ने एक छोटे भुजंग के बच्चे को भक्षण करने की इच्छा की। वह व्याल का बच्चा अपने प्राण रक्षा के निमित्त विष्णु भगवान के सिंहासन के नीचे घुस गया गरुड़ जी सन्मुख ही बैठ गये कि जब यह निकलेगा तब भक्षण करूंगा। तब भगवान ने विचारा कि गरुड़ मेरे शरणागत को भी खाना चाहता है। तब सर्प को वर दिया कि तू गरुड़ के खाने में समर्थ हो। जब सर्प निर्भय हो गरुड़ पर झपटा तो पक्षिराज प्रार्थना करने पर छूटे।

॥ भावार्थ ॥

भगवान अपना अपमान सहन कर सकते हैं किन्तु भक्त

का नहीं जैसे प्रमाणों में दुर्वासा और भक्त अम्बरीप भगवान शरणागत वत्सल हैं जैसे गाय बछड़े का शरीर चाट कर निर्मल कर देती है ऐसे ही भगवान भक्तों के पाप काट कर निर्मल कर देते हैं। आप स्वयं कहते हैं कि, "मम प्रण शरणागत भय हारी।,, और यह भी कहा है कि—

दोहा—शरणागत कहं जे तजहिं, हित अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पाप मय, तिन्हें विलोकत हानि॥

अस्तु जो कोई आरत होकर शरण में आवे उसे त्यागना न चाहिये जहाँ तक बस चले तहाँ तक उसकी रक्षा करे।

———०———

नं० ७६ स्वामिभक्ति।

भगवान ने संसार में चौरासी लाख योनियां उत्पन्न की हैं और उन सब में मनुष्य को ही सर्व श्रेय बना कर उच्च बुद्धि प्रदान की है अस्तु मनुष्य का कर्तव्य है कि वह सर्व श्रेय होकर उन्हीं भगवान के गुणानुवाद गाता रहे इसी में इसका परम श्रेय है और लौकिक व्यवहार में भी जो भलाई करता है वह भला गिना जाता है और जो व्यक्ति धर्म त्याग अधर्म विलम्बी है वही दुर्जन श्रेणी में गिना जाता है। इसी विषय में स्वामिभक्ति के प्रति एक दृष्टान्त दिया जाता है कि जिसने स्वामी की रक्षा के अर्थ स्वयं अपने प्राण लोभ को तृन के

सदृश्य त्याग दिया।

एक समय का विवरण है एक यात्री का अपने एक महान आवश्यकीय कार्य के निमित्त अफरीका के सघन जंगल को पार करके जाना था। वहाँ पर भेड़िया अधिक रहते हैं यह विचार कर वह भयभीत हो गया परन्तु वहाँ जाना भी परमावश्यकीय है यह सोच उदास चित्त हो कर सम्पूर्ण वृतान्त अपने सेवक से कहा। सेवक ने कहा कि हे नाथ आप किंचित् मात्र भी चिन्ता को हृदय में स्थान न दें मैं सेवा को उद्यत हूं। मैं एक प्रयत्न करता हूं जो ईश्वर कृपा से अवश्य ही सफली भूत होगा। ऐसा कह दश घोड़ों की बग्घी ले आया और धीरता पूर्वक सघन वन के पार करने की ठान ली। धीरजवान् तथा साहसी पुरुषों को सफलता अवश्य ही मिलती है।

वह बेचारा बग्घी को तीव्र गति से ले जारहा था किन्तु होन हार कब मिट सकती है अकस्मात् ही एक ओर से भेड़ियों का यूथ भक्षण करने को चला आया। यह अवलोकते ही स्वामी तो काठ की मूर्ति जैसा हो गया काटो तो रुधिर नहीं परन्तु सेवक धीरज विहीन न हुआ तुरन्त ही एक घोड़ा छोड़ दिया— घोड़ा इधर उधर दौड़ता रहा अन्त में भेडियों ने उसे मार कर भक्षण कर लिया इतने काल में वह नौ घोड़ों सहित बग्घी को बहुत दूर ले पहुंचा। भेड़ियों ने फिर पीछा किया तब उसने एक घोड़ा और छोड़ दिया। भेड़ियों ने उसे भी भक्षण कर लिया और बग्घी वाले का पुनः फिर पीछा किया अर्थ यह

है कि ऐसा करते करते आठ घोड़ों को भेड़ियों ने खा लिया अब शेष दो घोड़ा रह गये थे यदि एक घोड़े को और छोड़ता है तो बग्घी नहीं जा सकती है और नहीं छोड़ता है तो सब की जान जाती है। इस विपत्ति जाल में फस कर स्वामी तो पागल सा होगया और रोने लगा परन्तु उस सेवक ने कहा कि हे नाथ सेवक कर्म है कि जब तक तन में प्राण रहें तब तक स्वामी को दुखी न होने दे अर्थात् दुख निवारण का प्रयत्न करे अस्तु अब मेरी बारी है अब भेड़ियों के सामने मैं जाता हूं जब तक वे मुझे भक्षण करें तब तक आप आतुरता से बग्घी को बढ़ा ले जाइये अब बन थोड़े बीच में और है आगे आपका निर्दिष्ट स्थान है वहां पहुंच कर अपना कार्य सफल करना यह सुनते ही स्वामी रोने लगा परन्तु प्रवीन सेवक ने समझा दिया कि ऐसी अवस्था में धीरज से काम लीजिये कहा भी है कि—

दोहा—तुलसी असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुचरित शील स्वभाव ऋजु, राम शरण आधार॥

अस्तु आप साहस निर्भय होकर जाइये। यह कह कर आप भेड़ियों के यूथकी ओर चला गया और स्वामी को बचा लिया बस धन्य है भक्ति (श्रद्धा) हो तो ऐसी ही होनी चाहिये इस कर्तव्य से उसने अपने दोनों लोकों को सुधार लिया।

(—॥—)०(—॥—)

नं० ८० आजकल के कथा वाचक

एक समय एक स्थान पर कथा होरही थी और कथा वाचक जी बड़ी रुचि के साथ कथा कह रहे थे। श्रोतागण भी ध्यान पूर्वक कथा सुन रहे थे। एक जगह कथा प्रसंग ऐसे आया कि यदि किसी को मार्ग में भी कुछ मिले तो उस व्यक्ति को उचित है कि उसी स्थान पर तीन चार बार यह उच्चारण करे कि यह वस्तु किसकी है ऐसी नीति है। यह सुन कर एक मनुष्य ने हृदय में निर्णय किया कि अवसर पाकर वक्ता जी ही की परीक्षा लेंगे ये इस नीति पर स्वयं चलते हैं या नहीं कुछ देर में कथा वाचक जी अपनी व्यास गद्दी से उठ कर कथा समाप्त करके चले गये। इधर उस मनुष्य ने मिट्टी के गोल सिक्के बना एक थैली में भर कर वक्ता जी के मार्ग में डाल दिये और आप वहीं छिप कर बैठ गया। जब वक्ता जी लौट कर आये और ज्योंही उस स्थान पर पदार्पण किया त्योंही उनकी दृष्टि एकाएक थैली पर पड़ी उसके देखते ही वक्ता जी का हृदय हर्ष से परिपूर्ण हो गया। थैली को हाथ में उठा कर कथा के अनुसार तीन चार बार यह कहा तो था कि यह थैली किसकी है किन्तु धन के लोभ से बहुत धीरे २ कहा जिसको कोई अपर मनुष्य न सुन सके क्योंकि लोभ बुरी वृत्ति है यह वृत्ति एकाएक सबके सुकर्मों को चुरा लेती है इससे वही बचता है जो संसार से वैराग्य हो जाता है। नहीं तो वह सब के पुन्य कर्मों को अपहरण कर सकती है।

अब वक्ताजी थैली लेकर घर पहुंचे तो वहाँ सब मिट्टी के सिक्के निकले यह देख वक्ताजी बहुत दुखी हुए। फिर दूसरे दिन कथा कहते में वही उपरोक्त नीति वर्णन की। यह सुनकर वह मनुष्य बोला कि यदि कोई मन ही मन में कहले तो, वक्ताजी ताड़ गये कि अवश्य ही इसी को वह करतूत थी। बोला कि मन ही मन कहने से घर जाकर वह माल मिट्टी का हो जाता है यह सुनकर वह मनुष्य बहुत हंसा और वक्ताजी की पोल खोलने लगा अन्त में वक्ताजी बहुत लज्जित हुए।

॥ तत्वार्थ ॥

सत्य है वर्तमान काल में ऐसे ही कथा वाचक हैं और ऐसे ही अधिक संख्या में श्रोता गण हैं। रहीम जी ने कहा है कि—

दोहा—कहता तो सब कोई मिला, गहता मिला न कोय।
जो रहीम कहता मिला, सो वहि जाने दोय॥

अस्तु ऐसे महाशयों का सर्वथा संग त्याग करना उचित है।

—०-+-०—

नं० ८१ मुनि का सदुपदेश।

आरुणि उद्दालक के पूर्वकाल में श्वेतकेतु नामक एक पुत्र था। एक दिन श्वेतकेतु ने कहा कि पिताजी आप मुझे कुछ उपदेश दीजिए। यह सुन आरुणि उद्दालक ने कहा कि "कुछ चोर एक मनुष्य को पकड़ कर और उसकी आंखों से

पट्टी बाँध कर एक सघन वन में ले गये वह बेचारा गान्धार देश निवासी था।,, उस सघन वन में उसके धन को छीन कर आप तो नौ दो ग्यारह हो गये और उस बेचारे को वहीं छोड़ गये, वह उस वन में महा व्याकुल होकर रोने लगा उसकी दुख भरी आवाज को सुन कर एक दयालु पुरुष आया और उसने प्रथम उसको हाथ पैरों के बन्धन से निवारण किया। पुन आंखों की पट्टी भी खोल दी और पूछने पर यह भी बतला दिया कि, 'गान्धार देश इस दिशा में है, तू इस मार्ग से चला जा, वहीं पहुंच जायगा। यह सुन वह बुद्धिमान् अधिकारी जन उसके वचनों पर श्रद्धा रख कर एक गांव से दूसरे गाँव दूसरे से तीसरे इस प्रकार अपने गांधार देश में पहुंच गया। यह तो दृष्टान्त है अब इसको दृष्टान्त में घटाते हैं।

ये जीवात्मा रूपी तो गाँधार निवासी है और काम, क्रोध लोभ, मोहादिक चोर हैं जो इस जीवात्मा की आँखों पर अज्ञान की पट्टी बांध कर संसार रूपी भयंकर वन में छोड़ कर दुखित करते हैं। अब इसको बन्धन से मुक्त करने वाला (आँखों की पट्टी खोलने वाला) ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु संसार रूपी वन में होना चाहिए। जिससे यह जीवात्मा उनके बतलाये हुए मार्ग पर चलकर अविद्या के फन्दे से मुक्त हो अपने मूल स्वरूप 'सत्. आत्मा को प्राप्त हो।

नं० ८२ नमक की डली से सदुपदेश।

श्वेतकेतु ने कहा कि पिताजी मुझे फिर उपदेशिये जिससे मेरी अज्ञानता दूर हो। यह सुन पिताजी ने एक नमक की डली श्वेतकेतु को दी और कहा—"वत्स! इस डली को भरे हुए जल के लोटे में डाल दे और प्रातकाल लोटे को लेकर मेरे पास आना', श्वेतकेतु ने ऐसा ही किया। जब दूसरे दिवस लोटे को लेकर श्वेतकेतु पिता जी के पास गया, तो उन्होंने कहा—"हे प्रिय पुत्र! रात्रि को जो नमक की डली लोटे में डाली थी, उसको मुझे दे, श्वेतकेतु ने बहुत देखी, परन्तु वह डली लोटे में न मिली, क्योंकि वह तो जल में मिल गई थी। तब पिताजी ने कहा-'अच्छा, लोटे की इस ओर से जल पीकर तो बतला इसमें कैसा स्वाद है।, श्वेतकेतु ने पीकर कहा-'पिता जी! जल खारा है। फिर पिताजी ने कहा—'अब बीच में से पीकर बतला जल कैसा है।, श्वेतकेतु ने फिर पीकर बतलाया पिताजी खारा है। पुन' आरुणि ने कहा-'अब दूसरी ओर से चख कर बता, तब श्वेतकेतु ने बताया कि अब भी खारा है। तब पिताजी ने फिर कहा—"कि अब सब ओर से पीकर देख, तो वही खारीपन मिला और पिताजी को बतला दिया। वह कहने लगा कि पिताजी यद्यपि मैं नमक को आंखों से नहीं देख सका किन्तु जीभ द्वारा विदित होगया कि उसकी स्थिति जल में सदा है। यह सुन पिताजी ने कहा कि 'पुत्र जैसे तू नमक की डली को आँखों से नहीं देख सका किन्तु वह

जल में स्थित है इसी प्रकार यह सूक्ष्म 'सत्, आत्मा है जिसको तू नहीं देख पाता किन्तु वह आत्मा तू ही है।

नं० ८३ स्वार्थ से प्रेम दूर भागता है।

किसी गाँव के समीप एक वृक्ष तले दो महात्मा रहते थे वे गाँव से भिक्षा माँग लाते और आनन्द पूर्वक भगवान का भोग लगा कर प्रेम से प्रसाद भोजन करते थे। भगवान के भजन में दिन रात मगन रहते थे। गांव वाले मनुष्य भी उनके पास बैठे रहते कुछ समय में उनका यश फैलने लगा कि 'अमुक ग्राम में दो महात्मा बड़े ही भगवत भक्त रहते हैं। यह समाचार वहाँ के राजा तक को विदित हो गया, राजा भी सत्संगी था, वह महात्माओं की बड़ाई सुनकर वहाँ आया। जब उन दोनों महात्माओं को विदित हुआ कि हमारी बड़ाई सुन कर राजा दर्शन को आते हैं तो उन्होंने विचारा कि ऐसी बड़ाई से बचना चाहिए नहीं तो हम कल्याणपथ से गिर जाँयगे। क्योंकि यतियों को तो निसंगताही मोक्ष देने वाली है। यह सोच कर उन्होंने रोटियों पर परस्पर झगड़ा मचाया। एक रोटी के बट पर लड़ाई करने लगे, राजा ने यह देखकर विचार किया कि ये तो दोनों स्वार्थी प्रतीत होते हैं। इनके समीप जाना हानिकारक होगा यह सोच कर राजा अपने नगर को लौट गया। अब विचारिये कि जब झूठे स्वार्थ के दृश्य को देख कर प्रेम भाग

गया तो सच्चे स्वार्थ भाव में प्रेम कहाँ रह सकता है (उन महात्माओं ने जोस्वार्थ दिखलाया था वह अपने लाभके लिये झूंठा ही तो था। किन्तु राजा तो उनको स्वार्थी समझ कर भाग गया। अस्तु भगवान में निष्कपट स्वार्थ रहित प्रेम करना चाहिये। तभी हमको भगवान प्राप्त हो सकते हैं क्योंकि प्रेम में तो उनका निवास ही है।
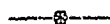
नं० ८४ शान्ताकार की कथा।

किसी समय में एक मूर्ख राजा था। उसके पास एक दिन एक महात्मा आया, और प्रसंग चलने पर कहने लगा कि शान्ताकारं भुजग शयनं पद्म नाभं सुरेशं, इसका अर्थ विद्वान से विद्वान पंडित तुमको तीन साल में बतला सकता है। यह कह कर महात्मा चला गया। राजा ने इस बात को कपोल कल्पित मानकर इसकी परीक्षा के निमित्त देश भरके विद्वानों को एकत्रित किया और सब के सन्मुख वही उपरोक्त श्लोक अर्थ समझाने को रक्खा गया। साथ ही साथ पुरस्कार भी नियत किया विद्वानों ने अल्प काल ही में अपने २ भावार्थ राजा को सुना दिये। किन्तु राजा एक को भी न समझ सका—क्योंकि यह निरक्षर (अपढ़) था। वह संस्कृती भाषा के अर्थ को क्या समझे, कुछ इस पर भी भ्रम था कि पहिला महात्मा तो यह कह गया है कि इसका अर्थ विद्वान से विद्वान

तुमको तीन साल में बतला सकता है किन्तु इन्होंने तो थोड़ी ही देर में इसका अर्थ कर दिया है अस्तु मेरे विचार में तो इनका अर्थ ठीक नहीं ऐसा विचार कर उन विद्वानों को पुरस्कार के बदले कारागार में बन्द करादिया होते २ कुछ दिन पीछे एक महात्मा वहाँ आया, तो राजा ने वही श्लोक उनसे कहा २ महात्माने उत्तर दिया-कि राजन्"मैं इसके अर्थ को आपको तीन साल में बतला सकता हूं"। यह सुनते ही राजा को विश्वास हो गया कि यह मुझको ठीक अर्थ बतलादेगा ऐसा विचार कर उसे अपना गुरू बना लिया।

महात्मा जी ने प्रथम राजा को शब्द, मात्रा और वर्णादिक बोध कराया। इसके पीछे संस्कृती पुस्तकों का अभ्यास कराया, और व्याकरण में भी ज्ञान कराया। अन्त में तीन साल के पश्चात् यह निरक्षर राजा पूरा व्याकरण हो गया तो महात्मा ने कहा—"कि राजन् अब आप अपने पूर्व श्लोक का अर्थ निकालिये"। राजा ने ऐसा ही किया तो वही कारागार के विद्वानों वाला अर्थ निकला तब राजा असमंजस में पड़ गये और कहने लगे कि नाथ इस अर्थ को मैंने गलत जानकर विद्वानों को कैद कर लिया था सो भूल की यह तो वही अर्थ निकला जो विद्वान बतलाते थे।

यह सुन महात्मा जी ने कहा कि "राजन धीरे २ ही सब काम किये जाते हैं, एक साथ नहीं क्योंकि सीढ़ी से सीढ़ी चढ़ कर ही मकान के ऊपर पहुंचा जाता है,,।

ऐसे ही जो मनुष्य निरक्षर (अपढ़) है जो कि स्वर व्यंजन और वर्णादि के भेद को नहीं जानता वह प्रथम ही काव्य तथा श्रुतियों की संस्कृत (देववाणी) को कैसे समझ सकता है जैसे कि पहिले आप थे किन्तु अब आप भी जटिल श्लोकों को साधारण समझेंगे। निरक्षर को तो एक सरल शब्द भी पहाड़ के समान ऊंचा प्रतीत होगा। यह सुनते ही राजा अपने किये पर रोने लगा और विद्वानों को छोड़ उनके चरणों में पड़ कर अपना अपराध क्षमा कराके उनको सादर पुरस्कार देकर विदा किया।

इससे यह शिक्षा मिली कि चाहे कैसा ही कठिन कार्य आकर पड़े किन्तु उससे निराश होकर बैठ न रहना चाहिये किन्तु उसे धीरे २ करते रहना ही उचित है। यह न सोचे कि आज ही यह काम हो जाय ऐसा करने से असफलता प्राप्त होती है।

नं० ८५ सन्तोष ही परम सुख का मूल है

सन्तोषी मनुष्य सर्वदा सुखी रहता है और असन्तोष अथवा आशा, तृष्णा दुख की हेतु हैं। विचारने की बात है कि मनुष्य का प्रधान धन सन्तोष ही है जैसे कि—

दोहा—नहिं धन धन है परम धन तोषहिं कहहिं प्रवीन ।
बिन सन्तोष कुवेर हूं, दारिद दीन मलीन ॥

जब सन्तोष ही परमसुख तथा धन है तो न जाने ग्रज्ञानी जन इस धन का क्यों त्याग कर देते हैं।

एक मनुष्य महादीन था। यहाँ तक कि वस्त्र तथा भोजन को भी तंग था। एक दिन उसको पृथ्वी में पाँच हांड़े रुपये मिले वह उनको पाकर महा प्रसन्न हुआ और अपने घर आया। अब उसे यह धुन सवार हुई कि ऐसे छः हांड़े रुपयों के होने चाहिए। रात दिन वह इसी चिन्ता में रहने लगा और घरके खाने पीने का खर्च भी कम कर दिया। स्वयं भी महा दुख सहन किया। पहिले जब वह निर्धन था तो उस अवस्था में तो दो चार ब्राह्मण भोजन भी कराता और सन्तोष से रहता किन्तु अब सन्तोष को त्यागने से सब काम विपरीत हो गया उसने उस छटवे घड़े के भरने को भरसक प्रयत्न किया किन्तु वह पूरा ही न हुआ। एक दिन विधि गति से चोर आकर सब धन को चुरा लेगये। अब वह पहिले जैसे हो गया और महा दुखी रहने लगा। यदि वह उन्हीं पाँच घड़ों में सन्तोष कर लेता तो सुखी रहता किन्तु वहाँ तो उसने असन्तोष को स्थान दिया इसी कारण सुख के बदले दुख उठाना पड़ा।

नं० ८६. हिंसा का फल

एक हिंदुस्तानी व्यक्ति बोखारा शहर में व्यापार करने गया था। जब दो तीन साल पश्चात उसके पास बहुत सा धन

एकत्रित हो गया तो वह अपने देश भारतवर्ष में लौटने का निर्णय करने लगा। वहाँ के चोरों को इसका परिचय (विदित) होगया। चोरों ने आडम्बर रचा और एक झूठा काफिला बना कर उस हिन्दू के साथ हो लिये। एक सघन वन में आकर चोरों के अफसर ने कहा—"हम सब लोग चोर हैं, तुम्हारे धन के लेने को ही हमने यह झूंठा आडम्बर बनाया है। अब हम तुमको अपने आदि सनातन धर्म के अनुसार मार कर धन लूटेंगे ब्राह्मण सुनते-ही काठ के समान हो गया। काटो तो रुधिर नहीं। यह गति देखकर चोरों ने कहा कि तुमको एक घंटा का अवकाश दिया जाता है अब तुम जीवन के अन्तिम अवसर पर अपने ईश्वर का स्मरण करलो। हिन्दू ने धीरता से भगवान की विधि पूर्वक पूजा की और फिर हाथ जोड़ कर विनय करने लगा कि—"हे अनाथों के नाथ आरतहर अजर अविनाशी प्रभो मेरी रक्षा करो रक्षा करो। मैंने जन्म भर आपही की पूजाकी है। क्या आज उसका यही फल देते हो कि मैं इन कसाइयों के हाथ से निर्दयता से मारा जाऊं" इतने ही में आकाश वाणी हुई कि—"तुमने पूर्व जन्म में मनुष्यों को प्राणहत्या की है। तुमने इन चालीसों आदमियों का शीश काट डाला था। इस कारण तुम्हारे इस दुष्कर्म का फल अवश्य ही मिलना चाहिये। नीति के अनुसार तो प्रथक २ इन चालीसों व्यक्तियों के हाथ से चालीस जन्मों में चालीस बार शीश कटवाना चाहिये। किन्तु तेरा ये चालीसों मिलकर

एक बार ही आज शीश काटते हैं यह सब मेरी ही सेवा का फल है ! क्या तुम अपनी सेवा के इस फलको कम समझते हो ।" इतने ही में एक छोटा समय बीतने पर चोरों ने हिन्दू को मार डाला और धन को लेकर नौ दो ग्यारह हो गये ।

नं० ८७ अहिंसा परमोधर्म (दया का फल)

मैं उस परम पिता घट २ वासी परमात्मा को कोटा निकोटि बार नमस्कार करता हूं कि उन्होंने सम्पूर्ण सृष्टी को रचकर चौरासी लाख योनियां उत्पन्न की हैं । जिनमें मनुष्य को सब से श्रेष्ट बनाकर उच्च बुद्धि प्रदान की है । ऐसो श्रेष्ट हो और उच्च बुद्धि पाकर भी पामर जन दुष्कर्मों में जुटे रहते हैं । उनको चाहिये कि वे अच्छे २ कर्म करके अपने जीवन को सुफल बनावें ।

उन शुभ कर्मों में से अहिंसा भी एक परम शुभ कर्म है इसी विषय में एक दृष्टांत है कि सुबक्तगीनगज़नवी युवावस्थासे एक कबीला का सरदार था । वह इतना दीन [रंक] था कि घोड़े के सिवाय पास में और कुछ न था । वह अपना अधिकतर समय आखेट में व्यतीत करता था । एक दिन सुबक्तगीन ने एक हिरनी और उसके बच्चे को बन में निर्भय चरते देखा तो घोड़े को

दौड़ा कर उस बच्चे को पकड़ लिया। और अपने घर ले आया। बेचारी दीन हिरनी भी उसके पीछे२ चली आई सुबक्तगीन ने अहिंसा को परम धर्म मानकर हिरनी पर अस्त्र नहीं छोड़े किन्तु दयालुता से हिरनी को दुखी देख कर उसके बच्चे को छोड़ दिया।

जब सुबक्तगीन रात्रि को लौटा तो स्वप्नमें देखा कि स्वान हजरत आप हैं और कहते हैं "कि खुदा तेरी इस अहिंसा और दया से प्रसन्न हैं और तेरा नाम वादशाहत में दर्ज कर लिया है तुम किसी दिन वादशाह हो जाओगे ? प्रजा के साथ में भी ऐसा ही व्यवहार करना" अन्त में सुबक्तगीन का स्वप्न सत्य हुआ।

इसी प्रकार महात्मा बौद्ध ने भी अहिंसा को परम धर्म बतलाया है।

> सर्वे यज्ञेषु यद्दानं, सर्वतीर्थेषु यत्फलम्।
> सर्व दानं फलं वापि न तत्तुल्यमऽहिंसया ॥

परन्तु आज कल तो मनुष्य हिंसा को ही प्रिय मान बैठे हैं। जिस प्रकार मोर सर्पों को खाकर डकार नहीं लेता उसी भांति आज कल मनुष्य पक हिंसा करके हाथ तक नही धोते।

———o-o-o———

नं० ८८ सज्जन के उर भूल से पाप करने पर आन्तरिक क्लेश होता है।

यदि सज्जन पुरुष अज्ञान वस पाप जाल में फंस जाता

है तो ज्ञान के उदय होने पर उसी को भले ही आत्मग्लानि अथवा आन्तरिक क्लेश होता हो, पुराने पापियों को तो इसकी खबर भी नहीं होती।

टरकी खलीफा "मौतासर,, अज्ञानतावस लोभ के जाल में फंस गया था। अस्तु उसने राजलोभ के कारण अपने पिता को मरवा दिया था। एक दिन वह पिता के राज भवन का सामान देख रहा था। देखते २ उसकी दृष्टि एक अति श्रेष्ठ चित्र पर पड़ी जिसमें एक युवक पुरुष घोड़े पर सवार था और रत्नों से जड़ा हुआ ताज उसके सिर पर सुशोभित था। उसके आस पास फारसी भाषा में कुछ अंकित था। खलीफा "मौता-सर,, ने अपने एक मुनीम को बुलवा कर उसको पढ़वाया। उसमें यह लिखा था कि मैं सीरोज़ खुसरो का पुत्र हूं, मैंने अज्ञानता के बशीभूत होकर ताज लेने की इच्छा से अपने पिता को मरवा डाला पर उसके पीछे दुष्कर्म के कारण वह ताज मैं केवल छः महीने अपने शिर पर रख सका (क्योंकि दुष्कर्म का नतीजा) बुरा होता है।

यह बात सुनते ही खलीफा "मौतासर" के दुख की सीमा न रही उसके चित्त पर बड़ा भारी प्रभाव पड़ा और उसे आत्मग्लानि अथवा आन्तरिक क्लेश ने घर दबाया जिसके कारण वह केवल तीन ही दिन राज्य करके मर गया। इसी से तो कहा है कि "यदि आन्तरिक क्लेश होता हो तो किसी नये को जाल में फंसने से भले ही होता हो पुरानों को नहीं। जैसे

दुर्गन्ध में रहने वाले व्यक्ति की नाक में दुर्गन्ध समा जाती है तब उसको दुर्गन्ध नहीं जान पड़ती अथवा जैसे पत्थर पर बार बार तलवार के मारने से उसकी धार स्वयं ही मन्द पड़ जाती है इसी प्रकार ऐसे मनुष्य के मन से अकीर्य की ग्लानि निकल कर उसके मन पर निकृष्टि प्रवृत्तियों का पूरा २ अधिकार जम जाता है। किसी ने ठीक ही कहा है कि सुख दुख का आधार सत्कर्म और दुष्कर्म पर है।

———❁———
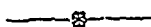
नं० ८६ माया ने जीव को ग्रसित कर रक्खा है या जीव ने माया को ग्रसित कर रक्खा है।

किसी नगर के समीप एक विद्वान महात्मा का रमणीक आश्रम था। जहाँ पर कि माया जा ही नहीं सकती थी। उनका एक शिष्य था जो गुरु जी की गायें चराता और भिक्षान्न से पेट भर कर नित प्रति आनन्द पूर्वक विद्याध्ययन करता था।

एक दिन गुरु जी ने कहा—"कि हे तात ! मैं कुछ काल को देशाटन के लिये जाता हूं, तुम आश्रम में रहकर गौओं का पालन पोषण करना और साधुवृती से अपने भी अमूल्य काल को भगवान के गुणानुवाद में व्यतीत करते रहना जिससे किसी प्रकार की आपत्ति का सामना न करना पड़े।" यह कह कर

महात्मा जी तो चले गये और शिष्य भी गुरु के सदुपदेशानुसार रहने लगे। उसी समय में उस गांव में एक नवयुवक पुरुष मर गया था। उसकी स्त्री पेट पालने के लिये शिष्य के आश्रम में गई और हाथ जोड़ कर बोली "कि हे नाथ मैं आपकी गौओं का गोबर कर दिया करूंगी और गौशाला की सफाई भी किया करूंगी इस परिश्रम में आप मुझे पेट पूर्ती के लिये केवल एक सेर आटा नित्य प्रति दे दिया करना।

शिष्य को यह सुन कर दया आगई उसने निष्कपट हो कहा—"कि, तुम बे रोक टोक इस काम को कर सकती हो" अब वह स्त्री नित्य प्रति वहाँ उस काम को करने लगी और शिष्य भी उदारता से रहते थे (किन्तु कुछ काल बीतने पर धीरे २ उस युवती के नैन सर शिष्य के हृदय में चुभ गये अब वे उसकी चाह करने लगे स्त्री भी उनको चाहती थी (फिर क्या था) दोनों परस्पर प्रेम से हंसी मजाक भी करने लगे दोनों को कामदेव ने जीत लिया। शिष्य जब से लिंगेन्द्रिय के वस में हुए थे तभी से उनके हृदय से ज्ञान जाता रहा अब वे दोनों परस्पर भोग विलास भी करने लगे कालान्तर में उसके दो, तीन, बाल बच्चे भी उत्पन्न हो गये। अबतो शिष्य गृहस्थी होकर खेत भी करने लगे। इसके पीछे उसके गुरु जी लौट कर आये तो शिष्य की यह गति मिली, गुरु जी के आने का समाचार सुन कर नगर निवासी जन वहाँ पर आये और हाथ जोड़ कर बोले २ "कि, हे स्वामी आपके

शिष्य को तो माया ने ग्रसित कर लिया है ।" यही बात शिष्य भी करने लगा तो महात्मा जी को क्रोध आगया और खड़े होकर एक नीम के वृक्ष को हाथों से पकड़ लिया और कहने लगे—"कि, मुझको नीम ने ग्रसित करलिया है।" तब शिष्य बोला—"कि हे स्वामी यह नीम आपको कैसे ग्रसित कर सकता है इसको तो आपने ही पकड़ रक्खा है।" आप अपने दोनों हाथ अलग कर दीजिये तुरन्त ही छूट जाओगे यह सुन गुरुजी ने कहा—" कि मैं बहुत ही बल लगा रहा हूं किन्तु यह नीम मुझे नहीं छोड़ता है।" यह सुन शिष्य ने गुरु जी के हाथों को पकड़ कर नीम से अलग कर दिया तो गुरुजी ने क्रोध पूर्वक शिष्य के तन में कई चीमटा दिये और कहा—"कि शठ जैसे नीम को मैंने ही पकड़ रक्खा है बेचारा जड़ नीम मुझको क्या पकड़ सकता है। इसी प्रकार माया भी जड़ है और तू चैतन्य है फिर बता जड़ पदार्थ ने तुझे कैसे ग्रसित कर लिया" यह सुन शिष्य लज्जित हो गया और महात्मा जी उस आश्रम को छोड़ कर दूसरी जगह चले गये ।
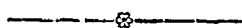
नं० ९० मन भूत को बस करने का उपाय

किसी ग्राम में एक धनाढ्य बणिक रहता था । उस ग्राम के समीप एक महात्मा का ललित आश्रम था । एक दिन

यह वणिक उस महात्मा के पास गया और बोला—" कि हे स्वामी मैंने सुन रक्खा है कि आपके पास एक भूत है जो आपके वस में है सो मुझ पर अनुग्रह करके उसे दे दीजिये। यह सुन महात्मा ने उस भूत को बुलाया और कहा कि तुम इन सेठजी के यहाँ जाओ इस पर भूत ने कहा—" कि स्वामिन् मैं चला तो जाऊंगा परन्तु एक शर्त यह है कि इनको मेरे लिये हर वक्त काम बताना पड़ेगा और जब न बतावेंगे तभी मैं इन को दुखी करूंगा।,, यह सुन सेठजी ने कहा—" कि हमारे यहाँ बहुत काम हैं तुम चलो" भूत सेठजी के साथ घर आया और भारी से भारी काम को तुरन्त ही कर देता कुछ ही समय में सेठजी के सब काम कर दिये तो अब सेठ जी पर कुछ काम ही न रहा बेचारे अच्छे संकट में फंसे दिन रात दुखी रहने लगे। जब सब काम बात गये तो भूत बोला लालाजी कुछ और काम है तब सेठ जी ने कहा कुछ नहीं इतना सुनते ही भूत मारने दौड़ा सेठजी भागते २ महात्मा जी के समीप पहुंचे और बोले—"कि रक्षा करो महाराज रक्षा करो आपका भूत मारने को दौड़ता चला आता है। यह सुन महात्मा जी को दया आई और उसको एक उपाय बतलाया कि अपने घर के पास एक लोहे का खम्भ गड़वा लीजिये जब काम न हुआ कर तभी भूत से कह देना कि इस पर चढ़, फिर कहना कि उतर, मतलब यह है कि उसको उसी पर चढ़ने उतरने की आज्ञा देदेना। सेठजी ने ऐसा ही किया अब भूत घबड़ाने

लगा, थोड़े ही दिनों में वह भूत सेठजी के वस में हो गया ।
इसी प्रकार यह मन भूत है इसको भी सद्गुरु के उपदेशानुसार
भगवान के गुणानुवाद रूपी खम्भ पर चढ़ाते रहना चाहिये
और किसी मार्ग में इसे न जाने दो बस यह कुछ ही दिन में
भूत की तरह अपने वस में हो जायगा ।

——+——

नं० ९१ बुरे की खोज

एक महात्मा के पास दो मनुष्य कुछ धर्म शिक्षा लेने के
लिये गये । तो महात्मा जी ने एक से तो यह कहा कि तुम
संसार की सबसे बुरी चीज ढूढ़ कर लाओ और दूसरे से यह
कहा कि तुम इस कबूतर को ले जाकर ऐसी जगह मार लाओ
जहाँ पर कोई दूसरा न हो यह सुन कर दोनों चले एक ने एक
झाड़ी की ओट में कबूतर को मार दिया और महात्मा जी के
पास ले आया । साधू ने कहा तुमने कहाँ पर मारा था । वह
बोला एक झाड़ी की ओट में, वहाँ पर कोई न था । यह सुन
महात्मा ने कहा कि,—

दो०—पापी समझत पाप करि, काहु देख्यौ नाहिं ।
पै सुर और निज आत्मा, निशदिन देखत जाहिं ॥

बस तुमको यही शिक्षा है । साधू ने शिक्षाधिकारी
न समझ कर लौटा दिया । अब दूसरा जो बुरे की खोज में

था बहुत ही घूमा परन्तु कुछ ही बुरा न मिला तब अन्त में पाखाना (विष्टा) को हाथ पर लेना चाहा त्योंही उसमें अग्नि प्रगट हो गई और वह मैला कहने लगा कि मूर्ख तूने मुझे बुरा समझ कर उठाना चाहा अरे अज्ञान मैं तो अन्न देव था । किन्तु तुम जैसे की संगति से मेरा यह दुष्परिणाम हुआ अर्थात् तुम्हारे मुख का संग किया जिससे मुझे भी मैला होना पड़ा यह सुन कर वह लज्जित हो महात्माजी के पास आया और दोनों हाथ जोड़ कर कहने लगा कि—

दोहा—बुरा जो देखन को चला, बुरा न दीखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय॥

महात्मा जी ने यह सुन कर उसे ही अपना शिष्य बना कर धर्म शिक्षा दी।

नं० ६२ देह होते हुए विदेह क्यों

एक दिन महाराज जनक जी से उनके मंत्री ने पूछा कि आपको देह होते हुए विदेह क्यों बोलते हैं। राजा ने कहा कि इसका उत्तर फिर कभी दे दूंगा। एक दिन राजाने नगर में यह घोषणा करादी कि कल ४ बजे मंत्री को किसी अपराध पर फाँसी दी जायगी। दूसरे दिन राजा ने छत्तीसों व्यन्जन तैयार कराये किन्तु नमक किसीमें न डलवाया और दो बजे के करीब मंत्री जी को बुलाकर भोजन कराया और पीछे पूछा—कि,

कहिये मंत्री जी भोजन में नमक कैसा रहा" ? मंत्री ने कहा— "महाराज ! मुझे इस शोक में कि दो घंटे बाद फाँसी दी जायगी देह की सुध नहीं है अर्थात् विदेह होरहा हूं मुझे यह ज्ञात नहीं कि उसमें नमक था या नहीं।" राजा यह सुन हंसकर बोले कि बस तुम्हारे प्रश्न का उत्तर मिल गया। जिस तरह आप अपने जीवन का दो घंटा तक रहने का भरोसा पाकर भी दो घंटा विदेह रहे वैसे ही मैं अपनी जिन्दगी का एक क्षण का भरोसा न करके हमेशा विदेह रहता हूं।

नं० ९३ चोर की दाढ़ी में तिनका।

किसी कस्बा बस्ती में चोरी हो गई। बस्ती के मुखिया और नम्बरदार आदि ने थाने रिपोर्ट में की। थानेदार साहब ने कई दिन आकर तहकीकात की किन्तु चोर का पता न चला तब आखिर में थानेदार साहब ने बस्ती के सब मनुष्यों को एकत्रित किया और कहा—कि "चोर की दाढ़ी में तिनका" यह सुन और तो सब मनुष्य खड़े रहे किन्तु जिसने चोरी की थी। विचारने लगा कि शायद मेरी दाढ़ी में तो तिनका न हो यह सोच अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। थानेदार ने तुरन्त ही उसे पकड़ लिया और सजा करादी। चोर में साहस ही कितना होता है। यदि कोई चोर के सामने किसी चोरी की हालत

वर्णन करे तो वह चोर उसे अपने प्रति समझ कर उससे लड़ने तैयार हो जाता है।

नं० ९४ झूंठ सांच का अन्तर चार अंगुल है

किसी गांव में एक कत्ल का झगड़ा हो गया था। उसमें एक मनुष्य ने अवसर पाकर अपने वैरी का नाम ले दिया कि फलाने ने इसको कत्ल कर दिया है। वह वेचारा सज्जन पुरुष था। सुनते ही घबड़ा गया तब नगर के कुछ मनुष्यों ने कहा कि घबड़ाते क्यों हो साँच को आँच कहीं नहीं है। अन्त में हाकिम ने आकर उसको पकड़ लिया और वह जो नाम ले आया था गवाही में रहा। जब मुकद्दमा हुआ तो उस दुष्ट ने उसके विपरीत गवाही दे दी। तब उस निरपराधी के वकील ने उससे पूछा कि तुमने अपनी आंखों से देखा झूंठा के पैर ही कितने होते हैं वकील की डाट को सुनकर बोला कि नहीं तो साहब मैंने तो इसी का हल्ला सुना था। यह सुन वकील ने हाकिम से कहा—कि देखिये हजूर झूंठ और सांच में चार अंगुल का अन्तर है। जैसे कि आंखों से देखा हुआ सत्य माना जाता है और कानों से सुना हुआ झूंठा माना जाता है अब आप आंख से कान तक नाँप कर देख लीजिये चार अंगुल का अन्तर है यह सुन हाकिम बहुत प्रसन्न हुआ और उस निरपराधी को छोड़ कर उस झूठे को सजा दी।

अतः सुनी हुई बात पर कभी विश्वास न करना चाहिये।

—–⊛–—
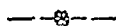
नं० ९५ विवेक वैराग्य के बिना ज्ञानवान भी शोभा नहीं पाता है।

उत्तराखंड में एक दयालु राजा अपना रूप छिपा कर किसानों व मजदूरों की हालत देखने के लिये रात्रि को नगर में घूमता था। जिसके दुख का परिचय उसे हो जाता राजा तन, मन और धन से उसके दुख को दूर करता था। एक दिन राजा इसी कार्य के कारण अपने नगर में निकला, उस दिन घटाटोप अंधेरा छाया हुआ था और आकाश में बिजली चमकती थी। राजा साहब एक घर पर खड़े २ कुछ बातें सुन रहे थे। बात करने वाले बड़े कंगाल थे नित्य प्रति मजदूरी से अपना पेट ‥लते थे उस दिन उनको कहीं मजदूरी भी न मिली थी। जब नकी दृष्टि घर के द्वार पर गई तो चोर खड़ा हुआ मालूम पड़ा तुरन्त ही द्वार पर आये और राजा साहब को मारने लगे। ह हल्ला सुन कर पड़ौस के कुछ आदमी चिराग लेकर आये ो वह चोर न निकला किन्तु वे तो राजा साहब थे। अब वे बेचारे थर थर कांपने लगे और राजा साहब अपने घर चले गये। यद्यपि ये राजा ही थे तथापि छत्र चामरादिक के न होने से इनकी यह गति हुई, ऐसे ही ज्ञान के छत्र चामरादिक विवेक

और वैराग्य है। इसी कारण ज्ञानवान् इनके बिना शोभाहीन हैं। और वे भी दुर्वचन रूपी मार खाते फिरते हैं अस्तु ज्ञानवान को वैराग्य युक्त होना चाहिये।

नं०९६ संसारमें पुरुष कौन और स्त्री कौन है

एक राजा के कोई सन्तान न थी। वह दिन रात इसी चिन्ताग्नि में जलता रहता था। एक दिन ईश्वर कृपा से उसकी स्त्री के गर्भ से लड़की उत्पन्न हुई, वह उसे देख कर अत्यन्त हर्षित रहता था। लड़की बड़ी होने पर भी नंगी रहने लगी उसके माता पिता ने इस कुटेव को छुड़ाने के लिए बहुत से प्रयत्न किये किन्तु उनका कोई फल न निकला।

"एक दिन एक महात्मा जी राजा के घर आए" उनको देखते ही उस लड़की ने कपड़ा पहिन लिए यह देख कर माता पिता ने पूछा कि बेटी तुमने हमारे कहने से तो कभी कपड़े नहीं पहिने आज इनके देखते ही क्यों पहिन लिए हैं।" यह सुन कर पुत्री ने कहा—"कि स्त्री को पुरुष से लाज करनी चाहिये न कि स्त्री से स्त्री को तुम पुरुष होते हुए भी स्त्री के समान हो क्योंकि इन्द्रियाँ ही जिसके बस में नहीं हैं वह स्त्री ही के समान है। "किन्तु ये महात्मा इन्द्रिय जीत हैं इसलिये मेरा इनसे लाज करना उचित था। और इन्द्रिय जीत बिना वैराग्य के नहीं हो सकता है। और जो मनुष्य

स्त्री के वस में हैं वह भी स्त्री संख्या में गणना करने योग्य है। ये राजा भी अपनी स्त्री के वस में होकर कुछ अन्याय कर गये थे इस कारण और भी पुत्री ने उनसे स्त्री की समता दी थी।

—o—SS—o—

नं० ६७ पथिकारत

महाभारत में एक छोटा सा इतिहास है कि एक ब्राह्मण कहीं विदेश को जाता था, रास्ता भूल कर वह एक घने वन में पहुंच गया। उस वन में मांसाहारी सिंहादिक बड़े ही भयानक जीव घोर गर्जना कर रहे थे। कहीं बड़े मस्त हाथी चिंघार रहे हैं और कहीं बड़े विषधर सर्प बन में घूम रहे हैं। वह देख कर ब्राह्मण बड़ा ही भयभीत हुआ और अपने प्राण रक्षा के साधन सोचने लगा। इतने ही में क्या देखता है कि एक पिशाचिनी सामने से हाथ में पाश लिये हुए आरही है। उस से बच कर ब्राह्मण वन में दूसरी ओर बढ़ा तो यह दृष्टि पड़ा कि पर्वतों के समान पाँच शिरों वाले सर्प घूम रहे हैं। जब उनसे भी बच कर (अर्थात् उस रस्ता को त्याग कर) दूसरी ओर चला तो वन में एक कूआ दृष्टि पड़ा जो अन्धकार से भरा था और ऊपर से तृण करके ढका हुआ था। और उसके भीतर एक वेल लटक रही थी उसको ब्राह्मण ने अपने बचने का साधन समझ कर हाथ से पकड़ ली और नीचे को शिर करके लटक गया। जब थोड़ी देर बाद उसकी दृष्टि नीचे कुआ में गई तो वहाँ एक बड़ा सर्प बैठा दिखलाई दिया फिर

ऊपर को देखा तो एक सफेद और श्याम रंग का छः मुख का मस्त हाथी जिस बेल को द्विज पकड़ रहा है उसी बेल को खाता हुआ नजर आया और बीच में दो बड़े चूहे उस बेल को काट रहे हैं, अब द्विज का सिवाय ईश्वर के यहां दूसरा रक्षक नहीं है किन्तु उसी बेल पर मधुमक्खी बैठी हुई थीं जो मधु टपका रहीं थीं, वह मधु उस विप्र के मुख में पड़ता था। बस इसी मधु के स्वाद में ब्राह्मण अपने सब संकटों को भूल रहा है। यह तो दृष्टान्त है अब इसको दृष्टान्त में घटाते हैं। यह द्विज रूपी तो जीव है जो संसार रूपी सघन और भयंकर वन में भूल कर फिरता है और काम क्रोधादिक डरावने जीव इसमें घूम रहे हैं। और स्त्री रूपी पिशाचिनी भोग रूपी पाश को लेकर जीव के बांधने को चली आती है, इसमें गृहस्थाश्रम रूपी कुआ है और आयु रूपी बेल इसमें लटक रही है उसी को पकड़ कर जीव लटक रहा है, नीचे काल रूपी सर्प इसके खाने को बैठा है ऊपर दिन रात रूपी दो चूहे आयु रूपी बेल को काट रहे हैं और वर्ष रूपी हाथी आयु रूपी बेल को खा रहा है। इस के षट ऋतु ही छः मुख हैं और शुक्ल तथा कृष्ण पक्ष ही इसके दो रंग हैं। इस प्रकार के संकट में फंसा हुआ भी यह जीव आशा रूपी मधु मक्खी के मधु में अपने सब संकटों को भूला हुआ है। इसको वैराग्य धारण करके भगवान की शरण जाना चाहिये, तभी इसका छुटकारा हो सकता है अन्यथा नहीं।

नं० ९८ परोपकार

परोपकार ही मनुष्य का भूषण है जो व्यक्ति इस भूषण को नहीं धारण करता वह शोभाहीन है। मनुष्य को तो विशेष ज्ञान है ही इसका तो कहना ही क्या है परन्तु इतर जीव भी परोपकार करते हैं।

एक पंडित मार्ग चले जाते थे उन्होंने एक वन में जाकरे देखा कि मूसों की एक बड़ी भारी कतार चली आती है उसमें एक चूहा अन्धा था, उसके मुख में एक घास का तृन पकड़ाकर उसी तृन को दूसरे मूसे ने अपने मुख में पकड़ रक्खा था। तिस के पीछे २ वह अन्धा मूसा भी चला जाता था अब विचारिये कि मूसा आदिक जानवरों में भी उपकार करने का ज्ञान है अब मतलब यह है कि जो मनुष्य शरीर पाकर उपकार से रहित है वह पशुओं से भी निकृष्ट श्रेणी में गिना जाने योग्य है क्योंकि मनुष्य शरीर तो प्रधानतः उपकार करने ही को उत्पन्न हुआ है।

दोहा—बिरछा फलै न आम कौ, नदी न अचवै नीर।
परोपकार के कारणे, संतन धरौ शरीर॥
शेष शीश धारे धरा, कछु न आपनौ काज।
परहित परस्वारथि रथी, वाइक वनें न लाज॥

——०-SS-०——

नं० ९९ परोपकार

एक नगर में एक वैश्य बड़ा धनाढ्य था । वह नित्य प्रति अपने धनको यज्ञों में खर्च करता था । धीरे २ जब उसका सब धन व्यतीत हो गया तो वह खाने तक को भी तंग आगया तब उसकी स्त्री ने कहा कि "नाथ आप किसी राजा के पास जाकर और अपनी एक यज्ञ का फल बेचकर धन लाओ जिस से कि हमारी जिन्दगी आराम से बसर होजाय ।" बनिया ने स्त्री की बात मानकर चलने की तैयारी करदी तो उसकी स्त्री ने रास्ते को नौ रोटी बांध दी । बनियां उन्हें लेकर चला तो दिन के तीसरे पहर एक वन में कूआ के पास वृक्ष के नीचे सुस्ताने लगा तब देखता क्या है कि वृक्ष की कोटर में एक कुतिया ब्याही हुई पड़ी है जोकि तीन दिनकी भूखी है क्योंकि तीन दिन से कहीं बाहर नहीं जासकी । बनिया ने परोपकार की ओर ध्यान बढ़ा कर सब रोटी कुतिया को खिलादी आप भूखा ही रह गया । पुनः दूसरे दिन राजा के पास पहुँचा और यज्ञ के एक फल को बेचने के लिये कहा । राजा ने एक ज्योतिषी पंडित को बुलाकर कहा कि तुम इसकी सब यज्ञों का फल प्रश्न में देख कर जो सबसे बढ़ कर हो उसे हमें बतलाइये । बस हम उसे ही खरीद लेंगे । पंडित जी ने कहा कि इस ने मार्ग में एक कुतिया को रोटी खिला कर मय उसके बच्चों के जान बचाई है वही यज्ञ सब यज्ञों में श्रेय है । यदि उसी के फल

को ये बेचें तो खरीद लीजिये राजा ने बनियाँ से कहा, बनियाँ ने कहा—कि "इसको तो मैं नहीं बेच सकता हूं, इसके अलावा और यज्ञ का फल खरीद लीजिये राजा ने और किसी यज्ञ के फल को न खरीद कर उसे कुछ धन देकर विदा कर दिया। अब देखिये कि परोपकार का कितना बड़ा फल है।

परोपकार कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि।
परोपकारजं पुण्यं न स्यात्क्रतुशतैरपि ॥

अर्थ—धन से तथा प्राणों से परोपकार करना चाहिये क्योंकि परोपकार के बराबर सौ यज्ञ का भी पुण्य नहीं है।

परोपकार शून्यस्य धिङ् मनुष्यस्य जीवितम्।
यावन्तः पशवस्तेषां चर्माप्युपकरिष्यति ॥

अर्थ—जो मनुष्य परोपकार से शून्य है उसके जीने को धिक्कार है। क्योंकि जितने पशु हैं उनके चर्म भी परोपकार करते हैं।

—o—

नं० १०० परोपकार

एक सेनापति अपनी सेना को अमरीका ले जारहा था। के सब मार्ग भूलकर एक सघन वन में पहुंच गये। और खाने का माल व्यतीत होगया, बेचारे भूखे प्यासे बेचैन हो गये। उनको भटकते हुए देख कर एक मनुष्य आया और उनके हाल से परिचित हुआ। तब वह उन सब को लेकर आगे बढ़ा तो

एक स्थान पर अन्नका ढेर मिला, तो उसने सेना से कहा कि भाई ये मेरा अन्न नहीं है। अतः तुम लोग इससे हाथ न लगाना यह सुनकर सेना ने ऐसा ही किया। पुनः आगे बढे तो फिर एक अन्न का ढेर मिला और वहीं पर एक निर्मल जलाशय था। वहीं पर उस मनुष्य ने कहा कि भाई ये अपना ही माल है जिस किसी को जितना चाहिये उतना ही इसमें से ले सकते है। यह सुन कर सब ने अपनी २ भूख बुझाई और जलाशय में स्नान किये तथा घोड़ों को भी दाना खवाया और वहां पर आराम से ठहरे। फिर दूसरे दिन मार्ग पूछ कर चले गये। बस इसी का नाम परोपकार है। जो मनुष्य किसी का निष्प्रयोजन कार्य करता है उसी को उपकार कहते हैं।

नं० १०१ परोपकार ही नरदेह का भूषण है

जिस समय पाँडव परीक्षित को राज्याधिकारी बनाकर आप द्रोपदी सहित हिमालय पर गलने जा रहे थे उस समय धर्मराज अपने पुत्र युधिष्ठिर की धर्म परीक्षा लेने के लिये श्वान का रूप धारण कर महा व्याकुल हो उनके आगे फिरने लगे। श्वान के कान में कीड़ा पड़ रहे थे। धर्मराज युधिष्ठिर को देखते ही दया आगई और कान को पकड़ कर एक तिनका से कीड़ा निकालने लगे। ज्योंही एक कीड़ा निकाला त्यों वही

विचार उत्पन्न हुआ कि कीड़ों को पृथ्वी पर डालता हूं तो अनेक जीव हत्या का दोष लगेगा। और यदि नहीं निकलता हूं तो मेरा धर्म जाता है यह विचार कर अपनी जंघा फाड़ डाली और श्वान के कर्ण कीड़ों को उसमें रखने लगे ऐसा करने से दोनों दोषों से बच गये। ये भी तो मनुष्य ही थे किन्तु परोपकार को कितना भारी धर्म समझते थे। इसी से तो परोपकार को नर देही का भूषण कहा है जो जन इसको धारण करता है वह शोभा पाता है।

धन्य है ऐसे पूर्व परोपकारी पुरुषों को और उनके जननी जनक को जिन्होंने कि ऐसे सुपुत्रों को पाया॥

नं १०२ संगठन (मेल)

एक नगर में एक काश्तकार के दस पुत्र थे। जब उस काश्तकार के शिर में काल नरेश ने सफेद पुच्छ के बाणावेध दिये अर्थात् बाल सफेद पड़ गये तब एक दिन काश्तकार ने अपने दसों पुत्रों को बुलाया और उन्हें कच्चे सूत का धागा तोड़ने को पृथक २ दिया, तो सब ने उस धागे को तोड़ दिया। फिर कई धागों को एकत्रित की हुई एक रस्सी दी और सब से तुड़वाई परन्तु उसे कोई न तोड़ सका। फिर सब के सब एक साथ लगाये तब भी वह रस्सी न टूटी। तब उस काश्तकार

ने कहा कि प्रिय पुत्रो मैंने तुमको यह शिक्षा दी है। जैसे तुमने एक २ धागे को अल्प समय में ही तोड़ दिया। और बहुत से धागों को न तोड़ सके बस इसी प्रकार यदि तुम फूट से रहोगे तो कच्चे धागे की तरह टूट कर दुख भोगोगे, और यदि सब मेल से रहे तो रस्सी के समान मजबूत हो जाओगे। अतः मेल से रहना बाप की यह बात पुत्रों ने स्वीकार करली और उसी तरह मेल से रहे। बस इसीलिये हमें भी संगठन की आवश्यकता है।

नं० १०३ संगठन से लाभ।

हमको सँगठन की आवश्यकता क्यों है। इसके तो कई कारण हैं परन्तु दो एक यहाँ बताया जायगा। पहिला तो स्वतंत्रतादायक है और दूसरे संगठन से आपत्ति काल सहज में ही व्यतीत हो जाता है। किसी गाँव में अकस्मात् अग्नि लग गई उस दिन पवन भी तीव्र गति से बह रहा था। इस कारण अग्नी सारे गाँव में फैल गई। सब मनुष्य अपने २ पशुओं को लेकर भाग गये। परन्तु बेचारे दो मनुष्य एक अन्धा और एक लंगड़ा रह गया। वे बेचारे घबड़ा गये, तब उन्होंने आपस में सलाह की कि भाई बिना परस्पर मेल के हमारे तुम्हारे बचने का कोई साधन नहीं है, अस्तु ऐसा करो कि दोनों पार हो जांय,

तब लंगड़े ने अन्धे के कन्धे पर सवार हो कर उसे मार्ग बतलाया इस साधन से दोनो के प्राण बच गये नहीं तो वहीं पर जल मरते क्योंकि,लंगड़ा भाग नहीं सकता था, और अन्धा भी न दीखने के कारण भाग नहीं सकता था । किन्तु संगठन ने उन दोनों के प्राण बचा दिये ।

———o———

नं० १०४ परस्पर की फूट

किसी जंगल में चार भैंसा एक साथ पास २ ही चरा करते थे । उनमें इतना मेल था कि जंगली जानवर की यह हिम्मत न थी जो उनकी ओर आंख उठा कर देखे । परन्तु एक दिन उनमें परसपर फूट होगई और चारों प्रथक २ चरने को चले गये उसी दिन उस वन में एक सिंह आगया। जिसने प्रथक २ चरते हुए उन चारों भैंसों को मारडाला । इसी से तो कहा है कि फूट का नतीजा बुरा होता है । इसी प्रकार जय-चन्द और पृथ्वीराज की फूट ने आज भारत को गारत करा दियो ।

॥ भावार्थ ॥

पस इसी प्रकार यह जीव जब तक अपने साथी, साहस धर्म, विचार, सुचरित्र, शीलता, और दया आदिकों से मेल रखता है तब तक तो आनन्द से रहता है और जब इनका संग छोड़ देता है तब काम, क्रोध और लोभादि चारों द्वारा सताया जाता है । अस्तु हम सबको वर्तमान दशा में संगठन

की सर्व प्रथम और महान आवश्यकता है।

—०-SS-०—

नं० १०५ आज कल की सहधर्मिणी

किसी नगर में एक किसान रहता था। उसकी स्त्री बड़ी चंचल थी एक दिन प्रसंग चलने पर किसान ने कहा कि मैंने कथा में सुना है कि बैरी, बघुआ, चटोर स्त्री, भूखा मनुष्य और एक साला ये मीठे बोल २ कर दगा से मारते हैं अत इनकी कभी परतीत न करनी चाहिये। यह सुन कर स्त्री ने कहा कि आप सबको एक समान न समझें मैं प्रण करके कहती हूं कि जिस दिन आप प्राण त्यागेंगे उसी दिन मैं भी त्याग दूंगी यह सुन कर वह किसान प्रसन्न हो चला गया।

एक दिन किसान परीक्षा लेने के लिये प्राणायाम चढ़ा कर घर लेट गया और अपने पैर किवाड़ों से अड़ा लिये। कुछ देर बाद स्त्री ने उन्हें बहुतेरा जगाया परन्तु वह न जगा तब उस ने उसे मरा समझ कर विचारा कि आज मुझे तमाम दिन रोना पड़ेगा और खाने को कुछ मिलेगा नहीं, इस कारण कुछ भोजन पका लेना चाहिये। जिसे पाकर विलाप करूंगी। इस प्रकार विचार कर खीर पकाई और पूआ पकाये। अब जल्दी में खीर को तो भक्षण कर लिया और पूआ फिर के लिए रख छोड़े।

अब उसने रोना पीटना शुरू किया आवाज सुन कर पड़ौस के मनुष्य आगये और पैरों को हटाने लगे परन्तु वे पैर

किवाड़ों से अलग न हुटे तो पड़ौसियों ने कहा कि किवाड़ों को तोड़ डालो ताकि पैर हट जांय। यह सुन कर स्त्री ने कहा कि मेरी इन किवाड़ों को फिर कौन बनावेगा इस कारण पति ही के पैरों को काट दीजिये। यह सुन कर पति ने पैर ढीले कर दिये जो द्वितीय बार हटाने से हट गये। फिर उसकी स्त्री ने कहा कि—

सांई स्वर्ग पधारिये कछु मोह न भक्खौ।

यह सुन कर पड़े हुई किसान ने कहा कि—

खीरि लुपालुप खाइ लई, नेंकु पूछन पै ते चक्खौ॥

यह कह कर उसे अत्यन्त कड़ी सजा दी और सदैव को त्याग दी बस भारत में अधिकतर ऐसी स्त्रियों की संख्या अधिक है और दिन २ बढ़ती ही जाती है।

———o———

नं० १०६ दो घड़ी की माया

ऋषि मार्कण्डेयजी ने तप करके श्री भगवान से यह वरदान मांगा था कि मैं प्रलय का कौतिक देखूं यह सुन भगवान ने एवमस्तु कह दिया।

एक दिन ऋषि मार्कण्डेयजी सन्ध्या करने बैठे थे कि ईश्वर ने दो घड़ी की माया उत्पन्न की ऋषि ने सन्ध्या करतेर देखा कि समुद्र उमड़ा चला आता है। क्षण भर में जल ही जल हो गया ऋषि तैरने लगे और उसमें अक्षयवट को देख कर

उस पर चढ़ गये वहाँ बस दोनें में एक बालक को देखा और उसकी स्वास से उसके उदर में प्रवेश कर गये। वहाँ भी एक ऐसा ही संसार देखा और अपना भी आश्रम देखा वहाँ पर कुछ दिन रहे। फिर स्वाँस के साथ बाहर आये तो अपने को नदी तट पर स्थित देखा। यह देख विस्मय में आगये किन्तु पहिले वरदान का स्मरण कर चुप रह गये और अन्त में दो घड़ी की माया विदित हुई।

बस इस ससार में न कोई अपना है न कोई धनवान है केवल दो घड़ी कीमाया है जिसने सब जीवों को भुला रक्खा हैं। अस्तु मायापति का ही नित्य प्रति गुणानुवाद करना चाहिये जिससे इस अपार संसार से पार हो जायें।

—————o—————

नं० १०७ पूत सपूत कहा धन संचिय

किसी गांव में रत्नाकर नाम का एक वैश्य रहता था। वह बड़ा ही सदाचारी, परिश्रमी और व्यापार प्रवीन था। व्यापार में तो लक्ष्मी का निवास बताते ही हैं अत लाला रत्नाकार जी भी बड़े धनाढ्य हो गये। और दूर २ देशों में उनका नाम विख्यात हो गया। लालाजी के एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम देवदत्त था। देवदत्त के बालकपन ही से निराले ढग थे। 'होनहार विरवान के होत चीकने पात, वाली कहावत इन पर पूर्णतया घटित होती थी। एक दिन रत्नाकर

जी कथा में यह सुन आये थे कि, पूत सपूत कहा धन संचय, उन्होंने इसी शिक्षा को ग्रहण कर अपने सम्पूर्ण धन को दान में लुटाया और अनेक धार्मिककामों में लगा दिया । नगर के बहुत से मनुष्यों ने तथा कुटम्बी जनों ने उनसे कहा कि, लाला जी अपने प्रिय पुत्र देवदत्त का क्या आपको जरा भी ख्याल नहीं है । लालाजी ने उनकी एक न मानी, कुछ दिन पश्चात आपका देहान्त हो गया । उस समय आपका कमाया हुआ द्रव्य घर में किंचित भी न था । देवदत्त कुछ तो पढ़ लिये थे, अब वेचारे पिता जी के मरणोपरान्त लाचार होगये । किन्तु उन्हो ने साहस से काम किया वेचारे राति में तो नौकरी करते और दिन में पढ़ते थे । कुछ दिन बाद आप पढ़ लिख गये और व्यापार कुशल हो गये तो फिर बहुत सा द्रव्य पैदा किया और एक धनाढ्य महाजन हो गये और बहुत सा धन धार्मिक कामों में भी लगा दिया ।

इसी से तो कहा है कि "पूत सपूत कहा धन संचिय" जो पुत्र सुपुत्र है वह तो स्वयं ही धन कमा कर अपना जीवन आनन्द से व्यतीत कर सकता है ।

———❀———

नं १०८ पूत कपूत कहा धन संचिय

इन्हीं देवदत्त जी के प्यारेलाल नामक पुत्र हुए । इनका

पाँव पालने ही में दीखते हैं) वाली कहावत घटित होती थी। बालअवस्था ही से इनकी संतति खराब थी, कालवश देवदत्त जी का मरण हो गया तो घर का सारा भार प्यारेलाल जी के शिर पड़ा। इनके पृथक २ कामों के करने वाले सैकड़ों नौकर थे प्यारेलाल को कुसंग के कारण दो चार कुटेव पड़ गई थीं। एक तो व्यभिचार (पर स्त्री गमन) दूसरा शराब पीना, तीसरे अफीम आदि नशीले पदार्थों का सेवन, चौथे जूआ खेलना, जब तक वह दिन में इन कामों को न कर लेता तब तक विश्राम न लेता था। कुछ दिन बाद कुटेवों की वृद्धि से धन का अधिकांश भाग तो जूये में नष्ट हो गया, कुछ व्यभिचार और नशीले पदार्थों में व्यतीत हुआ, प्यारेलाल शराब पीकर मस्त पड़े रहते तो नौकरों ने यह जान कर कि "हमारा स्वामी तो पागल है" धन हरण कर लिया। अन्त में इन कुटेवों ने प्यारेलाल को रोटियों को भी मुहताज कर दिया, इसी से तो कहा है कि "पूत कपूत कहा धन संचिय,, क्योंकि वह सब धन को थोड़े ही काल में नष्ट कर डालता है।

नं० १०९ ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है।

एक राजा अपने मंत्री सहित आखेट को गये। बन में

दवयोग से घोड़े से गिर कर राजा के हाथ का अंगूठा टूट गया जब नगर में पहुँचे तो सब मनुष्य तो शोक करने लगे किन्तु मँत्रीजी यही कहते कि ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। राजा को बार २ यही सुन कर क्रोध आ गया और कहा कि हमारा तो अगूंठा टूट गया और आप कहते हैं कि ईश्वर जो कुछ करता है सो अच्छा ही करता है। इसमें ईश्वर ने क्या अच्छा किया। मँत्री ने हँसकर कहा कि महाराजाधिराज कुछ न कुछ पच्छा ही किया होगा यह सुन राजा का क्रोध और बढ़ गया और मंत्री को राज्य से बाहर निकलवा दिया।

एक दिन राजा फिर घोड़े पर सवार होकर आखेट को गए बन में घूमते २ सन्ध्या हो गई। वहीं पर बन में एक देवी का मन्दिर था। राजा घोड़ा को बाँध कर उसमें लेट गए जब कुछ रात्री व्यतीत हुई तब कुछ चोर वहाँ पर आए और राजा को सोता देख कर बड़े प्रसन्न हुए क्योंकि उन्हें बलिदान करना था। राजा को जगाया और तलवार लेकर शिर काटना चाहा तभी उनमें से एक ने कहा कि भाई देवी अप्रसन्न हो जायगी क्योंकि हम तुम अंगहीन की बलि दे रहे हैं इसके एक अंगूठा नहीं है। यह देख कर चोरों ने राजा को छोड़ दिया फिर राजा ने नगर में आते ही मन्त्री को बुलाया और अपना अपराध क्षमा कराया। तब मँत्री जी ने सब को समझाया कि यदि राजा साहब का अगूंठा टूटा न होता तो बलि दे दिये जाते अस्तु उस दिन अगूंठा टूट गया सो ईश्वर

ने अच्छा ही किया। और आपने मुझको राज्य से निकाला सो भी ईश्वर ने अच्छा ही किया क्योंकि यदि आप मुझे न निकालते तो आपके साथ मैं भी आखेट को जाता तो मैं अङ्गहीन नहीं था। अतः मेरी बलि चढ़ा देते, अस्तु ईश्वर ने यह भी अच्छा ही किया। राजा यह सुन कर प्रसन्नचित्त हो गया।
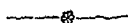
नं० ११० पाप का बाप लोभ

लोभ से पाप की उत्पत्ति हुई है इसी हेतु लोभ को पाप का बाप बतलाया गया है। जैसे कि एक ब्राह्मण और सुनार में मित्रता थी। ब्राह्मण बड़ा ही शील स्वभाव और सर्व गुण सम्पन्न था। उसकी स्त्री भी पतिव्रता थी। परन्तु वह ब्राह्मण धनहीन था, किन्तु सन्तोष को ही अपना परम धन मान कर जीवन व्यतीत करता था। और सुनार धनाढ्य था, किन्तु अविवाहित था।

एक दिन ब्राह्मण तो अर्थ चेष्टा में परदेश गये और अपनी स्त्री को सुनार मित्र के यहाँ छोड़ गये। एक दिन उस सुनार ने ब्राह्मणी को अपने स्नेह जाल में फसाना चाहा किन्तु वह सुनार की दुर्जनता से परिचित थी। पहिले ही से वह वैश्या गामी थी। ब्राह्मणी ने कहा कि अब मैं तुम्हारे घर कदापि नहीं आ सकती हूं। यह सुन सुनार ने कहा कि दो मुहर

नित्य रोटी करने की तुम्हें देता रहूंगा । ब्राह्मणी दीन तो थी ही दो मुहर आती देख रोटी करने पर तैयार होगई फिर सुनार ने सारे स्त्री आभूषण उसे दे दिया और चार मुहर नित्य करदीं ऐसे लोभ में फंसकर उस ब्राह्मणी ने अपना धर्म त्याग दिया । कुछ दिन बाद सुनार का एक पुत्र पैदा हुआ । जब वह ब्राह्मण परदेश से आया तो ब्राह्मणी ने विष देकर उसे मारा डाला और आपने सुनार को ही पति मान कर व्यभिचार किया । इसी से लोभ को पाप का बाप बतलाया गया है ।

नं० १११ अति लोभ का फल बुरा होता है

किसी गाँव में चार मनुष्य रोजगार हीन बड़े ही दुखी थे । एक वे विचार कर घर से निकले और परदेश जाने की तैयारी करदी जब चलते २ एक बन में पहुंचे तो रस्ता में एक महात्मा मिला । महात्मा को उनकी दशा देख कर दया आगई और चार बत्ती निकाल कर चारों को दीं और कहा कि जिसकी बत्ती जिस स्थान पर गिरे वह वही खोदना वहीं पर कुछ मिलजायगा । यह सुनकर वे चारों आगे बढ़े तो एक की बत्ती गिर गई वहाँ पर खोद कर देखा तो लोहे की खान मिली उसने तो लोहा बाँधकर अपने घर की राह ली किन्तु वे लोभ में आकर आगे को बढ़ गये । अब दूसरे की बत्ती गिर पड़ी वहाँ खोद कर देखा तो चाँदी की खान मिली वह भी चाँदी

बांध कर अपने घर लौट आया किन्तु वे दोनों और आगे बढ़े फिर एक की बत्ती गिर गई वहाँ खोदा तो स्वर्ण खानि निकली तब उसने चौथे से कहा कि इससे बढ़कर और क्या होगा अतः यहीं से सोना भर कर लौट चलो। किन्तु उसके हृदय में लोभ घुस बैठा था। वह बोला कि मुझे तो आगे जवाहर मिलेंगे मैं इसे क्यों लू यह कह आगे बढ़ गया परन्तु उसकी बत्ती कहीं पर न गिरी वह भी आगे चलता ही गया। चलते २ एक सघन वन में पहुंच गया। वहाँ क्या देखता है कि सामने से एक मनुष्य आरहा है जिस के शिर पर चक्र घूम रहा है और वह खून में लतपथ है। उसने पास आतेही अप ने शिर का चक्र इसके ऊपर छोड़ दिया तब इसने कहा कि तुमने यह क्या किया जो अपना चक्र हम पर छोड़ दिया है तब उसने कहा कि यहां का यही नियम है जो दूसरा आजात है तभी पहिले का फंद छूट जाता है अब जब कभी यहाँ दूसरा मनुष्य आवे तभी तुम उसपर अपना चक्र डाल देना तभी तुम्हारा फंद छूट जायगा। अब देखो अधिक लोभ सेक्या फल निकला अस्तु अधिक लोभ का त्याग करना चाहिये।

❀ श्रीः ❀

दृष्टान्त प्रकाश

द्वितीय भाग

जिसमें

कथावाचकों एव व्याख्यानदाताओं के लाभार्थ धार्मिक, सामाजिक तथा अन्यान्य विषयों पर १४० दृष्टान्त प्रासंगिक पद्यावली के सहित सरल और सुबोध भाषा में लिखे गये हैं।

संकलनकर्त्ता

स्वामी विश्वनाथ 'विश्वेश' राजवैद्य

प्रकाशक

भार्गव पुस्तकालय,

गायघाट, बनारस।

ब्राञ्च — कचौड़ीगली, बनारस।

१९४६] द्वितीयावृत्ति [मूल्य २)

अकबर और बीरबल के चुटकुले

(नीति तथा उपदेशपूर्ण एवं हास्ययुक्त वार्तालाप)

सम्पादक—पण्डित बालकृष्ण मालवीय

पुस्तकका विषय नामसे ही प्रकट है, 'अकबर और बीरबल' का नाम हाजिर जवाबीके सम्बन्धमें घर-घरमें लिया जाता है, लेकिन इस बातको बहुत कम लोग जानते हैं कि सचमुच कौन-कौन सी बातें अकबर और बीरबलके बीच हुई थीं—इस संबन्धमें प्रचलित किताबें अकबर बीरबल विनोद आदि विशेष प्रामाणिक नहीं कही जा सकतीं, कहीं-कहीं तो मनगढ़न्त अश्लील चुटकुलोंका अकबर और बीरबलसे मिलानेका ऐसा असफल प्रयत्न किया गया है जिसे देखकर हँसीके बजाय संग्रहकर्ताओंकी प्रवृत्तिपर रोना आता है, इन्हीं सब बातोंको ध्यानमें रखकर एक प्रामाणिक संग्रह इन बातोंका तैयार किया गया है, जिनपर अकबर और बीरबलमें बातचीत हुई थी, और जिनके बारेमें अपनी हाजिर जवाबीसे बीरबल, मुगल सम्राट् अकबरका मुँह बन्द कर दिया करते थे।

पुस्तक तैयार करते समय बहुत सी प्राचीन प्रतियोंसे भी सहायता ली गयी है, अनेकों मनगढ़न्त कहानियाँ निकाल दी गई हैं—केवल प्रामाणिक बातें ही आजकल की खड़ी बोलीमें दी गयी हैं—जो पुराने ढंगसे कही या लिखी गयी थीं उन्हें भी नवीनताके ढाँचेमें ढाल दिया गया है। इन बातोंको पढ़नेसे पाठकोंका मनोरञ्जन तो होगा ही, ज्ञानकी वृद्धि भी होगी और सोचने तथा तुरन्त जवाब देनेकी शक्ति बढ़ेगी। मनोविनोद पूर्ण बातोंसे स्वास्थ्य वृद्धिके साथ-साथ मानसिक शक्तियाँ भी बलवान होंगी, चेहरेसे मुर्दानगी दूर होकर जिन्दादिली आ जायगी, मनमयूर नाच उठेगा। हाजिर जवाबीकी अनेकानेक बातें ज्ञात होनेसे आप व्यवहारमें सफलीभूत होंगे।

विषयसूची

दृष्टान्त-प्रकाश

१—ईश्वर सर्वत्र है।

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः
तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।

—महर्षि पातञ्जलि

अविद्यादि क्लेश दायक कर्म जिसे स्पर्श नहीं कर सकते, वासना जिसे नहीं छू जाती, जो जन्म मरणादि क्लेशों को नहीं भोगता है वही विशिष्ट सर्व श्रेष्ठ पुरुष ईश्वर है। वह त्रिकाल में समग्र ब्रह्मांड में व्याप्त है और प्रत्येक प्राणी के देह में स्थिर है।

❀ ❀ ❀ ❀

द्वापर में जब ऋषि-कुलों का प्रचार था, प्रत्येक गृहस्थ अपने बालकों को शिक्षादीक्षा के लिये उन ऋषियों की शरण में छोड़ आता था, वहीं उन बालकों में ऋषियों के संसर्ग से देवत्व गुण उदय होते थे। उसी काल में नैमिषारण्य के पवित्र तपोभूमि में शङ्ख नाम के ब्रह्मर्षि रहते थे, उनके विद्या की धूम चारों ओर मच गई थी, सैकड़ों बालक उनसे वेद-विद्या पढ़ते और सैकड़ों योग-विद्या सीखते थे।

एक दिन योग-विद्या सीखने वाले छात्रों ने ऋषि से पूछा कि—ब्रह्म' क्या है ? महर्षि ने विस्तार पूर्वक अपने शिष्यों को समझाया, और उदाहरण देकर सब भाँति उनके हृदय में ही ब्रह्म

के अंश का ज्ञान कराया। इसी भाँति धीरे २ कुछ दिनों के अभ्या से उनके शिष्यगण योगिराज हो गये। दूसरों को योग का उ देश देने लग गये। बड़ी-बड़ी ज्ञान की बातें बघारने लगे, र्का समाज में उनकी सर्वत्र प्रशंसा होने लगी। शिष्यों का योग समझ शंख ऋषि अत्यन्त प्रसन्न हुये।

अचानक एक दिन जब सभी छात्र बैठे हुये अध्ययन क रहे थे शङ्ख ऋषि ने शिष्यों से कहा, पुत्रों! आज तुम सभ सहपाठी अपना-अपना काम बन्द कर एक-एक सरस्वती की प्रतिम बनाओ और उसकी यथाविधि पूजा करो, पश्चात् उसे जलाश में विसर्जन करो, परन्तु इस बात पर ध्यान रखना कि मूर्ति क विसर्जन उस स्थान पर हो जहाँ कोई देखने न पावे, जहाँ कोई हो। सबों ने ऋषि के आज्ञा का पालन किया, प्रेम पूर्वक प्रतिम बना कर सबों ने पूजन किया—और विसर्जन करने के लिये सभ उस भयानक जङ्गल में निकल पड़े। जिसने जहाँ एकान्त पाय वहीं जल में अपनी मूर्त्ति को डाल आया।

इसी प्रकार धीरे-धीरे उनके शिष्यों ने घूम-घूम कर उस जङ्गल में अपनी-अपनी प्रतिमाओं का विसर्जन किया। ज्यों-ज्यं लोग अपना कार्य्य समाप्त करते जाते थे त्यों-त्यों गुरु के पास आकर अपना समाचार सुना देते थे, धीरे-धीरे सभी शिष्य अ गये, केवल—एक बोपदेव नहीं आया।

साँझ होते-होते वह भी आया, वह उदास और चिंतित था, अपने हाथों में सरस्वती की प्रतिमा लिये हुये वह जङ्गल के इस ओर से उस छोर तक बीसों बार भटका परन्तु कहीं उसे निर्जन स्थान नहीं मिला जहाँ वह प्रतिमा का विसर्जन करता। अतः डरता-डरता महर्षि के पास जाकर खड़ा हो गया।

बोपदेव को अपने सामने इस प्रकार शान्त देख ऋषि ने पूछा,

बेटा ! तुम क्यों उदास हो, क्या बात है कहो। तुम तो मूर्त्ति भी लौटा लाये हो, क्या तुम्हें कोई वैसा स्थान नहीं मिला जहाँ मूर्ति का विसर्जन करते। गुरु की बातें सुन कर वोपदेव ने कहा— जी नहीं ! मुझे तो वैसा कोई स्थान ही नहीं मिला, हम जहाँ जाते थे वहीं, पंचभूत और ईश्वर मौजूद मिलता था, क्या करें हम तो दिन भर हैरान रहे। फिर भी कहीं साधन न लगा, अतः मूर्त्ति लौटा लाये हैं।

वोपदेव की बातें सुन शङ्कर ऋषि गद्गद् हो उठे और तुरत उसे अपने हृदय से लगा लिया। कुछ देर के बाद बोले बेटा ! निश्चय तुम्हीं ने ब्रह्म-विद्या को जाना है—तुम्हारे सभी सहपाठी इस विषय को नहीं जान सके—ठीक है-कोई ऐसा स्थान नहीं जहाँ ईश्वर न हो, 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' वह सर्वव्यापी है चर अचर जो कुछ तुम देखते हो सबों में वह रम रहा है।

फूल माँहि है बास काठ में अगिन छिपानी।
बिन खोदत नहिं मिलत आह ! धरती में पानी॥
दूध माहिं घी रहत छिपी मेंहदी में लाली।
ऐसा पूरण ब्रह्म कहूँ एक तिल ना खाली॥

बेटा वोपदेव ! तुमने उस ईश्वर को समझ लिया, ऐसा कह कर ऋषि ने उसे आशीर्वाद दिया, वोपदेव गुरु के चरणों में गिर पड़ा, ऋषि ने बड़े प्रेम से उसे उठाया।

भाइयों ! ईश्वर सर्वव्यापी है, संसार का तिल मात्र स्थान भी उससे खाली नहीं है, संसार की वही आत्मा है, वह अपने दिव्य नेत्रों से सांसारिक प्राणियों के कर्मों को सदैव देखता रहता है और समय-समय पर उचित दण्ड देता रहता है। अतः कल्याण के लिये सर्वव्यापी परमात्मा का चिंतन करो।

२—सबके दाता राम।

अजगर करे न चाकरी, पंक्षी करे न काम।
दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥
—मलूकदास जी महात्मा

किसी जंगल में एक साधु रहता था, वह पास के गावों में रोज घूम घूम कर कहा करता था कि सबके दाता राम! इसी प्रकार जो कुछ भिक्षा में पाता था उसी से अपना निर्वाह करता था। उसकी ख्याति चारो ओर छोटे-बड़े सबों में फैली थी।

एक दिन राजा ने साधू को बुला कर पूछा, महाराज! यह आप क्या कहते हैं? सबके दाता राम, का क्या अर्थ है, मुझे समझाइये। साधु ने कहा, राजन्! सारा संसार भगवान के आश्रय जीता है, वही सबको आहार देने वाला है, इसी से मैं कहा करता हूँ कि 'सबके दाता राम' और कोई बात नहीं है।

राजा अभिमानी था, उसने सोचा—यह साधु तो बड़ा धूर्त मालूम होता है, रोज मेरे ही राज्य में भीख माँग कर तो खाता है उल्टे ब्रह्मज्ञान छाँटता है कि सबके दाता राम, आज मैं अपने सारे राज्य में यह हुक्म निकाल देता हूँ कि कोई इस साधु को एक मुट्ठी भी अन्न न दे, फिर देखेंगे—कि कैसे दाता इनके राम हैं।

राजा की आज्ञा से साधु की भिक्षावृत्ति बन्द हो गई, अब वह संसार की आशा छोड़ एक मात्र ईश्वर पर भरोसा रख जंगल में जा बैठा, पहले तो वह तृष्णा में बँधा था, क्षुधा लगने पर उसे गांव के शरण में जाना पड़ता था, परन्तु अब वह निर्द्वन्द्व हो गया, उसने तृष्णा से अपने को हटा लिया, उसने संसार को ठोकर मार बड़े दाता के शरण में अपने को पहुँचा दिया—अब उसके लिये और क्या कठिन था। अब तो वह सचमुच सम्पूर्ण सिद्धियों का स्वामी हो गया।

साधु ईश्वर के प्रेम में तन्मय हो गया, एक दिन बीता, दो दिन बीते—अपने आसन से नहीं उठा, यद्यपि जंगल में कन्द-मूल मिल सकते थे, परन्तु उससे वह घृणा प्राप्त कर चुका था, तीसरे दिन दोपहर को एक सौदागरों का गिरोह उसी ओर से निकला, उनमें से कुछ लोग बाबा जी के पास जा बैठे, सत्संग होने पर सौदागरों का दल वहीं उतर पड़ा, सबों ने भोजन बनाया, पहले बाबा जी को खिला कर बाद में आप सबों ने आहार किया, रमणीक स्थान जान कर सौदागर अपने माल के साथ वहीं डेरा डाल दिये, नित्य सबेरे गांवों से निकल जाते और सायंकाल में माल बेच कर वहीं लौट आते थे, रात्रि में भोजन, भजन और समय के अनुसार सत्संग किया करते थे, कुछ दिनों के बाद जब सौदागरों का दल अपने घर की ओर चला उस समय उनके आग्रह से बाबा जी को कुछ सामान रख लेना पड़ा।

सौदागरों के द्वारा बाबा जी की बड़ी ख्याति हुई, चारों ओर से लोग दर्शन के लिये आने लगे, विश्वास के द्वारा बहुतों को मनोवांछित फल मिलने लगा, थोड़े ही दिनों में वह जनशून्य जंगल अत्यंत मंगलदायी हो गया। अब वहाँ पेट पालने के लिए भिक्षा की आवश्यकता ही नहीं थी। वहाँ स्वयं अतिथि आश्रम तथा अनाथालय खुल गये, सबके दाता राम ने एक बाबा जी को ही नहीं, सहस्रों दीनों को दान देना आरंभ किया।

कुछ दिनों के बाद राजा किसी रोग में फँस गया। वैद्यों ने बहुत कुछ औषध खिलायी, परन्तु रोग बढ़ता ही गया, एक दिन मंत्रियों ने कहा—महाराज ! अमुक जङ्गल में एक महात्मा रहते हैं, उनके शरण में पहुँचते ही ऐसे-ऐसे रोग भाग खड़े होते हैं—अतः हम लोग चाहते हैं कि आप भी महात्मा जी से लाभ

उठाइये। राजा ने मंत्रियों का कहना मान कर महात्मा के शरण में जाना ही उचित समझा।

राजा नित्य एक बार साधु के पास जाने लगा, विश्वास ने अपना खूब चमत्कार दिखाया, कुछ दिनों में वह निरोग हो गया, एक दिन जब वह प्रसन्न मन बैठा था साधु ने कहा, राजन्! सबके दाता राम हैं। साधु की बात सुन कर राजा को बीती बातें याद हो आईं, और तत्काल वह उनके चरणों में जा गिरा, साधु ने उसे प्रेमपूर्वक उठा कर कहा, बच्चा! देखो हमारा इतना बड़ा क्षेत्र ईश्वर के भरोसे ही चल रहा है, मैं ठीक कहता था कि सबके दाता राम! देखो, सृष्टि में जितने जीवधारी हैं—सबों को समय समय पर वही आहार देता है। क्या पक्षी क्या पशु सभी उसी के सहारे जीते हैं हम या तुम किसी का निर्वाह नहीं करते। सबका भरण—पोषण वही विश्वम्भर करता है।

—०—

३—ईश्वर न्यायी है।

पाप पुण्य जो जस करे, देवे फल दातार।
मनवाँ चेत अकर्म से, कर्म दण्ड कर्त्तार॥

एक राजा था, उसकी स्त्री बीमार पड़ी, राजा ने उसके लिये लाखों रुपया पानी की तरह बहा दिया, परन्तु वैद्यों ने उसके रोग को असाध्य बतला दिया। राजा क्या करता लाचार था, अन्त समय तक वह उद्योग करता रहा—परंतु अन्त में रानी एक अबोध कन्या को छोड़ चल बसी, राजा ने उस कन्या का उचित रूप से लालन-पालन किया।

कुछ दिन बीतने पर मंत्रियों के आग्रह से राजा को पुनर्विवाह करना पड़ा, नई रानी घर में आयी, वह जितना ऊपर से सुन्दर

थी उतना ही भीतर से कुटिल थी, कुछ ही दिन में वह सेनापति से मिल गई और व्यभिचार करने लगी। सौत की लड़की बराबर उसके आंखों में खटका करती थी, वह स्वतंत्र राज्य करना चाहती थी, एक दिन उसने सेनापति से मिल कर लड़की को मार डालने का विचार किया, क्योंकि इसी से उन्हें भय था। दूसरे ही दिन कुछ रात रहते सोई हुई राजकन्या को सेनापति जङ्गल में उठा ले गया, पहले तो उसे खूब पीटा, बाद उसके सभी गहने उतार कर उसे कुयें में ढकेल दिया। इतना करने पर भी सेनापति की साध पूरी नहीं हुई, वह एक पत्थर को इस अभिप्राय से उठाने लगा—कि कुयें में लड़की के मस्तक पर छोड़ दूँगा, जिससे वह इसी में मर जायगी।

ईश्वर बड़ा न्यायी है, वह सबों के कर्मों को देखता रहता है, जो लोग भय को छोड़ कर छिप-छिप कर कुकर्मों को करते हैं, प्रभु सबों को देखता रहता है, अन्त में यथोचित दण्ड देता है। पत्थर बड़ा था, जमीन में गड़ा था, सेनापति ने खूब जोर लगाया, पत्थर थोड़ा सा अपने स्थान से हिला, सेनापति पत्थर के नीचे हाथ डाल कर उठाने लगा, दैवात् उसी पत्थर के नीचे से एक भयंकर विषधर निकल कर सेनापति को डस लिया। उस सर्प के तीक्ष्ण विष के प्रभाव से वह चिल्ला भी नहीं सका वहीं ढेर हो गया। बात की बात में उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

कन्या कुयें में पड़ी, दुःख से दुखी हो रही थी, रह-रह कर भगवान्-भगवान् चिल्ला उठती फिर शान्त हो जाया करती थी, मारे भय के उसके प्राण सूख रहे थे, धीरे-धीरे दोपहर हो आया। अचानक राजा के सेना का एक सैनिक जिसे बिना अपराध सेनापति ने सेना से निकाल दिया था, भटकता भूलता उसी ओर आ निकला, कुयें के भीतर से भगवान्-भगवान् की आवाज सुन

वह उस ओर आया, और लड़की की दुर्दशा देख बड़ा दुःखी हुआ ।

सिपाही ने बड़े यत्न से कन्या को कुयें से बाहर निकाल कर पूछा, बेटी ! तुम कौन हो ? किसने तुम्हारी यह दुर्दशा की है, लड़की ने रोते-रोते अपनी सारी कथा कह सुनायी, सिपाही ने कहा, घबड़ाओ मत, हम तुम्हें राजधानी में पहुंचा देंगे । आओ हमारे साथ चलो, अब मत डरो, ईश्वर बड़ा न्यायी है, परमात्मा उस दुष्ट को अवश्य दण्ड देगा । लड़की चलने में असमर्थ थी । सिपाही ने अपने कंधे पर उसे उठा लिया, साँझ होते-होते दर्बार में जा पहुंचा ।

यहाँ कन्या के गायब होने से सारे शहर में शोक छाया था, एकाएक उसके आ जाने से सभी प्रसन्न हो उठे, कन्या ने सेनापति की सभी बातें पिता से सुनायी, राजा को बड़ा दुःख हुआ सबेरे ही वह सेना लेकर सेनापति को ढूँढ़ने के लिये उस जंगल वाले कुयें पर गया इधर-उधर खोजा परन्तु कहीं पता न लगा, एक झाड़ी के नीचे कुछ सिपाहियों को बहुत से आभूषण मिले । जो राजकन्या के थे जिसे सेनापति ने उतरवा लिया था । दोपहर को खोजते-खोजते सबों ने जंगल में देखा कि एक स्थान पर हजारों गिद्ध मड़रा रहे हैं । लोग वहीं घूमते-घूमते गये । सबों ने देखा कि सेनापति की अंग-भंग लाश पड़ी है, उसके वस्त्र नुचे हैं, बहुत से कागज पत्र इधर-उधर बिखरे हैं, राजा ने उन कागजों को उठा लिया, और अपने सैनिकों को लौटने का हुक्म दिया । रात में राजा ने उन पत्रों को पढ़ा, अब तो उसकी आँखें खुल गईं, अपनी स्त्री की कारवाई देख दंग हो गया, दूसरे ही दिन उसने रानी को यथोचित दण्ड दिया और उस सिपाही को सेनापति बनाया ।

---

४ ईश्वर की महिमा

होंहि गुंग वक्ता बड़ो, पंगुहिं चढ़े पहार।
अकथ कथा भगवान की, महिमा अगम अपार ॥
—स्वामी विश्वनाथ

एक जङ्गल में एक महात्मा रहा करते थे। वे दिन रात ईश्वर के गुणानुवाद में लगे रहते थे। आस-पास के गाँव के हजारों भक्त उनकी सेवा सुश्रूषा में लगे रहते थे, उनके पास किसी वस्तु की कमी नहीं रहती थी, वे सदैव प्रसन्न रहा करते थे। जो कोई दीन दुःखी जब कभी आता था बराबरा उसकी सहायता किया करते थे।

जङ्गल के पास ही में चोरों का अड्डा था, उन लोगों ने देखा कि बाबा जी के पास खूब मालटाल रहता है। एक दिन उन्हीं के यहाँ पहुँचना चाहिये। ऐसा सोच कर वे दूसरे ही दिन रात में दलबल के साथ बाबा जी के कुटी पर पहुँचे।

रात के समय सन्नाटा था, कुटी पर कोई नहीं था, बाबा जी भीतर से टट्टर बन्द किये विश्राम कर रहे थे, चोरों ने उत्पात मचाना शुरू किया, इतनी ही देर में दनादन एक तरफ से आँधी आई और पत्थर गिरने लगे, चोरों के दल में खलबली मच गई, चोरी करना तो दूर रहा, सभी भाग खड़े हुये।

कुछ दिन के बाद फिर चोरों ने संगठन किया और रात में बाबा जी के कुटी पर पहुंचे, सभी मिल कर दर्वाजा खोलने लगे, तब तक अचानक एक ओर से एक बड़ा भारी बाघ गर्जता हुआ आया और दनादन चोरों को पकड़-कपड़ कर चीरने लगा, सभी चोर भागने लगे। परन्तु वह शेर कब मानने वाला था। दस पाँच को तो वह जाते-जाते ही पटक मारा—

महीने दो महीने के बाद चोरों ने सोचा अरे भाइयों! साधु के पास बड़ा माल है, चलो एक बार फिर उद्योग करें। डट कर काम करने पर निश्चय है कि सफल हो जायेंगे। चलो इस बार अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर चलें। किसी बात का भय नहीं। सभी तैयार हो गये। और चोरी करने के लिये बाबा जी के कुटी पर पहुंचे।

सन्नाटा था ही, गर्मी का दिन था लोग ज्योंही सेंध लगाने लगे कि बड़े २ खड़ीस गोहुँवन और करैत निकल पड़े, और लगे फुफकारने। मारे डर के किसी की हिम्मत नहीं पड़ी कि आगे बढ़ें।

सभी बापरे बाप! चिल्लाते हुये भगे।

दूसरे दिन सभी चोर आकर बाबाजी के शरण में गिरे और अपना अपराध क्षमा कराने लगे। बाबा जी ने कहा, बच्चों! तुम लोग अपना यह निकृष्ट कर्म त्याग दो, ईश्वर की महिमा बड़ी विचित्र है, सबों को भोजन देता है, देखो तुम लोगों ने कितना कठोर कार्य्य किया, परंतु ईश्वर को वह मंजूर नहीं था अतः कुछ नहीं पा सके वह परमात्मा मूकों को वक्ता और पंगुओं को पहाड़ पर चढ़ने की शक्ति देता है। देखो हम केवल एक तुच्छ जीव रहे, न बल था न शक्ति, तुम लोगों के दल का एक-एक आदमी मुझे पकड़ कर बाँध सकता है, परन्तु ईश्वर की कृपा से तुम लोग मिल कर भी हमारा कुछ नहीं कर सके। अतः ईश्वर की महिमा को याद रखो और कभी भूल कर भी अपकर्म करने का साहस न करो।

चोरों ने बाबा जी की बातें मान ली और दूसरे ही दिन से भगवान के गुणानुवाद में अपने को लगा दिया।

---

५ भगवान की लीला

जड़ को जर चेतन करे, चेतन हूँ जर जाय।
अटपट गति भगवान की, काहू से न लखाय॥

द्वापर में कृष्णा नाम का एक नाई रहता था, वह भगवान वड़ा भारी भक्त था। खाते-पीते सोते-जागते, उठते-बैठते हर य वह भगवान के गुणानुवाद में लीन रहता था, साधु महा-ओं की जहाँ खवर पाता तुरन्त दौड़ जाता और जो कुछ उससे ता सेवा सुश्रूषा किया करता था।

कृष्णा राजा दुर्योधन का नौकर था। दोनों वक्त वह राजा चरण सेवा किया करता था, जो कुछ राजा से पाता था उसी अपने परिवार का पालन पोषण करता और साधु महात्माओं सेवा भी करता था। कभी-कभी तो ऐसा हो जाता था कि ाप भूखों रह जाता परन्तु अतिथि को खिलाता था।

कृष्णा की भक्ति चारों ओर फैल गई थी। जहाँ कोई साधु ाता सभी आदमी उन्हें कृष्णा के यहाँ भेज दिया करते थे। । जैसे स्थिति में आता था कृष्णा सबकी यथायोग्य सेवा ्या करता था।

एक दिन सायंकाल को दो साधु आये, लोगों ने कृष्णा । घर उन्हें वता दिया, वे घूमते घामते उसके राम मड़इया पर ुंचे, परन्तु कृष्णा घर पर मौजूद नहीं था, कृष्णा जब गाँव में ाया तब लोगो ने कहा कि कृष्णा! तुम्हारे यहाँ दो महात्मा ये हैं—

साधु की वातें सुन कर कृष्णा दौड़ा हुआ घर पर आया, ोनों मूर्त्तियों को देख वड़ा प्रसन्न हुआ। आज उसके घर में ीधा नहीं था, परन्तु उसने भय नहीं किया, अपना थोड़ा सा

सामान बनिये के यहाँ बन्धक रख कर साधुओं के लिये भोजन का सामान ले आया। उसी समय बड़े प्रेम से उन्हें भोजन बनवाया, और भोग लगाने के लिये आग्रह किया।

साधुओं को भोजन करते अधिक रात बीत गयी। उस रात वह राजा दुर्योधन के यहाँ चरण सेवा के समय नहीं पहुँच सका।

साधुओं को सोने के लिये आसन लगा, डरता-डरता वह राजमंदिर की ओर गया—

उधर भगवान—कृष्णा का रूप बना राजा दुर्योधन के चरण सेवा के समय पहुँच कर उसकी सेवा कर चुके थे। अधिक रात बीतते देख दुर्योधन ने कहा कृष्णा! अब जाओ, कल सवेरे आना।

जब कृष्णा राज भवन में पहुँचा तो राजा ने उसे पुनः आया देख कहा—कृष्णा! क्या बात है? तुम्हें किसी बात की जरूरत है, क्या चाहिये? अभी तो तुम गये हो। कृष्णा यह सुन कर बड़ा चकित हुआ, उसने कहा नहीं सरकार मैं तो अभी आ रहा हूँ। दुर्योधन ने कहा—नहीं कृष्णा तुम अभी तो मेरे पैर में तेल मल कर गये हो, क्या तुम्हारा मस्तिष्क खराब तो नहीं हो गया है?

कृष्णा बड़ा प्रसन्न हुआ, और कहने लगा, भगवान तुम्हारी लीला विचित्र है। भक्तों के लिये तुम क्या नहीं करते, हाय! आज मेरे लिये तुम्हें सेवक बनना पड़ा।

कृष्णा बड़े प्रेम से लौटा, परन्तु यहाँ आकर देखता क्या है कि दोनों महात्मा लापता हैं। उसने सारा गाँव छान डाला परन्तु कहीं पता न लगा। अब तो कृष्णा दृढ़ भक्त हो गया। और रात दिन ईश्वर की भक्ति में लीन रहने लगा।

६—मेरे भगवान !

जग करता भरता हरे ! हरता सकल कलेश ।
ज्ञान ध्यान दाता तुम्हीं, आदि देव विश्वेश ॥

एक राजा की दो रानियाँ थीं, बड़ी रानी साधारण सुन्दरी थी, परन्तु छोटी बड़ी खूबसूरत थी, राजा उसे बहुत मानता था, जो बात वह कहती–उसे फौरन पूरा करता था, थोड़े दिनों के बाद दोनों रानियों को १, १ पुत्र उत्पन्न हुआ।

बड़ी रानी का लड़का पहले हुआ था यह छोटी रानी के लड़के से बड़ा और होनहार था, ५, ७ वर्ष के होते ही उसमें बहुत ज्ञान की बात आप-से-आप आ गई। राजा उसके गुणों से प्रसन्न रहा करता था।

एक दिन राजा राजमहल में बड़े राजकुमार को गोद में लिये बैठा था—कि अचानक छोटे राजकुमार को लिये हुये छोटी रानी आ गई, वह अपने सौत के बेटे को राजा की गोद में बैठे देखकर बड़ी क्रोधित हुई, और दौड़कर बड़े राजकुमार को पकड़ कर गोद से उठा कर जमीन पर पटक दी। लड़का रोने लगा, राजा को भी इस बात का दुःख हुआ,, परन्तु क्या कर सकता था ? उसका कोई बस नहीं चलता था।

लड़के को रोते देख रानी ने कहा, बड़े गोद में बैठने चले हैं, जाओ भगवान से कहो कि मेरे कोख में जन्म दें तब तुम इस गोद पर बैठ सकते हो।

लड़का रोता हुआ अपनी माँ के पास गया और विमाता की सभी बातें सुना दिया, रानी दुखी हुई, और पुत्र से कहा घबड़ाओ मत, भगवान ही सबके आधार हैं, उन्होंने ही यह शरीर दिया है– और वे ही इसे पार करेंगें। लड़का भगवान को ढूँढ़ने के लिये

उद्विग्न हो उठा, और एक दिन चुपके जंगल का रास्ता लिया। राह में एक महात्मा मिले, उन्होंने इसे बहुत समझाया—परन्तु दृढ़ राजकुमार ने एक नहीं माना। वह मेरे भगवान कहता हुआ आगे बढ़ता गया। एक घोर जंगल में पहुँचकर घूम २ कर मेरे भगवान! मेरे भगवान! कहकर पुकारने लगा।

महीनों जल पीकर इसी भाँति पुकारता रहा। महीनों पत्ती खाकर भगवान की भक्ति में लगा रहा, महीनों केवल वायु पीकर तपस्या में लीन रहा।

बालक की कठिन तपस्या देख कर भगवान बड़े प्रसन्न हुये, उन्होंने उसे दर्शन दिया। और आशीर्वाद दिया कि जाओ तुम्हारी कीर्त्ति का विस्तार होगा। सारी पृथ्वी पर तुम्हारा राज्य रहेगा। मरने के उपरान्त तुम्हारी सद्गति होगी।

बालक वर प्राप्त कर अपने नगर में आया, सबों ने उसका आदर किया। वही अन्त में राज्याधिकारी हुआ। सदा उसने ईश्वर पर भरोसा किया। जो ईश्वर पर विश्वास करके कार्य्य करता है, जिसकी दृढ़ भक्ति रहती है,—निःसन्देह वह कठिन-से-कठिन कामों को कर सकता है। उस भयानक जङ्गल में बालक अकेला पड़ा रहा, बड़े-बड़े वाराह व्याघ्र आदि हिंसक पशु उसका कुछ नहीं कर सके। ठीक है, जिसकी भगवान पर दृढ़ भक्ति हो जाती है, उसे किसी का भय नहीं रहता।

७—भक्त और भगवान।

सत्य दया औ प्रेम से, जहँ देखो तहँ आप।
विना प्रेम रीझे नहीं, मिटे न मन को ताप॥

झाड़खंड के घने जङ्गल में बैजूनाम का एक अहीर रहता था,

वह नित्य घूम २-कर जङ्गल में गौओं को चराया करता था, उसी जङ्गल में भगवान शंकर की एक लिंग मूर्त्ति थी, वैजू रोज भोजन करने के पूर्व स्नान कर उसी लिंग पर एक लोटा पानी चढ़ाया करता था, और बहुत देर तक हाथ बाँधे प्रार्थना किया करता था।

वैजू यद्यपि पढ़ा लिखा नहीं था, परन्तु था बड़ा प्रेमी, ईश्वर के प्रेम में डूबा रहता था, कभी झूठ नहीं बोलता था और न किसी से व्यर्थ लड़ता ही झगड़ता था, वह दिन भर जङ्गल में भगवान का गुणानुवाद किया करता था।

धीरे-धीरे वर्षों बीत गये, वैजू अब बूढ़ा हो गया फिर भी उसने शंकर की भक्ति अपने हृदय से नहीं हटाई, बल्कि और प्रेम में तन्मय हो गया।

एक दिन दोपहर को वैजू गौओं को जङ्गल में हाँक कर भोजन करने के लिये आया, रोज की भाँति चौके पर जा बैठा, उसकी स्त्री थाली परोस कर ले आई, उसने थाली में हाथ लगाया, ज्योंही ग्रास उठा कर मुँह में डालना चाहा कि उसे याद हो गई कि ओहो! आज हमने भगवान को जल नहीं पिलाया, वे तो आज प्यासे और भूखे रह जायेंगे तुरत अपना भोजन छोड़ जङ्गल में दौड़ पड़ा।

फल फूल और एक लोटा जल लेकर उसने शंकर को चढ़ाया, भगवान उसका प्रेम देख प्रसन्न हो गए और प्रकट होकर बोले, क्या चाहता है? वर माँग! वैजू ने कहा—महाराज! मुझे और कुछ नहीं चाहिये, मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि आपके नाम के साथ हमारा भी उद्धार हो, भगवान ने कहा एवमस्तु! आज से मुझे लोग वैजनाथ कह कर पुकारेंगे।

सत्य और प्रेम का फल देखो। भगवान प्रेम से ही प्रसन्न होते हैं। जहाँ प्रेम है वहीं ईश्वर है।

८—ईश्वर सबका सहायक है।

मनवाँ दाता राम बिनु, कौन सहायक होय।
सो कृपालु तजि मूढ़ क्यों, जनम अकारथ खोय॥

एक राजा के चार लड़के थे। राजा ने चारों को विद्वान गुरु के पास रखकर शिक्षा दिलवाया, जब वे अच्छी प्रकार पढ़ लिये तब अपने घर लौटे। एक दिन राजा ने चारो पुत्रों को अपने पास बुला कर पहले बड़े लड़के से पूछा कि तुम्हारा पालन-पोषण कौन करता है? उसने उत्तर दिया कि आप! पुनः दूसरे लड़के से पूछा उसने भी कहा कि पिता जी, तीसरे से पूछा, उसने भी यही जवाब दिया, परन्तु चौथे लड़के ने कहा कि नहीं, मेरे पालक भगवान हैं, उन्हीं के द्वारा मैं राजा के यहाँ जन्मा हूँ। उन्होंने ही मेरा पालन किया है और अन्त में भी करेंगे।

छोटे लड़के की बात सुन कर राजा को बहुत क्रोध हो आया, उसने तुरन्त अपने नौकरों को आज्ञा दी कि इसे जङ्गल में छोड़ आओ, फिर हम देखेंगे कि इसका भगवान क्या काम करता है।

नौकरों ने राजा की आज्ञा का पालन किया, राजकुमार जो अभी महलों में आराम कर रहा था, कुछ ही देर में प्रारब्ध ने उसे जङ्गल में बिठा दिया। जो अभी सहस्रों दास-दासियों एवं प्रजाजनों पर शासन कर रहा था अभी कुछ ही देर में जन-शून्य स्थान पर बैठा है। देखो! प्रारब्ध का विचित्र खेल, क्षण में क्या हो गया?

कहाँ राजपाट और कहाँ यह बीहड़ वन !

अकेला राजकुमार उस भयानक जंगल में भटकने लगा, कोई साथी नहीं, रात हो गई, जङ्गली जीव घूमने लगे। हिंसक जन्तुओं के गंभीर नाद से सम्पूर्ण जङ्गल गूँज उठा। ऐसे समय में राजकुमार अकेला एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ ईश्वर को याद कर रहा था, एकाएक उसे थोड़ी दूर पर प्रकाश दिखलाई पड़ा और वह किसी आदमी का निवास स्थान समझ कर उसी ओर चल पड़ा।

वहाँ पहुँचने पर उसने एक महात्मा को बैठे देखा, उनके सामने धूनी जल रही थी, उनकी लम्बी-लम्बी जटायें पृथ्वी पर पड़ी थीं, उनके मुख मंडल से एक अपूर्व आभा निकल रही थी। राजपुत्र ने ऐसी तेजोमयी मूर्ति का कभी दर्शन नहीं किया था, वह श्रद्धापूर्वक आगे बढ़ कर मुनि के चरणोंमें गिर पड़ा, महात्मा ने उठा कर आशीर्वाद दिया और पूछा तुम कैसे इस भयानक जङ्गल में आये ? राजकुमार ने सारी घटना आद्योपान्त सुना दी, राजपुत्र की दीन दशा पर महात्मा को दया आई और उन्होंने उसे अपने आश्रम में रख लिया।

महात्मा की कुटिया एक ऊँचे डीह पर थी। वहाँ पर एक पुराना किला था उसकी दीवारें टूट गई थीं और उसका राजप्रासाद खंडहर हो गया था, परन्तु उसकी श्री अभी बाकी थी, राजकुमार दिन भर इन्हीं खँडहरों में घूमता रहता और रात में महात्मा से सत्संग किया करता था।

धीरे-धीरे गर्मी का दिन आया। आसपास के जलाशय सब सूखने लगे। महात्मा ने कहा बेटा ! ग्रीष्म में जल का बड़ा अभाव हो जायगा।

राजकुमार ने कहा, महाराज एक उपाय कर देने से हम लोगों को जल का अभाव नहीं रह जायगा। कोट के बीच में जो पुराना कुआँ है यदि उसकी सफाई हो जाय तो पानी का कष्ट न रहे। महात्मा ने राज-पुत्र की सम्मति मान ली और दूसरे ही दिन दोनों आदमी उसके साफ करने में लग गये।

कुआँ में पैठते ही राजपुत्र जब टटोलने लगा तो उसका हाथ एक

घड़ा पर पड़ा, उसने उसे उठाया, वह बड़ा भारी था और उसका मुँ
भी मुँदा था, राजकुमार के कहने पर साधु ने उसे रस्सी से खीं
लिया. ऊपर खोलने से देखा गया कि इसमें तो अशर्फियाँ भरी
इस प्रकार राजपुत्र ने उस दिन जितने बार कुँये में हाथ लगा
बराबर अशर्फियों के घड़े निकलते रहे।

सायंकाल को कुँये से बाहर आया, महात्मा ने कहा, बेटा! यह स
धन तुम्हारे ही भाग्य का है, इनका सदुपयोग करो। दूसरे ही दि
राजकुमार ने नगर से राज, मिस्त्री और बहुत से कुलियों को बुला
वहाँ पर एक नया नगर बसाना शुरू कर दिया। थोड़े दिनों में व
नगर बस गया, उसने एक दातव्य भवन भी बनवाया, जहाँ जो को
अभ्यागत आकर जो कुछ याचना करता था—मुँह मांगा उसे मिल
था। अब उन खंहडरों में स्वर्ण खंभ चमकने लगे और वह विरा
जंगल गुल्जार हो गया।

उधर का यह हाल हुआ कि राजा के शत्रुओं ने उसके राज्य प
चढ़ाई करदी, उसका सर्वस्व लूट लिया, किसी प्रकार राजा अपनी स
और तीनों बालकों के साथ भागता-भागता इसी जङ्गल में आया, २,
दिन से पेट भरने के लिये अन्न भी नहीं मिला था, सभी क्षुधा
पीड़ित होते उसी दातव्य भवन में पहुँचे और भोजन का सवाल किये

नौकरों ने अतिथियों को राजपुत्र के सामने किया। राजपुत्र
सबों से पूछा, आप लोग क्या चाहते हैं। यहाँ किसी बात की क
नहीं। राजा ने कहा, महाराज! हम लोग दुर्भाग्य वश यहाँ तक प्रा
बचाकर आ सके हैं। तीन दिन के भूखे हैं। क्षुधा शान्ति के लिये ए
पाव आँटा चाहिये।

राजपुत्र अपने अतिथियों को बड़े गौर से देख रहा था, वह म
में सोचता जाता था क्या मुझे भ्रम तो नहीं हो रहा है? मेरे पि
भाई और भालोर आ-महाराजा हैं, वे इस अवस्था में यहाँ क्यों आवें

ने ही में उसने माँ को भी देख लिया, और दौड़ कर उनके चरणों में र पड़ा, पिता माता अपने पुत्र को पाकर बड़े प्रसन्न हुये।

राजपुत्र ने सबों को बड़े सम्मान पूर्वक ठहराया। भोजन आदि निवृत्त करा कर सबों की यथाशक्ति सेवा की और मोते समय पने पिता एवं भ्राताओं से कहा-पूज्यवरों! मैं ईश्वर की कृपा से ही हाँ आया और उन्होंने ही मुझे इस पद पर बैठाया है, भगवान ो सब कुछ करता है। उन्होंने ही आपके अभिमान को दूर कर दिया, ाजपाट छुड़ाया, और वन-वन भटकाया। सबों ने राजपुत्र की ात मान ली और कहा, सत्य है। ईश्वर की महिमा बड़ी विचित्र है। ही सबका सच्चा सहायक है।

६—ईश्वर कर्म का फल देता है।

तज अकर्म मन मूढ़ तूं, लाग पंथ सद्धर्म।
कर्म दण्ड कर्त्तार दे, मनवाँ कर सत्कर्म॥

एक लड़का अपने बाप के यहाँ २०००) लेकर दिल्ली जाने के लिये पने स्टेशन पर आया, वहाँ से रात में १२ बजे ट्रेन छूटती थी, उसने क कुली को एक रुपया दिया और कहा कि मुझे एक किनारे जगह में ोड़ा विश्राम कर लूँ, गाड़ी में अभी बहुत देर है।

कुली ने उसे बिछावन ला दिया, लड़का चादर ओढ़कर लेट रहा, और इधर वह कुली स्टेशन मास्टर के पास पहुँचा और बोला हुजूर! एक लड़का बहुत रकम लिये अकेला टिकट घर के बगल में सो रहा है। स्टेशन मास्टर ने कहा, चलो देखें, दोनों आदमी गये और उस ड़के को सोये देखकर आपस में बातचीत करने लगे, स्टेशन मास्टर े कहा—इसे किसी प्रकार मार डालो कुली, हाँ हुजूर लड़का है, क्या करेगा और यहाँ पर कोई है भी नहीं—रुपया सब ले लेंगे, और इसकी ाश को तालाब में गाड़ देंगे। स्टेशन मास्टर ने कहा ठीक है

आओ हम तुमको एक छूरा दें। कुली स्टेशन मास्टर के साथ-साथ चला गया।

लड़का सभी बातें सुन रहा था, इन लोगों के जाते ही वह उठा और उसी स्थान के बगल में जहाँ पर घंटा टंगा था, पर चढ़ गया। अन्धकार होने के कारण लोग उसे नहीं देख सकते थे।

थोड़ी देर में स्टेशन मास्टर का लड़का, शराब के नशे में झूमता-झामता उसी ओर आ निकला, बिछावन और चादर पड़ा देख उसने सोचा अब कौन क्वार्टर में जाय, पिताजी देखेंगे तो नाराज होंगे, आओ इसी बिस्तरे पर सो जायँ, वह तुरत लेट गया, और चादर से मुँह ढाँक कर सो गया।

इधर कुली भी स्टेशन मास्टर से एक तेज छूरा लेकर समय की प्रतीक्षा करने लगा कि कब सन्नाटा हो और इसे मारें, धीरे धीरे ग्यारह बज गये, दिल्ली जाने वाले गाड़ी का लाइनक्लीयर हो गया।

कुली हाथ में छूरा लेकर लड़के की ओर निकला, यद्यपि उसका हृदय कठोर था परन्तु इस निर्दोष हत्या में उसके हाथ काँप रहे थे, तथा उसका हृदय धड़क रहा था उसे साहस नहीं कि वह हत्या में सफल हो। धीरे-धीरे ट्रेन और लाइन हो गया।

कुली उस लड़के के चारो तरफ घूम रहा था, उसने धीरे-धीरे अपने हृदय को बलवान बना लिया, एकाएक गाड़ी की गड़गड़ाहट ने उसे उत्तेजित कर दिया और उसने झटपट उस सोये लड़के के छाती में छूरा घुसा दिया, ठीक उसी समय गाड़ी हड़हड़ाती हुई प्लेटफार्म पर आ गई, और इसी बीच में वह बालक जो घंटे पर चढ़ा बैठा था जोर से चिल्ला उठा खून ! खून ! पुलिस दौड़ आई, कुली प्राण लेकर भागा, परन्तु पकड़ लिया गया, उसके हाथ में स्टेशन मास्टर का नाम खुदा हुआ छूरा बरामद हुआ।

मामला चला, कुली ने सच २ सभी बातें सुना दीं, उसे आजन्म

कारागार का दण्ड मिला, और स्टेशन मास्टर भी अपने फल को पहुँचा गया। लड़का सुखपूर्वक अपने पिता के यहाँ पहुँच गया।

१०—हाथ के जल का प्रभाव।

संसकार जस होत है, तस उपजै गुण ज्ञान।
मनवाँ याते ध्यान दे, अन्न आप धन धान॥

किसी समय एक राजा शिकार खेलने के लिये अपने शरीर रक्षकों और मंत्रियों के साथ एक भयानक जङ्गल में गया, वहां घूमते २ लोगों को दोपहर हो गयी, उसके सभी साथी शिकार की खोज में बढ़ गये, उस बीहड़ बनमें कोई किसी को न खोज सका।

गर्मी का दिन था। पृथ्वी तप रही थी। वायु भी अग्नि के समान जलती हुई बह रही थी। राजा उस जङ्गल में प्यास के मारे घबड़ा रहा था, अचानक उसका एक नौकर दिखाई पड़ा। वह भी प्यास से मर रहा था. परन्तु उसे देखते ही राजा को ढाढ़स हुआ और दोनों मिलकर जलाशय ढूँढने लगे।

थोड़ी दूर पर राजा को एक तालाब दिखाई पड़ा, उसने नौकर को कहा देखो! समने एक महात्मा की कुटी दिखलाई पड़ती है, हम वहीं चलते हैं, तुम वहां जाकर पानी पीओ और हमारे लिये एक लोटा जल लेकर, महात्मा के आश्रम परशीघ्र आओ।

नौकर को तालाब पर भेज कर राजा महात्मा की कुटी पर आया। वहां देखता क्या है कि महात्मा जी समाधि लगाये बैठे हैं,उनके सामने हवन कुंड से थोड़ा-थोड़ा सुगंधित धूम्र उठ रहा है, उनके बाँई ओर पूजा की सामग्रियां रक्खी हैं और दाहिने ओर एक कमंडल जल से भरा हुआ रक्खा है।

जल को देखते ही राजा की प्यास भड़क उठी, वह अपनी पिपासाग्नि नहीं रोक सका, तुरत कमण्डल उठा लिया और उसका जल पी

गया, थोड़ी देर बाद उसका नौकर जल भर ले आया, जिससे राजा साधू का कमण्डल भर दिया।

प्यास शांत हो जाने पर राजा और नौकर वहीं उस आश्रम के ए कोने में विश्राम करने लगे।

थोड़ी देरमें महात्मा का ध्यान समाप्त हुआ, वह धीरे से उठे औ कमण्डल का जल पी लिया। इधर राजा भी उठा और महात्मा व दण्डवत कर बैठ गया।

वहाँ बैठे बैठे राजा के मन में वैराग्य का भाव उठने लगा,—औ उधर महात्मा के हृदय में राजभोग की कामना जागृत होने लगी। पर स्पर दोनों ने अपने २ मन का भाव दूसरे से कह सुनाया, राजा ने कम एडल के जल पीने की कथा भी महात्मा को सुना दी।

सोचते सोचते महात्मा ने राजा से कहा—सुनो! तुमने हमारे कम ण्डल का जल पीया है। मेरे जल में हमारे तपस्या तथा सत्वगु का संस्कार सम्मिलित था, इसलिये तुम्हारी भावना धर्म के मार्ग प बढ़ी, और तुम्हारे हाथ के जल में तुम्हारा राजसी संस्कार भरा था इसलिये मेरा मन भोगों की ओर दौड़ गया दोनों बहुत देर त इसी प्रकार सत्संग करते रहे अन्त में यही सिद्ध हुआ।

भजन इत्यादि उत्तम सांस्कारिक विषयों को जाने दो, केवल जल क इतना बड़ा प्रभाव है कि जो जैसे आदमी के हाथ का जल पीयेग उसकी बुद्धि भी वैसी ही हो जायगी। अतः उत्तम आदमी के हाथ का जलादि ग्रहण करो! भूल कर भी दुराचारी खल और पाखंडियों के हाथ का अन्न-जल नहीं सेवन करो-अन्यथा तुम भी दुराचारी और दुष्ट हो जाओगे।

११—एका[illegible]

क्या नहिं एका कर सके, दुर्लभ का जग माहिं ?
अष्ट सिद्धि नव रिद्धि हूँ, कर बाँधे तहँ जाहिं ॥

(१)

किसी समय रूपनगर में रतनसेन नाम का एक बूढ़ा धनी सौदागर रहता था, उसके चार लड़के थे, किसीसे आपस में नहीं बनती थी। परस्पर एक दूसरे से लड़ा झगड़ा करते थे। सभी आपस में एक दूसरेसे जलते रहते थे। अपने लड़कों की यह दशा देख रतनसेन बराबर दुखी रहा करता था, धीरे २ शोक और चिंता से वह रोगी होकर खाट पर गिर गया। रोज यही सोचा करता था कि कैसे हमारे चारो बेटे सुधरें। सोचते २ एक दिन उसने एक युक्ति निकाली।

दूसरे ही दिन रतनसेन ने अपने लड़कों को बुलाकर कहा, जाओ, एक २ बोझ लकड़ी ले आओ। पिता की बात मान कर चारो बेटे एक २ बोझ लकड़ी ले आये। सबों के लकड़ी का बोझ देख सौदागर ने कहा, तुम लोग अपने २ बोझ को तोड़ डालो. सबों ने खूब जोर लगाया, लेकिन यह ठोस बोझ हिला तक नहीं, सभी लड़कों को हताश देख सौदागर ने कहा। अच्छा! अब बोझ के चार हिस्से करके तोड़ो। लड़कों ने उसी प्रकार बोझ को ४ भागों में बाँट कर तोड़ना चाहा, परन्तु फिर भी असफल हुये, चारो लड़के अपने पिता से बोले, यह तो टूटता ही नहीं, क्या करें?

सौदागर ने कहा, अब तुम लोग अपने २ बोझ को खोल दो, और एक २ लकड़ी को तोड़ो, अब क्या था ? सबों ने अपने २ बोझ के लकड़ियों को बिखेर दिया, और एक २ कर सभी को तोड़ डाले, पश्चात् प्रसन्नता पूर्वक पितासे बोले, पिताजी ! सभी लकड़ियाँ टूट गईं।

बूढ़ा सौदागर अपने बेटों को पास में बिठा कर बोला, पुत्रों ! क्या तुम लोग इन लकड़ियों से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हो ?

देखो ! जब ये सभी आपस में मिलकर एक बोझ रूप में थीं तब तुम लोग अपनी सारी शक्ति लगाकर भी इन्हें नहीं तोड़ सके परन्तु जब ये अलग २ हो गईं तब तुम लोगों ने उसे सरलता पूर्वक तोड़ लिया, इसी भाँति लकड़ियों के समान यदि तुम चारों एक में मिल कर रहोगे, तो तुम्हारे शत्रु कुछ नहीं कर सकेंगे। यदि बिखरी लकड़ियों के समान अलग अलग रहोगे तो एक छोटा से छोटा शत्रु भी तुम लोगों का विना नाश किये न छोड़ेगा। इसलिये तुम लोगों को क्या करना चाहिये ? क्या बिखरी लकड़ियों के समान रहना चाहते हो ! या संगठित बोझ वाली लकड़ियों के समान !

लड़कों के ध्यान में यह बात आ गई, उन लोगों ने कहा—हाँ ! पिताजी आप ठीक कहते हैं। बिखरी लकड़ियों के समान रहने में बड़ा नुक्सान है, सचमुच इस प्रकार तो हम लोग नष्ट हो जायेंगे। अब कभी वैर विरोध न करेंगे। आपस में मिल कर रहेंगे। पिता ने पुत्रों पर अपने उपदेश का प्रभाव पड़ते देख कहा—अब कभी आपस में ईर्ष्या-द्वेष न करना, हम अब वृद्ध हो चुके हैं, जीवन बहुत थोड़ा है, कब मरें कौन ठिकाना ? हमारे बाद कभी आपस में द्वेष कर के अपना नाश नहीं करना।

कुछ दिनों के बाद रतनसेन मर गया, उसके पुत्रों ने पिता के उपदेश को गाँठ बाँध लिया, यावत् जीवन भाइयों में किसी प्रकार का विग्रह नहीं हुआ, सभी शान्तिमय जीवन व्यतीत किये। उनके सैकड़ों शत्रु बिला गये, एकता के आगे कुछ नहीं कर सके।

(२)

राजा मलयकेतु के मरने पर उसके राज्य के लिये सभी राजकुमार आपस में झगड़ने लगे. शत्रुओं ने अच्छा मौका देखा, सभी अपनी २ सेना लेकर चढ़ आये, और राज्य में उपद्रव मचाने लगे। परन्तु इतना होने पर भी राजकुमारों में आपस की लड़ाई बन्द न हुई,

यह देख मंत्री बड़ा दुःखी हुआ, [illegible]
फूट में सर्वनाश हो जाय ।

दिन २ शत्रुओं का बल बढ़ रहा था, दुश्मन राज्य को दवाते आते थे, अधिकांश सेना राजकुमारों के नाशकारी फंदे में फँसी थी। वची बचाई जो शत्रुओं से लड़ने जाती थी वह काम आती थी या भाग कर अपनी जान बचाती थी। शत्रुओं की बड़ी २ सेनाओं के सामने यह छोटी सेना कब तक ठहर सकती थी। मंत्री ने देश की रक्षा के लिये बहुत प्रयत्न किया, परन्तु शत्रुओं को नहीं हटा सका। एक दिन उसने सोचा, यदि ये राजकुमार आपस में मिलकर सारी सेना संगठित कर शत्रुओं से लड़ें तो निश्चय विजय प्राप्त हो। सातो राजकुमारों की सेनायें इतने क्या? इनसे दशगुणी सेना को भी हरा सकती हैं।

ऐसा सोच उसने सभी राजकुमारों को अपने पास बुलाकर कहा, राजपुत्रों! हम आपके पिता के अभिन्न हृदयी मित्र थे, मित्र के स्वर्गवासी हो जाने से हम को अत्यधिक दुःख हो रहा है, परन्तु उससे भी अधिक दुःख यह हो रहा है कि आप लोग उस राज्य के लिये जिसे हम और हमारे मित्र ने मिलकर वाहुबल से स्थापित किया है—लड़ रहे हैं। हम और हमारे मित्र दोनों एक दिल होकर इतना बड़ा राज्य स्थापित कर लिये। दो आत्माओं की एकता ने करोड़ों मनुष्यों को वशीभूत कर लिया, परन्तु राजकुमारों! मेरे मित्र के हृदय के टुकड़ों! अब आप लोग सोचिये कि सात आत्माओं की भिन्नता ने कितने शत्रुओं को उत्पन्न कर दिया। आप लोग यदि सातों अपनी आत्मा को एक कर दें तो यह राज्य जिसके लिये लड़ रहे हैं इससे सहस्रों गुणा बड़ा राज्य स्थापित कर सकते हैं, यह हमारे मित्र की कृति है, इसे आपस में लड़कर नष्ट न करें, बल्कि एकता के द्वारा ऐसे २ राज्य और स्थापित करें।

मंत्री की वातें सुन कर राजपुत्रों को ज्ञान हो गया, वे तत्काल वैर

विरोध भूल कर आपस में मिल गये, और अपनी २ सेना ठीक कर शत्रुओं पर जा चढ़े, फिर क्या था? बात की बात में सबों ने शत्रुओं को मार भगाया, इतना ही नहीं, सात बड़े २ राज्य स्थापित कर लिये, यह एकता का ही बल था।

(३)

राजा चन्द्रपाल अपने लड़कों को अयोग्य देख बड़े चिंतित हुये. उन्होंने मंत्रियों को बुला कर कहा भाइयों! हमने आप लोगों के द्वारा ही इतने बड़े साम्राज्य पर शासन किया है, जान पड़ता है कि मेरे मरने के बाद यह रघु का चक्रवर्ती राज्य तहस नहस हो जायगा, अतः इसे बचाने का उपाय ढूँढ़िये। हमारे बत्तीसों पुत्र बत्तीस राह के हैं, किसी में बनती नहीं, सभी अपनी अपनी खिचड़ी में मस्त हैं, मेरे मरते ही राज्य की दुर्गति हो जायगी। मंत्रियों ने राजा से कहा, महाराज! राजकुमारों को किसी ऋषिके शरण में भेजिये, वहीं वे सुधारे जा सकते हैं और तभी आप की चिंता भी मिट सकती है।

राजा ने राजपुत्रों को कण्व ऋषि के पाठशाला पर भेजा, बत्तीसों राजकुमार बड़े दुर्गुणी थे, सबों से लड़ना झगड़ना, मार पीट, गाली गुफ्ता ही किया करते थे। धीरे २ कुछ ही दिनों में इन सबों ने सारी चटशाल ही खराब कर दी। यह देख कण्व ऋषि अत्यन्त चिंतित हुये। उन्होंने सोचा ये तो बड़े विचित्र बालक हैं, एकता और प्रेम को तो इन लोगों ने यहाँ से भगा ही दिया। कितना शांत वायुमंडल था, परन्तु इन बत्तीस मूर्त्तियों ने एकदम अशांत बना दिया।

एक दिन सभी कुमारों को ऋषि ने बुला कर कहा—बच्चों! तुम लोग आपस में क्यों लड़ते हो? आदमी को मिलकर रहना चाहिये। यदि इसी प्रकार लड़ते-झगड़ते रहोगे तो जानते हो कैसी गति होगी? लड़कों ने कहा नहीं, हमलोग नहीं जानते। ऋषि ने कहा अच्छा, आज हम तुम लोगों को एक जगह ले चलेंगे, वहाँ तुम्हें स्वयं

दिखाई पड़ेगा कि मिलकर रहने से क्या होता है? और अलग २ वैर करके रहने का क्या नतीजा निकलता है?

दोपहर में ऋषि तीनों राजपुत्रों को लिये राजा के हाथीखाने में पहुँचे, वहाँ एक बड़ा भारी हस्था सूत के मोटे रस्से में बँधा था। महात्मा ने हाथीवान से कहा कि जिस रस्से में हाथी बँधा है वह मुझे दे दो। हाथीवान ने तुरत दूसरे रस्से में हाथी को बाँध कर वह रस्सा महात्मा को दे दिया। महात्मा ने रस्सा लेकर लड़कों से कहा, राजपुत्रों! देखो यह कितना मजबूत रस्सा है, क्या तुमलोग इसे तोड़ सकते हो? लड़कों ने कहा—नहीं, यह तो बड़ा मजबूत है। महात्मा ने कहा, अच्छा इसे खोल दो, लड़कों ने खोल दिया। अब वह रस्सा तीन भागों में बट गया, साधू ने कहा तोडो, पर, कोई नहीं तोड़ सका। फिर महात्मा ने कहा इसे और खोलो, लड़कों ने खोला, अब वह नौ हिस्सों में बँट गया, परन्तु फिर भी कोई तोड़ न सका—तब अन्त में ऋषि ने कहा, इसे सूत २ अलग २ करके तोड़ो, तब क्या था? लगे सब दनादन तोड़ने, थोड़ी ही देर में रस्सा टुकड़े २ हो गया।

ऋषि ने कहा, राजकुमारों! देखो! यह सूत कितना मुलायम और कमजोर है, परन्तु एक में एक मिलकर कितना मजबूत हो जाता है, जिसे हाथी भी नहीं तोड़ सकता, देखा न! इसी भाँति यदि तुम लोग आपस में मिल कर रस्से के समान मजबूत बन जाओगे, तो काल के समान शत्रु को भी बाँध लोगे। और यदि इन सूतोंके समान पृथक् २ रहोगे तो इन्हीं के समान छिन्नभिन्न होना पड़ेगा। राजपुत्रों को महर्षिकश्थ का उपदेश ध्यान में आ गया, वे उस दिन से आपस में कभी लड़ाई झगड़ा नहीं किये।

सच है, एकता से ही सभी कार्य्य सिद्ध होते हैं। एकता से बढ़कर संसार में कुछ नहीं। एकता ही उन्नति का कारण है, जहाँ एकता है वहाँ जय और विजय है, सुख और शांति है तथा ऋद्धि और सिद्धि है

१

प्रियवर कठिन कोई न ऐसा कार्य्य है संसार में।
जिसको न अपने एकता से कर सकें अधिकार में॥
जो मर रही हो जाति उसकी एकता जीवन जड़ी।
है टूट जाती एकता से दासता की हथकड़ी॥

२

देखो बहुत से सूत को बट कर बनाते हैं रसा।
तरू के तने से बाँध कर गजराज है जाता कसा॥
प्रियवर! भले ही सोचलो यह एकता की शक्ति है।
वह है मृतक संसार जिसकी न इसमें भक्ति है॥

१२—संगठन की महिमा

सकल पदारथ संघ ते, उपजहिं बढ़हिं सुहाहिं।
संघ टूटे सुख भंग हो, दुसह दुःख दे जाँहिं॥

किसी जङ्गल में कबूतरों का एक बहुत बड़ा दल रहा करता था। उन के राजा का नाम सुग्रीव था जङ्गल के फल फूलों से ये लोग भली-भाँति अपना जीवन निर्वाह कर लेते थे, स्वच्छन्दता पूर्वक सभी सवेरे तड़के ही अपने २ घोसलों से बाहर निकल जावे और साँझ होते २ सभी इकट्ठे हो जाया करते थे।

एक दिन बहुत सवेरे ही एक व्याध ने थोड़े चावलों को छींट कर जाल लगा दिया और आप चुपके एक झाड़ी में जा बैठा। उसी समय कबूतरों का दल भी आ पहुँचा और चावल देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ, सभी उसे खाने के विचार से उतरे और उस स्थान पर जा बैठे। बड़े प्रेम से सभी चावल के दानों को चुनचुन कर खाने लगे।

व्याध ने कबूतरों को आया देख जाल की रस्सी खींच ली, जिस से वे सभी जाल में फँस गये, अपने को जाल में फँसे देख कबूतरों को

;:ख हुआ, वे सभी मन ही मन पश्चात्ताप करने लगे, परन्तु अब प्रकट करने से क्या होता था ?

कबूतरों ने एक मत हो कर निश्चय किया कि अब तो मरना ही है, (मरने के पूर्व उद्योग से नहीं चूकना चाहिये। सभी मिलकर एक कोशिश करें। सुग्रीव ने कहा—संगठन से क्या नहीं होता, । सभी मिल कर इस जाल को ही उठा ले चलें, यहाँ से एक योजन हमारा एक मित्र जो चूहों का राजा है, हजार द्वार का घर बना रहता है, वहाँ पहुँचने पर हम इस जालसे मुक्त हो जायेंगे।

सबों ने अपने राजा की बात मान ली और बात की बात में उस ाल को ले उड़े, बहेलिया यह देख दंग रह गया, जङ्गल में कोसों वह ड़ता हुआ कबूतरों का पीछा करता रहा। परन्तु नहीं पा सका, अन्त (निराश हो लौट आया।

कबूतरों का दल जाल लिये हुये उस जङ्गल में पहुँचा जहाँ ुग्रीव का मित्र चूहों का राजा रहता था, उसके द्वार पर पहुँच कर सुग्रीव ने पुकारा।

अपने मित्र का कण्ठ शब्द पहचान कर वह बाहर निकला और सुग्रीव को जालमें फँसा देख दुखी हुआ, तत्काल अपने तीक्ष्ण दाँतों से जाल को खण्ड २ काट दिया। जाल के कटते ही कबूतरों का दल मुक्त हो गया।

सत्य है ! संगठन क्या नहीं करता, यदि कबूतर संगठन नहीं करते तो सभी मारे जाते, व्याध के जाल से मुक्त होना उन के लिये कठिन ही नहीं असम्भव था।

जो संगठन के हैं व्रती पर्वत गिरा सकते वही।
दश पाँच क्या, इस शक्ति से सचमुच डरा करती मही।
बहु शत्रुओं के गर्व घट को संगठन ही फोड़ता।
दुर्गुण-कलह औ द्वेष के दुर्दम्य गढ़ को तोड़ता॥

१३—सहयोग से सिद्धि ।

सिद्ध होहिं जब एक हो, प्रेम योग युग जांच ।
विनशहिं वैर विरोध ते, मनवां कारज सांच ॥

दक्षिण में दण्डक वन के पास रायगढ़ नाम का एक नगर था, एक समय वहाँ पर कहीं से घूमता-घामता एक राक्षस आ गया, और रोज नगर वालों को जो जंगल में जाते थे पकड़ २ कर खाने लगा, इस प्रकार वह हजारों आदमियों को मार कर खा गया ।

रायगढ़ में बारह गांव थे, सभी पास ही पास सटे थे, राक्षस कभी इस गांव के आदमी को खा लेता और कभी उस गांव के, वह दिन भर जंगल में घूमता रहता था, जहां जो मिलता था उसे चट कर जाता था ।

वहाँ के निवासी बड़े मूर्ख थे, एक गाँव के आदमी को मरते देख दूसरे गाँव वाले बड़े प्रसन्न होते थे । इस प्रकार वर्षों वह राक्षस सबों को हैरान करता रहा, अन्त में तंग होकर एक बुद्धिमान मनुष्य ने विचार किया कि एक राक्षस हम हजारों लाखों आदमियों को तंग कर रहा है, क्या कारण है ? क्या हम लोग सभी मिलकर उसे नहीं मार सकते ?

ऐसा विचार कर उसने पहले अपने गाँव के मुखिया से कहा, उसने इसकी सम्मति मान ली और दूसरे दिन दूसरे-दूसरे गावों के मुखियों को बुला भेजा, उन सबों के आ जाने पर राक्षस से लड़ने का प्रस्ताव रखा गया । बारहों गाँव मिलकर एक सेना बनायें और सभी प्रकार के हथियार लेकर जङ्गल में घुस जायँ, अकेला राक्षस हजारों का क्या कर सकेगा ।

इस प्रकार सबों ने आपस में सहयोग कर एक सेना तैयार की उसे सब प्रकार से सुसज्जित कर एक दिन निश्चय किया कि कल युद्ध होगा । दूसरे दिन ठीक दोपहर को सेना जङ्गल में जा पहुँची । खोजते २ एक पेड़ के नीचे मनुष्य का मांस खाते हुये राक्षस दिखाई पड़ा । बस,

अब क्या था, सेना उस पर एक दम टूट पड़ी, और अस्त्र शस्त्र चलाने लगी, राक्षस एक दम हक्का बक्का हो गया। घंटों तक वह सिपाहियों के प्रहारों को रोकता रहा, परन्तु दो हाथ हजारों हाथ का कहाँ तक सामना कर सकता था? राक्षस मार खाते २ बेदम हो गया, और किसी प्रकार अपनी जान बचा कर एक तरफ भागा। परन्तु सिपाही लोग उसे कब छोड़ने वाले थे, मीलों खदेड़ते गये, वह ऐसा भागा कि फिर कभी इधर ताकने का विचार नहीं किया।

महात्माओं का वचन सत्य है, सहयोग से ही सब सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, यदि गाँववाले सहयोग न करते तो राक्षस धीरे-धीरे सब को मार कर खा जाता। इसलिये—

ऐ भाइयों! सहयोग को ही सिद्धि भारी जान लो।
इससे न बढ़कर शक्ति कोई बात मेरी मान लो॥
सहयोग बलको प्राप्त कर संसार में विजयी बनो।
आदर्श हो उत्साह से तुम आज ही यह प्रण ठनो॥
दुःख रह नहीं सकते कभी सहयोग के शुभ नाम से।
सुख है न क्या मिलता अहो, इस शान्तिदायी धाम से॥
जो मनुज हो इस तत्त्व को कुछ भी समझता है नहीं।
वह ठोकरें खाता जगत में, हीन होकर सब कहीं॥

१४—वैर विरोध का दुष्परिणाम

तजहु द्वेष मानहु कहा मनवाँ वैर विरोध।
प्रेम क्षमा ते अरिहिं-बल, हरहु दुम-क्रोध॥

कांचनपुरी में एक महाजन रहता था, उसके चार लड़के थे, महाजन के मरने पर चारों लड़कों ने बाप की सम्पत्ति आपस में बाँट ली, केवल पाही का एक बाग रह गया। जिस पर तीन पुश्त से एक ठाकुर जबरदस्ती दखल जमाये थे।

भाइयों में पटती नहीं थी। फिर भी बाग का मुनाफा ठाकुर खा रहा था, यह देख भी नहीं सकते थे। चारो ने विचारा चलो चलें बाग पर दखल करें। चारों भाई एक दिन उठे, और बाग की ओर चले। बाग वहाँ से १२ कोश की दूरी पर था। ८ कोश जाते २ साँझ हो गई। एक तालाब पर सभी रुक गये, और भोजन बनाने का इन्तजाम करने लगे।

बड़ा भाई बाजार से सौदा लाने के लिये गया, मँझला भाई लकड़ी-कंडी के इन्तजाम में निकला, सँझला भाई चौका चूल्हा ठीक करने लगा और छोटा भाई पानी के लिये रह गया। थोड़ी देर में सभी प्रबन्ध हो गया और लोग भोजन भी बना चुके। अन्त में लोगों को मालूम हुआ कि घी तो अभी आया ही नहीं। अब विचार हुआ कि घी के लिये कौन जाय? कोई नहीं जाना चाहता था, और बिना घी आये भोजन भी नहीं हो सकता था। सबों ने सलाह किया कि चारो आदमी भोजन की हंडी घेर कर चुपचाप मौन होकर बैठें। जो पहले बोले वही घी लाने जाय।

चारो आदमी हंडी घेर कर बैठ गये। कौन बोलता है सभी चौप मुँह फुलाये, गूंगों की तरह बैठे रहे। इतने में दो कुत्ते आ पहुँचे। कुत्ते बड़े ढीठ थे, धीरे २ नजदीक आते २ एक दम भीतर ही पिल पड़े और लगे हंडी का माल उड़ाने। चारों एक दूसरे को अँगुली और मुँह से संकेत कर कुत्ते को दिखाते रहे, परन्तु कोई भी कुत्ते को डाँटता नहीं रहा। वहाँ तो यह बड़ा सवाल रहा कि जो बोलेगा उसे घी लाना पड़ेगा। धीरे २ कुत्ता सभी सफाचट्ट कर चलता बना और चारों मूर्ख उसी प्रकार तोबड़ा लटकाये बैठे रहे।

इतने में आधीरात हुई और सिपाही पहरा देता हुआ उसी ओर आ निकला, तालाब पर चार आदमियों को देख उसे सन्देह हुआ कि ये लोग कहीं चोर तो नहीं है? पास आकर पूछा कौन है? अब तो चारो एक दूसरे को बोलने का संकेत करने लगे। इतने में

सिपाही ने एक को एक लात जमा दी, जिससे वह चिल्ला उठा, बस तीनों आदमी उछल पड़े और कहने लगे, बस ! बस ! तुम्हीं को घी लाना होगा। सिपाही ने पूछा कैसा घी ? चारों ने अपनी कहानी कह सुनाई। सिपाही ने कहा-तुम लोग लौट जाओ अपने २ घर। तुम बाग दखल नहीं करसकते। लेकिन चारों ने सिपाही की बात नहीं मानी। दूसरे दिन सवेरे ही बाग की ओर चल दिये और एक पहर दिन चढ़ते २ बाग में जा पहुँचे।

बाग का ठाकुर वहाँ मौजूद था। वह चारों को देख पहले तो घबड़ाया परन्तु फिर यह सोच कर दृढ़ हो रहा कि इन चारों में मेल नहीं है, हम अपना काम निकाल लेंगे। उसने सबों का खूब सत्कार किया। पहले उसने बड़े भाई को बुलाकर कहा—सेठ जी ! देखिये यह बाग आपका है। आप हमारे महाजन के बड़े लड़के हैं। बड़ा लड़का ही उत्तराधिकारी होता है। मैं यह बाग आपको ही दूंगा, लेकिन बटवारा करना नहीं होगा। ठाकुर की बात सुन कर बड़ा लड़का खूब प्रसन्न हो बोला—ठीक है। इन तीनों को मार भगाओ।

ठाकुर ने इसी प्रकार चारों भाइयों को बुला बुला कर समझाया। बस अब क्या था। चारों ही आपस में लड़ने लगे। ठाकुर यह तमाशा बड़े गौर से देखने लगा, कभी वह एक को मदद दे देता कि दूसरा हार जाता था, इसी प्रकार तीन भाई मारे गये, रहा बड़ा लड़का अब अकेला, वह क्या करता। ठाकुर ने उसे पटक कर खूब पीटा। इतना मारा कि वह मर ही गया। चारों आपस में वैर विरोध का फल पा गये। बाग तो दूर रहा जान से ही हाथ धो बैठे। सत्य है—वैर विरोध मनुष्यों का नाश कर देता है। इसी वैर विरोध ने भारत का नाश कर दिया अतः—

सब वैर और विरोध का बल-बोध से वारण करो।
है भिन्नता में खिन्नता ही एकता धारण करो॥
है एकता ही मुक्ति ईश्वर-जीव के सम्बन्ध में।

वर्णैक्यता ही अर्थ देती इस निकृष्ट निबन्ध में ॥
है कार्य्य ऐसा कौन सा साधे न जिसको एकता।
देती नहीं अद्भुत अलौकिक शक्ति किसको एकता ॥
दो एक एकादश हुये, किसने नहीं देखे सुने।
हाँ, शून्य के भी योग से हैं अंक होते दश गुने ॥

१५—द्वेष का बुरा फल

(१)

का फल वैर विरोध ते, पायो हठ करि लोग।
जरी लंक भारत भयो, पराधीन दुरयोग ॥

राजा अनंग पाल के दो नाती थे, एक का नाम पृथ्वीराज और दूसरे का जयचंद था। दोनों में बराबर वैर-विरोध रहा करता था। आपस में कई बार दोनों लड़े, परन्तु मन का मैल नहीं गया। उत्तरोत्तर बढ़ता ही रहा।

पृथ्वीराज बड़ा प्रतापी था, उसके ऐश्वर्य्य को देख जयचंद दिन रात जला करता था। पृथ्वीराज की बढ़ती देख वह कब स्थिर रह सकता था? उसने तुरत उसके शत्रु शहाबुद्दीन को लिख भेजा कि आओ हम दोनों मिल कर पृथ्वीराज पर चढ़ाई करें। शहाबुद्दीन भी मौका देख ही रहा था, तुरत एक भारी सेना लेकर पृथ्वीराज के राज्य पर चढ़ आया। बड़ी भारी लड़ाई हुई। जयचंद ने शहाबुद्दीन का साथ दिया। फिर क्या था? पृथ्वीराज हार गया और शत्रुओं के द्वारा पकड़ा गया। जयचन्द बड़ा पसन्न हुआ।

दूसरे वर्ष शहाबुद्दीन फिर आया। इस बार उसने अपने मित्र पर ही हाथ साफ किया। जयचन्द बड़ी बहादुरी से लड़ा परन्तु मारा गया। उसका सारा राज्य शहाबुद्दीन के हाथ में आ गया। यही द्वेष का बुरा फल होता है। इसी द्वेष ने भारत को परतंत्र बना दिया। यदि पृथ्वीराज और जयचन्द में द्वेष न होता तो, एक शहाबुद्दीन क्या

वीसों गोरी पृथ्वीराज को नहीं हरा सकते। उस समय जयचंद का बड़ा दबदबा था, महोबे के बड़े बड़े वीर उसके साथ थे, यदि ये लोग आपस में मिलकर काम करते तो संसार विजय कर लेते। परन्तु वहाँ तो अपनी २ पड़ी थी। सभी आपस में ही लड़लड़ कर मर रहे थे, नौ-नौ लाख वीर आपस के व्याह शादी के विवाद में ही कट मरे। अन्त में महोबे के वीरों का भी नाश हो गया। पृथ्वीराज की शक्ति भी जाती रही। केवल दुर्बुद्धि जयचंद रह गया था, वह भी द्वेष का फल पा गया। देखते देखते वीरा भोग्य वसुन्धरा पददलित होने लगी। यवनों ने उसपर अधिकार जमा लिया—

(२)

बृंदाबन में यमुना के किनारे एक विशाल वृक्ष पर दो पक्षियों का समूह रहा करता था, बहुत काल तक वे आपस में प्रेमपूर्वक उसी वृक्ष पर वास किये। दैवयोग से एक दिन दोनों दलों में लड़ाई हुई, दूसरे ही दिन से बोलचाल बंद हो गया। एक दल वाला दूसरे से मन मोटाव कर लिया यहाँ-तक कि एक दूसरे के तरफ देखना भी बंद कर दिया।

दोनों में वैर विरोध घुस गया, दोनों एक दूसरे के नाश के विचार में लग गये। एक दिन एक दल वाला जंगली बिलाड़ से मिला और बोला—यदि आप हमसे मित्रता करलें तो हम आपको १०० बच्चे खाने को दें और हम आपको ऐसा जगह बता दें जहाँ आपके लिये आनन्द ही आनन्द हो। बिलाड़ बड़ा धूर्त था उसने तुरत कहा, हाँ ! आप तो हमारे मित्र हो चुके, जो कुछ कहिये मैं आपकी सेवा के लिये तैयार हूँ। उसने कहा—नदी के किनारे वाले पेड़ पर दाहिने तरफ हमारे दुश्मन रहते हैं, उन्हें आप रोज जाकर खाइये, दिन भर सन्नाटा रहता है। केवल बच्चे रह जाते हैं। बड़े बड़े तो दिन भर घरके बाहर ही रहते हैं। इस प्रकार आप हमारे शत्रुओं के वंश का नाश कर दें। बिलाड़ उसी दिन से काम पर तैयार हो गया, सबेरे से साँझ तक घूम २ कर वृक्ष पर बच्चों को खाने लगा।

उधर दूसरे दल वाले भी विलाड़ से मिलकर ठीक किये कि आप हमारे शत्रुओं का नाश कर दीजिये, हम २०० बच्चे आपको पुरस्कार में देंगे। विलाड़ बड़ा प्रसन्न हुआ, अब वह निर्भय दिनभर दाहिने बायें दोनों तरफ घोसलों में पहुँच २ कर बच्चों को खाने लगा, कुछ ही दिन में सभी खोंथे बच्चों से साफ हो गये, अब बिलाड़ ने दोनों से अपना पुरस्कार माँगा, परन्तु वहाँ तो खजाना ही खाली था। उन लोगों ने कहा भाई विलाड़! कुछ दिन रुक जाओ, दूसरे फसिल पर जब हम लोग अंडे देंगे तब तुम्हें पुरस्कार मिलेगा। परन्तु विलाड़ कब मान सकता था? पेड़ पर चढ़ गया और सभी खोतों को नाश कर दिया—देखो! वैर विरोध से पक्षियों का कैसा सर्वनाश हुआ।

रक्खो परस्पर मेल मन से छोड़ कर अविवेकता।
मन का मिलन ही मिलन है होती उसी से एकता॥
तन मात्र के ही मेल से है मन भला मिलता कहीं?
है वाह्य बातों से कभी अन्तःकरण खिलता नहीं॥
आओ मिलें सब देश बान्धव, हार बनकर देश के।
साधक बनें सब प्रेम से सुख शांतिमय उद्देश के॥
बैठे हुये हो व्यर्थ क्यों! आगे बढ़ो ऊँचे चढ़ो।
है भाग्य की क्या भावना? अब पाठ पौरुष का पढ़ो॥

१६—प्रेम का प्रभाव

प्रेम किये सब सिद्ध हों, प्रेमहिं ते हरिभक्ति।
प्रेम पराजय जग करे, अरिहुँयोग अनुरक्ति॥

राजा हिरण्य कश्यपु बड़ा अभिमानी था। वह अपने आगे ईश्वर को भी कुछ नहीं समझता था। यदि लोग उसके सामने ईश्वर का नाम लेते थे—तो वह चिढ़ उठता था, और ईश्वर के भक्तों को दण्ड दिया करता था।

राजा को प्रह्लाद नाम का एक पुत्र था। वह लड़कपन से ही बड़ा प्रेमी और भक्त था, दिनरात ईश्वर के प्रेम में तन्मय रहा करता था—राजा ने उसे बड़ा डराया, धमकाया, परन्तु वह अपनी दृढ़ता से नहीं हटा।

राजा ने एक बार प्रह्लाद को विष खिलवाया, वह ईश्वर का नाम लेकर खा गया। विष ने उसका कुछ नहीं किया, यह देख राजा ने उसे हाथी के पैरों तले कुचलवाया, फिर भी वह बच गया। यह देख पहाड़ पर से गिरवाया फिर भी ईश्वर ने उसकी रक्षा की। राजा ने उसके मारने के सैकड़ों उपाय किये, परन्तु वह ईश्वर भक्त बचता ही गया।

राजा जब युक्ति करके थक गया, तब उसकी बहिन ने कहा—भैया! अब मैं इस कुँवर को मारूँगी। मैं इसे गोद में लेकर बैठ जाती हूँ तुम चारों ओर से आग लगवा देना। मुझे अग्नि का वर है। मैं तो जीते निकल आऊँगी और यह उस अग्नि में भस्म हो जायगा।

राजा ने वैसा ही किया। अन्याय के कारण राजा की बहिन तो भस्म हो गई परन्तु प्रेमी भक्त प्रह्लाद हँसता हुआ अग्नि से बाहर हुआ। प्रेम और भक्ति का यह ज्वलन्त उदाहरण है क्या इससे भी बढ़कर प्रेम प्रभाव अन्यत्र मिल सकता है? कदापि नहीं।

राजा ने प्रह्लाद को सब प्रकार से बचते देख विस्मय किया और अन्त में प्रतिज्ञा की कि ईश्वरप्रेम कुछ नहीं है। मैं स्वयं अपने हाथों से उसे मारूँगा। उस समय उसका प्रेम प्रभाव देखा जायगा—यह देखूँगा कि कौन उसे बचाता है।

राजा ने लोहे के खम्भे में प्रह्लाद को बाँधकर पूछा—बताओ ईश्वर कहाँ है? क्या वह तुम्हारी सहायता कर सकता है? उसे पुकारो—आज मैं इस तलवार से तुम्हारा स्वयं अपने हाथों से वध करूँगा।

प्रह्लाद ने कहा, परमात्मा प्रेम में है, प्रेम से ही वह प्रकट होता है, मुझे मरने की चिन्ता नहीं, ईश्वरप्रेम में मरना ईश्वरद्रोह से जीने से कहीं श्रेष्ठ है। राजा ने खड्ग उठा लिया और ज्योंही प्रह्लाद के ऊपर

चलाना चाहा कि वह लोह खम्भ फट गया—और उससे भगवान प्रकट होकर प्रह्लाद को बचा लिये। सत्य है—ईश्वर प्रेम से प्रकट होते हैं वे सदैव अपने प्रेमी की रक्षा किया करते हैं, धन्य है! प्रेमी भक्त क्या नहीं करता ?

सिद्ध योगीन्द्र लाते जिसे ध्यान में।
वेद वेत्ता लखें साम के गान में॥
नित्य नेमी टटोला करें नेम में।
पूर्ण प्रेमी लखें नित्य ही प्रेम में॥
बन्धुओं प्रेम का सिन्धु गंभीर है।
तीर है ही नहीं भाव का नीर है॥
प्रेमही प्रेम है, सृष्टि का कोष है।
पूर्ण दोषी तथा पूर्ण निर्दोष है॥
विज्ञ वेदान्तियों का सहारा यही।
योगियों का महामित्र प्यारा यही॥
नित्य न्यायायिकों में धसा है यही।
चाह मीमांसकों में बसा है यही॥

१७—प्रेम ही ईश्वर और ईश्वर ही प्रेम है।

प्रेम पियाला जो पिया, का मानुष क्या देव।
सगुण रूप ईश्वर भयो, जान्यो जगको भेव॥

शृङ्गेरी मठ में बाबा रामगिरि नाम के धनाढ्य महन्त रहते थे। चारों ओर उनका खूब नाम था। हजारों चेले रोज दर्शन के लिये आते जाते रहते थे। मठ में किसी बात की कमी नहीं थी। बीसों साधु अतिथि अभ्यागत रोज खा-खा कर दण्ड पेलते रहते थे।

मठ के पास के ही गाँव में एक गरीब अहीर रहता था, डील डौल बो उसका छोटा था परन्तु अपने पेट में अन्न खूब ठूँस २ कर भरता

ा, २, ४ सेर भोजन से उसकी तृप्ति कभी नहीं होती थी। वह कभी शायद हफ्ते दो हफ्ते में पेट भर अन्न पाता था। उसका नाम था सन्तोपदास। वह नित्य बाबा जी के दर्शन के लिये मठ में आया करता था क्योंकि लौटते समय उसे कुछ न कुछ प्रसाद अवश्य मिल जाता था। एक दिन उसने बाबा जी से प्रार्थना की, कि महाराज मुझे भी साधु बना लीजिये, हम आप लोगों की सेवा और भगवान का भजन करेंगे। मुझे भगवान के दर्शन की इच्छा है। क्या कोई ऐसी भक्ति है जिससे हम अपना मनोरथ सफल करें? बाबा जी ने कहा—बेटा! भगवान प्रेम से प्रसन्न होते हैं, तुम प्रेम करो, वे अवश्य दर्शन देंगे, ऐसा कह कर बाबा जी ने उसे चेला बना लिया, उसे एक रुद्राक्ष की माला पहना दिया, और एक शालिग्राम की मूर्ति देकर बोले—देखो! यही ठाकुर जी हैं, इनके बिना भोग लगाये कुछ न खाना। जाओ इसे ठाकुरबाड़ी में रख आओ वहां इनकी पूजा हुआ करेगी, रोज भोग लगा करेगा, तुम भी वही प्रसाद पाना, क्योंकि तुमसे नित्य ठाकुर जी की सेवा नहीं हो सकेगी। जिस दिन मन्दिर से प्रसाद न मिले, सिद्धा मिल जाय उस दिन अपना भोग लगा लिया करना। सन्तोपदास ने कहा—महाराज! हमारा खुराक तो बहुत बड़ा है इतना भोजन मुझे मिला करे जिससे पेट भर जाय। महन्त जी ने कोठारी को बुलाकर समझा दिया कि संतोपदास को पेट भर प्रसाद दिया करो। वह नित्य गौओं को जंगल से चरा लाया करेगा। सन्तोपदास नित्य गौओं को लेकर जङ्गल में निकल जाता था। जाते समय वह हाथ में एक कुल्हाड़ी और छूरा साथ रखता था क्योंकि जङ्गल में जङ्गली जीवों का भय रहता था।

धीरे २ एकादशी का दिन आ पहुंचा, मठ के सभी लोग व्रत रहे। संतोपदास क्या करता? वह तो बिना ५ सेर अन्न खाये रह ही नहीं सकता था। फौरन कोठारी जी के पास गया और ५ सेर सिद्धा गठिया लाया। पश्चात् गौओं को छोड़कर ले चला। आगे

जाते ही उसे स्मरण हो आया कि बिना भोग लगाये कैसे खायेंगे तुरत मन्दिर के पुजारी से अपने ठाकुर जी को मांग लाया औ बड़े प्रेम से जङ्गल में यह सोचता हुआ चलने लगा कि आज धन्य भाग्य है! इष्टदेव को भोग लगाकर प्रसाद पाऊँगा। जंगल में पहुँच कर उसने गौओं को चरने के लिये छोड़ दिया और आप तुरत कं लाकर चूल्हा बना ५ सेर आँटे की ५ रोटियां बना डाली। भोग लगा के समय उसे याद हुआ कि भोग लगाने के समय तो मंदिर में घंट बजाया जाता था, वह तो है ही नहीं, बस रोटियों को वहीं मूंद दौड़ हुआ मंदिर में पहुँचा और पुजारी से कहा महाराज टन टन दो, पुजार नहीं समझा घंटा तो याद आता न था, केवल टन टन मांगता था महाराज भोग के पहले का टन टन देदो! महाराज भोग लगने वे पहले का टन टन देदो! इसबार पुजारी समझ गया और उसने एव पुराना घंटा दे दिया। झटपट दौड़ा हुआ जंगल में पहुँचा इस प्रका उसने विचारा आज तो देर हो गई है, शायद इष्टदेव बहुत भूखे हों सब रोटियां भोग में नहीं रखूँगा, नहीं तो सब चट कर जायेंगे तो मै योंहीं भूखा पड़ा रहूँगा। ऐसा सोच उसने दो रोटियाँ भोग के लिये तुलसीदल डाल कर रखदी ऊपर से कपड़ा ओढ़ा कर आप थोड़ी दूर जाकर आँखें मूँद बैठ गया। पूरा एक घंटा बीतने पर उठकर घंटा बजाया और भोगवाली रोटियों पर से कपड़ा हटाया। रोटियों को साबित देख चिंतित हुआ और मनमें सोचने लगा जान पड़ता है कि आधे से कम रोटियों के रहने से भगवान ने भोग नहीं लगाया। तब उसने एक और रोटी उसमें मिला दी और कपड़े से ढँक थोड़ी दूर हटकर जा बैठा। आधे घंटे बाद फिर घंटा बजा कपड़ा हटाया, इस बार रोटियों को देख और घबड़ाया, मनमें कहा जान पड़ता है कि इष्टदेव हम से भी ज्यादा भूखे हैं। अच्छा! लो-अब पांचों रख देते हैं। फिर थोड़ी दूर पर जा बैठा, आधे घंटे बाद फिर वस्त्र उघार कर देखा कि रोटियाँ तो सब पड़ी हैं-भगवान नहीं आये। अब लगा

प्रार्थना करने, भगवान ! हम क्या अपराध किये कि हमारा भोग नहीं स्वीकार किये । इधर सांझ होते २ सतोष मारे भूख के बेचैन हो गया । उसने निश्चय किया कि पेट में छुरा भोंक लेंगे, भगवान हमसे रुष्ट हैं । ज्योंहीं छूरा भोकने लगा कि भगवान प्रगट होकर एक हाथ से छुरा पकड़ लिये और दूसरे हाथ से उसकी रोटियां खाने लगे जब चार खा गये तब सन्तोष ने हाथ पकड़ कर कहा—बस अब एक तो मुझे खाने दे । तूँ बड़ा निर्दयी है । इतनी देर लगादी कि मैं भूखों मर गया । और अब सब अपने ही पेट में ठूँसने लगा । उसके भोलेपन पर भगवान मुग्ध होकर अंतर्ध्यान हो गये ।

इसी प्रकार हर एकादशी को वह भगवान का दर्शन किया करता था, भगवान प्रेम से प्रकट होते हैं, प्रेम का नशा विचित्र होता है ।

हो जायगा मालूम जब चढ़ जायगा इसका नशा ।
रंग दिखलायगा क्या क्या भूल कर तन की दशा ॥
दीन दुनिया त्यागकर बेफिक्र हो मस्तायेगा ।
कुल जहां की झंझटों से भी नहीं घबड़ायेगा ॥

१८—मित्रता

प्रेम मित्र है साथ जो, आपद विपद निहार ।
रण में वन में हो खड़ो, को करि सके बिगार ॥

एक ब्राह्मण का लड़का अपने धनवान मित्र की बड़ी प्रशंसा किया करता था, सुनते २ एक दिन उसके पिता ने कहा—बेटा ! मित्र तो विरले ही होते हैं; मित्र बनना बड़ा कठिन बात है—चलो, आज हम तुम्हारे मित्रों की परीक्षा लें, लड़के ने कहा—अच्छी बात है चलिये ।

आधी रात हो जाने पर ब्राह्मण अपने लड़के को साथ ले उसके

एक मित्र के यहाँ गया—उसके दरवाजे पर जाकर अपने लड़के ः
कहा कि अपने मित्र को बुलाओ।

लड़का जोर २ से मित्र जी! मित्र जी! कहकर पुकारने लगा
१०, १५ बार पुकारने से जब कुछ उत्तर नहीं मिला तब फाटक क
जञ्जीर खट खटाने लगा। कुछ देर बाद उत्तर आया—क्या है
ब्राह्मण ने अपने पुत्र से कहा कि—मित्र को बुलाओ और उससे कहे
कि अमुक जङ्गल में चलना है—चलो। लड़के ने ऐसा ही कहा—
मित्र ने घर के भीतर से ही उत्तर दिया, कल दश बजे मिलेंगे, इसरं
पहले नहीं उतर सकते।

इसी भाँति वह लड़का अपने प्रत्येक मित्रों के पास गया, परं
कोई भी उसके पास नहीं आया। तब ब्राह्मण ने लड़के से कहा, अच्छ
देखो! अब मैं तुम्हें अपने मित्र के पास ले चलता हूँ, हमने अपन
जीवन में केवल एक ही मित्र किया है।

ब्राह्मण ने अपने मित्र के दरवाजे पर पहुँच कर पुकारा, तत्काल
भीतर से आवाज आई, आ रहा हूँ, थोड़ी ही देर में एक आदमी
किवाड़ खोलता हुआ बाहर आया, उसके एक हाथ में एक गठरी और
दूसरे हाथ में एक तलवार थी।

निकट पहुँचते ही उसने शंकित स्वर में पूछा, कहिये मित्रवर!
क्या आज्ञा है? इतनी रात में-पधारने का क्या कारण है? हम सेवा
के लिये तैयार हैं, यदि धन की आवश्यकता हो तो यह लीजिये—रुपयों
की गठरी है—और यदि किसी ने सताया हो तो बोलिये—यह मेरे
हाथ में तलवार है

ब्राह्मण ने कहा—नहीं मित्रवर, इनकी कोई आवश्यकता नहीं,
मैं केवल मिलने के लिये ही आया हूँ, दोनों मित्र बहुत देर तक परस्पर
वार्तालाप करते रहे पश्चात् अपने अपने स्थान पर गये।

अपने पिता के मित्र का हाल देख लड़का मित्रता के रहस्य को
समझ गया। ब्राह्मण ने घर पहुँच कर लड़के से कहा—देखो! मित्र

ऐसा होना चाहिए जो हर समय साथ देने के लिये तैयार रहे, रण में, वन में, जहाँ जाय रक्षा करे, मार्ग की विपत्तियों से बचावे और सदैव शुभचिन्तक रहे, हरसमय मित्र की सहायता करना अपना परम कर्त्तव्य समझे।

पिता के उपदेश से लड़का बड़ा प्रसन्न हुआ—और दूसरे ही दिन से उसने स्वार्थी मित्रों का साथ छोड़ दिया। बराबर अपने पिता के इन उपदेशों का ध्यान रखने लगा—

शुद्ध मित्रता रखे करे प्राण की रखवारी।
पुण्य पारखी बने सत्य का हो अधिकारी॥
दुष्टों की सुन बात कभी विश्वास न छोड़े।
बंधन में बँध सुहृद भाव को कभी न तोड़े॥
अपराधों को कर क्षमा, अविरल सुख पाता रहे।
प्रिय उपाय करता रहे, बना नेह नाता रहे॥
कर दुर्गुण को दूर गुणों का मान बढ़ावे।
जिससे जग-हित सधे उसी का पाठ पढ़ावे॥
करे नहीं अपमान सरलता सदा दिखावे।
सज्जनता-कर्त्तव्य समय पा उसे सिखावे॥
जिसके मन में प्रेम हो, योग्य तथा अनुकूल हो।
जिसमें उच्च विचार हो, किन्तु न थोथी भूल हो॥

१६—उत्तम मित्र

जानि मीत करिबो भलो ज्यों पीबो जल छान।
बहुरि पड़ो पछतावनो, ना जाने गुन ज्ञान॥

किसी जङ्गल में एक हरिन और एक कौआ आपस में बड़ी मित्रता पूर्वक रहते थे। दोनों अभिन्न हृदयी थे। किसी प्रकार का छल कपट नहीं रखते थे। दिन को दोनों अलग २ होकर अपना चारा दाना करते और सायंकाल में इकट्ठे हो एक स्थान पर वास किया करते थे।

उसी जङ्गल में एक धूर्त गीदड़ रहता था। उसने देखा, अरे! यह हरिन तो बड़ा मोटा ताजा है। किसी प्रकार इससे मित्रता करूँ तो काम बने। एक बार इस पर विश्वास जमा लेने से फिर यह हमारे हाथ में आ जायगा. तब इसे किसी व्याधा के जाल में फँसा कर इसका मांस उड़ायेंगे।

ऐसा सोच कर उसी दिन साँझ होते २ गीदड़ हरिन के डेरे पर पहुँचा-कौआ उस समय तक नहीं लौटा था। वह हरिन को प्रणाम कर उसके निकट जा बैठा और सज्जनता की बात करने लगा-उसके धार्मिक वचन को सुनकर हरिन बड़ा प्रसन्न हो कहने लगा-भाई गीदड़! तुम तो बड़े पंडित जान पड़ते हो। गीदड़ ने कहा-नहीं मैं तो कुछ नहीं जानता, आप श्रीमानों की सेवा करना ही हमारा कर्त्तव्य है। सत्संग करने में ही हमने अपना जीवन व्यतीत किया है-अब हम आपसे मित्रता करके आपके साथ शेष जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। हरिन ने कहा अच्छी बात है-आइये रहिये, हमको किसी बात का कष्ट नहीं-आपके रहने से और अच्छा ही रहेगा।

सायंकाल में कौआ आया, वह हरिन के साथ गीदड़ को देख चकित हुआ, और अपने मित्र से उस अपरिचित के आने का कारण पूछने लगा। हरिन ने कह सुनाया, कि इन्होंने हमसे मित्रता की है। कौवे ने कहा—मित्रवर! बिना जाने सुने आपने अच्छा काम नहीं किया। मित्र खूब जान बूझकर करना चाहिये, बिना भलीभाँति परीक्षा लिये तुरत मित्र बना लेने पर पीछे पछताना पड़ेगा—हरिन ने कहा—भाई यह तो बड़ा भला है—सज्जनता की बातें किया करता है-रहने दो एक जगह पड़ा रहेगा। हम लोगों का क्या लेगा। हरिन के कहने पर भी—कौवे ने कहा नहीं, बिना कुलशील आचार-विचार जाने मित्रता करना मूर्खता है-अस्तु मैं सचेत कर देता हूँ—आप बराबर इससे सावधान रहियेगा।

धीरे-धीरे उन तीनों को रहते महीनों बीत गये। एक दिन गीदड़ ने विचारा अब हरिन को फँसाना चाहिये। नदी के किनारे जो कोदो और जो मकई का खेत है वहीं आज रात में इसे ले चलें खेत वाला जाल डाले है ही, जाते ही, यह उसमें फँस जायगा फिर हमारी खूब बनेगी।

ऐसा सोच वह हरिन से बोला, मित्रवर ! आज नदी के किनारे एक खेत में चलिये, वहाँ खूब कोदो और हरी हरी मकई है, खूब खाने में आवेगा। दोनों मित्र मौज करेंगे। हरिन गीदड़ की बात में आ गया और उस खेत में जाकर जाल में फँस गया। हरिन को जाल में फँसते देख गीदड़ बड़ा खुश हुआ—अपने को बँधा देख हरिन ने गीदड़ से कहा—मित्रवर ! मैं तो फँस गया—अब क्या करूँ। गीदड़ ने कहा पड़े रहो चुपचाप, सवेरे खेत वाला आकर खुद तुम्हें छुड़ायेगा—इतना कहकर गीदड़ उसी खेत में छिप कर जा बैठा। इधर रात बीतने पर हरिन को न देख कौआ बड़ा घबड़ाया—वह रात ही में इसे ढूँढ़ने निकला। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते नदी के किनारे वाले खेत में इसे बंधा पाया। कौआ को देख हरिन रोने लगा और बोला मित्र ! तुम ठीक कहते थे। बिना जाने किसी से मित्रता करना भूल है। तुम्हारे उपदेशों को ठुकराने का फल पा रहा हूँ। कौवे ने कहा घबड़ाओ मत, देखो सवेरा हो रहा है। अब खेतवाला आता ही होगा, जब वह आवेगा तब मैं तुम्हें सूचित कर दूँगा, उस समय तुम साँस रोककर पड़ रहना। वह तुम्हें मरा समझ कर अपना जाल समेट लेगा और जब वह जाने लगेगा तब मैं तुम्हें कह दूँगा तब तुम उठकर बड़ी शीघ्रता से भाग जाना। हुआ ऐसा ही। खेतवाला जब इसे मरा समझ जाल समेट अपने घर जाने लगा तब कौवे ने काँव-काँव किया—जिसे सुनते ही हरिन रफूचक्कर हुआ, यह देख खेतवाला डण्डा घुमा कर हरिन के पीछे फेका, हरिन तो निकल गया, लेकिन वह सोंटा गीदड़ राम के पीठ पर गिरा, जो हरिन का मांस खाने के लिये

छिपा बैठा था—सत्य है—बिना परीक्षा किये मित्रता करना भारी भूल है

मित्र वही जो सदा मित्र के काम में आवे।
कष्ट पड़े पर सब प्रकार उसको अपनावे॥
रण में वन में जिसे छोड़कर कभी न भागे।
उपदेशों को सुने सुनावे छल को त्यागे॥
जो सच्चे व्यवहार का, वही अनूठा मित्र है।
इसके जो विपरीत हो, वह धोखे का चित्र है॥

२०—कपटी मित्र का बदला

कुटिल मीत ते रिपु भलो, दुर्जन ते वरु व्याल।
दुहुँ सरवस मोचन करत, समय पड़े ह्वै काल॥

दण्डक वन में एक ऊँट रहता था। वह बड़ा सीधा था। किसी से वैर-विरोध नहीं करता था। दिन भर अपना घूम-घूमकर चरता और रात में किसी पेड़ के नीचे विश्राम करता था।

उसी जङ्गल में एक गीदड़ रहता था वह बड़ा दुष्ट था, अनायास लोगों से वैर विरोध करता था। एक दिन वह ऊँट के पास आया और बोला—महाशय! हम आपके गुणों पर मुग्ध हैं—आपकी संगति मुझे पसन्द है—यदि आज्ञा दें तो हम आपके शरण में रहा करें। ऊँट ने कहा कोई चिन्ता नहीं तुम प्रसन्नतापूर्वक रहो, मुझे किसी प्रकार का कष्ट न होगा।

गीदड़ ऊँट के साथ रहने लगा, रोज वह उसके साथ इधर उधर घूमता और उसकी पीठ पर बैठकर खूब पके २ फलों को खाया करता था। ऊँट उसे खूब मानता था, अपने पीठ पर बिठाकर प्रसन्नता पूर्वक उसे घुमाया करता था।

उस जङ्गल में एक फूट का खेत था, खेत में खूब पके २ फूट लगे । एक दिन रात में दोनों उसी खेत में गये । गीदड़ का छोटा पेट थोड़ी ही देर में भर गया, ऊँट अभी खा ही रहा था कि गीदड़ ने कहा—अब तो मैं बोलूँगा । ऊँट ने कहा, भाई ! मुझे भी खा लेने दो । गीदड़ ने कहा—मुझसे तो बिना बोले रहा नहीं जाता, ऊँट मना करता ही रहा, परंतु गीदड़ लगा हुँआ, हुँआ चिल्लाने ।

गीदड़ के चिल्लाने से खेत वाला जग गया और सोंटा लेकर दौड़ा, गीदड़ तो भाग गया, परन्तु ऊँट नहीं भाग सका, उस रोज बिचारा खूब मार खाया । किसी भाँति गिरता पड़ता अपने पेड़ के नीचे आया और चुपचाप पड़ रहा, सबेरे गीदड़ भी आया और बड़ा गिड़गिड़ाया कि हमारा अपराध क्षमा कर दीजिये—अब कभी ऐसा काम नहीं करेंगे । ऊँट ने कहा, हमको कोई कष्ट नहीं, तुम आनन्द से रहो, फिर दोनों कुछ काल तक रहे ।

एक दिन गीदड़ ऊँट के उपर चढ़कर नदी के उस पार फूट खाने के लिये गया—लौटते समय जब ऊँट आधे नदी में आया तब बोला कि भाई अब तो मेरा मन डुबकी लगाने का है । गीदड़ ने कहा भाई ! मुझे उस पार पहुँचा दो फिर तुम सैकड़ों डुबकियाँ लगाओ, ऊँट ने कहा नहीं भाई ! हमसे तो बिना डुबकी लगाये रहा ही नहीं जाता, क्या करें लाचार हैं ।

इतना कहकर ऊँट ने पानी में गोता लगा लिया, उसका पानी में डूबना था कि, गीदड़ नदी में बह गया और लगा डूबने, थोड़ा ही देर में पानी पीकर मर गया ।

सत्य है—

"जो जस करै सो तस फल चाखै"

हीयते ही मतिस्तात हीनैर्जन समागमात् ।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम् ॥

हे तात ! हीन मनुष्यों के समागम से बुद्धि कुण्ठित, समबुद्धि

वालों के सम्पर्क से सम और विद्वानों के साथ से उत्तम हो जाती है, अतः नीच मनुष्यों के संग से सदैव बचते रहना चाहिये, नीचों के संग से बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अतः कल्याण चाहने वाले प्रेमियों को इससे बचना चाहिये। कभी कुटिल मित्र के बात में न आवें नहीं तो पछताना पड़ेगा।

२१—दुर्जनों से सदैव दूर रहो

जो भल चाहो आपनो, गहो सुजन को संग।
नीच नीचाई ना तजे, करै रंग में भंग॥

बहुत पहले काशी में सतानन्द नाम का एक ब्राह्मण रहता था। उसको एक साधु नाम का पुत्र था। ब्राह्मण उसे बराबर उपदेश दिया करता था कि कभी दुर्जनों के पास मत बैठो। उसके संग आदमी बिगड़ जाता है—सज्जनों का संग लाभकारी है। सन्तों की महिमा अपरम्पार है तुम यदि अपनी उन्नति चाहते हो तो कभी कुसंग में न जाना।

ब्राह्मण ने लड़के को पढ़ने के लिये पंडित जी के पास भेजा। परन्तु लड़के का मन पढ़ने लिखने में नहीं लगता था, वह सवेरे ही पोथी पत्तरा लेकर घर से निकल जाता और राह में बुरे लड़कों के साथ खेलता रहता था। जब पढ़ने का समय आता तब पाठशाला जाता और छुट्टी होते ही फिर अपने खेल वाले साथियों के साथ घंटों उधम मचा कर घर आता था। कुछ दिन के बाद तो वह दो २ चार २ दिन पाठशाला से गायब रहने लग गया। दिनभर बुरे साथियों के साथ गुल्ली डंटा और कबड्डी खेला करता था।

धीरे २ वह इन साथियों के साथ जूआ भी खेलने लग गया। उसे लोगों ने शराबी भी बना दिया, अब उसकी रही सही बुद्धि भी नष्ट हो गई। वह रोज जूआ खेलने के लिये और मद पीने के लिये कोई

न कोई घर की चीज उड़ा ले जाने लगा—रोज उसकी शिकायत सतानन्द के पास आने लगी।

ब्राह्मण ने अपने पुत्र को बड़ा डराया धमकाया, मारापीटा परन्तु सर्व व्यर्थ हुआ। बाप ने उसकी शादी भी लड़कपन में ही कर दी थी। औरत घर में बैठी थी। जब बाप ने अपना धन दौलत बेटे के डर के मारे जमीन में छिपाकर गाड़ दिया, तब वह लगा अपनी औरत को ही सताने। यदि गहने देने में टाल टूल करती तो दो चार लात जमाकर छीन छान कर चलता बनता था। इस प्रकार कुछ दिन में उसने स्त्री के सारे जेवर बर्बाद कर दिये। एक दिन वह घर से खाली हाथ लौटा और अपने दुर्जन मित्र से कहा कि यार आज तो कुछ नहीं पाये। क्या करें? मित्र ने कहा—यार! बुड्ढे के पास तो खूब दौलत है—क्यों नहीं उसका भुगतान कर देते? फिर सारी माया तो तुम्हारी ही है न। बस उसी दिन उसने अपने बाप को जहर खिला दिया—उसका बाप विचारा अकाल में ही चल बसा।

अब तो वह परम स्वतंत्र होकर मनमाना करने लगा। धीरे २ अपने बाप की गाढ़ी कमाई दुर्जनों के संग से खो बैठा। एक दिन जूआ खेलते समय जब साधू के पास एक पैसा भी नहीं रहा तब उसके दुष्ट मित्र ने कहा—यार! द्रव्य नहीं है तो क्या? अपनी स्त्री को दाव पर रख दो, उसने वैसा ही किया दुर्जनों ने धोखा देकर जीत लिया। दूसरे दिन सबेरे दुष्ट लोग उसके घर पर पहुँचे और कहने लगे अपनी स्त्री दे दो, क्योंकि कल तुम जूये में हार चुके हो, बड़ा हल्ला मचा, आस पास के पड़ोसी इकट्ठे हो गये। सभी साधू को थूकने लगे। नीच ऊँच समझाने लगे। उधर उसके सर्वस्व खाये पीये, उसकी स्त्री को पकड़ कर घसीटने लगे, तब तो उसकी आंखें खुलीं और दुष्टों पर जुट पड़ा। फिर क्या था खूब मार पीट हुई। मामला अदालत में गया। हाकिम ने जूवे के अपराध में साधू को एक वर्ष की नेक चलनी पर छोड़ा और उन दुष्टों को जिन्होंने इसे बिगाड़ा था

तीन २ वर्ष कठोर कारावास का दण्ड दिया। सत्य है—दुर्जन जन जीवन का नाश कर देते हैं। मनुष्यों को दुर्जनों से सदैव दूर रहना चाहिये।

वरं पर्वत दुर्गेषु भ्रांतं वन चरैः सह।
न मूर्ख जन सम्पर्कः सुरेन्द्र भुवनेष्वपि॥

अर्थात् पहाड़ी स्थानों में वनचरों के साथ भटकते रहना अच्छा है पर इन्द्र के घर में भी मूर्ख मनुष्य के साथ रहना ठीक नहीं; क्योंकि वनचर के साथ पहाड़ पर रहने में भी सुख मिलेगा परंतु मूर्ख के साथ इन्द्रपुरी में भी दुःख ही भोगना पड़ेगा।

२२—पंडित शत्रु भला है परन्तु दुर्जन मित्र अच्छा नहीं

शत्रु भले हों पर न हो, सुजनन ते अपकार।
मूर्ख करे उपकार क्या? देवै दुःख अपार॥

शतानप नाम का राजा बड़े नीति से राज्य करता था। उसके शासन में कोई किसी को सता नहीं सकता था। बाघ और बकरी एक घाट पर पानी पीते थे। राजा ने दीन-दुखियों का बड़ा उपकार किया। सभी उसकी सज्जनता की हृदय से प्रशंसा किया करते थे।

राजा अपने पास हर समय दो विश्वासी नौकरों को रखता था, यही दोनों राजा के शरीर रक्षक थे, एक उनमें पंडित था और दूसरा दुर्जन। दोनों अपनी ड्यूटी पर तैयार रहते थे। परन्तु राजा ने बिना विचारे पंडित को दण्ड देकर उसके स्थान से हटा दिया।

राजा के नगर के निकट ही दूसरे नगर में उसका एक पुराना शत्रु रहा करता था। वह बराबर राजा के नाश का उपाय सोचा करता था। परन्तु कोई उपाय न देख लाचार हो जाता था। एक दिन उसने विचारा—कि राजा के दोनों शरीर रक्षक यदि मिला लिये जायँ तो उससे बदला लिया जा सकता है।

वह भेष बदल कर राजा के राज्य में आया और दोनों शरीर रक्षकों से वारीवारी मिला, पहले वह पण्डित के पास गया, परंतु वह इसकी बात में नहीं फँसा। पश्चात, मूर्ख के पास जाकर द्रव्य का प्रलोभन दिया। दुर्जन तत्काल उसकी बात में आ गया और उसके कहने के अनुसार कार्य्य करने के लिये तैयार हो गया।

दुर्जन ने राजा के शत्रु को कुछ रात बीतने पर महल के भीतर एक गुप्त स्थान में ले जाकर छिपा दिया, और आप राजा के कमरे का पहरा देने लगा। दोनों में यही बात तय हुई थी कि आधी रात के समय मुझे बुला लेना, मैं राजा को मार डालूँगा, यदि कोई कुछ बोलेगा तो हम दोनों मिलकर उसे भी ठीक कर देंगे।

पंडित बड़ा बुद्धिमान था, वह स्वामीभक्त था। मित्रता का मूल्य समझता था। वह इन सबों की कार्रवाइयों को समझ गया। राजा ने बिना अपराध उसका तिरष्कार किया था तो भी वह कोट में आया और महल रक्षक सिपाहियों को सचेत कर दिया—कि आज दश बीस सिपाही राजा के कमरे के पीछे वाली कोठरी में सांझ से ही तैयार रखना, जब कोई पुकारे उस समय निकल कर सब राजा की सहायता करना।

राजा भोजन कर सोने के लिये अपने कमरे में गया। इधर दुर्जन पहरा देने लगा। आधीरात होते ही वह घूमते घामते उस स्थान पर गया, जहाँ राजा का शत्रु बैठा था। दुर्जन ने कहा—चलो अच्छा मौका है, परन्तु भूलना नहीं, वजीर हमीं को बनाना।

दोनों उस स्थान में आये, जहाँ पण्डित छिप रहा था, दुर्जन के साथ एक अपरिचित व्यक्ति को देख पण्डित ने कड़क कर कहा—दुर्जन! यह कौन है? दुर्जन ने कुछ जवाब नहीं दिया, बल्कि बड़ी तेजी से दोनों ने इस पर हमला कर दिया। इतने ही में पण्डित चिल्ला उठा, बात की बात में बीसों सिपाही निकल पड़े, परन्तु तब तक दोनों शत्रु पण्डित को घायल कर चुके थे।

सिपाहियों ने दोनों को पकड़ लिया, हो हल्ला सुनकर राजा भी जाग उठा और बाहर आकर सिपाहियों के भीड़ को देखकर हल्ला का कारण पूछने लगा। पण्डित ने आद्योपान्त घटना कह सुनाई—दुर्जन और राजा के शत्रु ने भी अपना २ दोष स्वीकार किया। राजा ने पण्डित के घायल होने से बड़ा दुख प्रकट किया और कहा—ठीक है, 'पण्डितो शत्रु भलो न च मूर्खो हितकारकः'।

(२)

एक राजा का नौकर बड़ा आज्ञाकारी था, हर समय उसके सेवा में लगा रहता था, राजा उसकी सेवा से प्रसन्न हो कभी २ उसका दिल बढ़ाने के लिये इनाम भी दे दिया करता था।

नौकर वास्तव में मूर्ख था, एक दिन राजा भोजन कर सोने लगा, गर्मी का दिन था, नौकर पंखा लिये झल रहा था, राजा को नींद आ गई, इतने ही में एक मक्खियों का झुंड उठता हुआ आया और राजा के छाती पर जा बैठा, नौकर को यह बुरा लगा, उसने पंखे के जोर से हटा दिया, परन्तु मक्खियां कब मानने वाली थीं, बार २ आतीं और राजा के शरीर पर बैठती ही जाती थीं। नौकर उन्हें बार २ हटाता ही जाता था। अन्त में एक बार उसे मक्खियों पर बड़ा क्रोध चढ़ आया, और उसने बगलमें टँगी खूँटीपर से तलवार खींचकर उन्हें मारने के लिये बैठ गया, इसबार उसने संकल्प कर लिया था कि मक्खियां यदि आईं तो बिना मारे नहीं छोड़ूँगा।

थोड़ी ही देर में मक्खियों का झुंड आया और पूर्ववत् राजा के शरीर पर बैठ गया। उनका बैठना था कि नौकर ने इतने जोर से तलवार चलाया कि मक्खियां तो उड़ गईं—परन्तु राजा का शरीर दो टुकड़े हो गया।

यही मूर्ख हितकारी का परिणाम है। कभी मूर्ख का संग नहीं करना चाहिये—नहीं तो राजा के समान प्राण से हाथ धोना पड़ेगा।

(३)

राजा चन्द्रचूड़ बड़ा न्याय पूर्वक राज करते थे, उससे चोर डाकू सभी डरा करते थे, चोरोंने मिलकर एकदिन सभा की कि चलो आज चल कर राजाको मार डालें, इसके रहने से हमलोग काम नहीं कर सकते।

उसी के राज में एक पंडित रहता था, वह बड़ा दरिद्र था, धन न होने के कारण उसने भी उसी दिन निश्चय किया कि चलें आज राजा के यहाँ चोरी करें।

रात्रि कुछ बीतने पर पंडित किसी प्रकार राजमहल में घुस गया, और चारो ओर घूम २ कर द्रव्य ढूँढ़ने लगा। इतने में उसने चोरों के दल को महल में छिपे हुये देखा और जान लिया कि आज ये लोग राजा को मार डालेंगे। वह घबड़ाता हुआ राजा के शयन महल में पहुँचा, और उसे जगा कर बोला, सावधान हो जाओ, तुम्हारे महल में बहुत से चोर घुस पड़े हैं, वे तुम्हें मारना चाहते हैं।

राजा उठ बैठा और अपने सिपाहियों के द्वारा चोरों को पकड़वा लिया। इस प्रकार चोर पंडित के द्वारा राजा की जान बच गई। पंडित शत्रु भी हो तो कोई चिंता नहीं, उससे किसी प्रकार का अनिष्ट नहीं हो सकता। वह कभी भी अपकार नहीं करेगा।

(४)

सेठ पन्नालाल बड़े धनवान व्यापारी थे। बड़े २ शहरों में उनका रोजगार हुआ करता था, खूब मुनाफा होता था, बड़े ठाट बाट से रहा करते थे। क्रूरसिंह नाम का उनका एक मूर्ख साथी था, वे उस पर बड़ा विश्वास रखते थे, बिना क्रूरसिंह के उनकी एक घड़ी भी नहीं कटती थी। उन्होंने क्रूर को बना दिया, उसकी टूटी झोपड़ी महल बन गई, भिखमंगा क्रूर धन्नासेठ हो गया, तोभी उसका ओछापन न गया, क्रूर क्रूरही रह गया दुर्जनता उसमें कूट २ कर भरी थी।

क्रूर मूर्ख था, बराबर मूर्खता किया करता था वह अपनाही रंग

गाठने में लगा रहता था, विद्वान् और पंडितों से बराबर डाह किया करता था, योंही एक दिन वह सेठ के बड़े मुनीम पं० राधा मोहन से झगड़ गया, राधा मोहन का कोई दोष न था, उसने सत्य उत्तर दिया था, इस पर क्रूर ने सेठ जी को साधकर दश हजार रुपये की डिगरी करा विचारे राधामोहन का इसने सर्वस्व हरण करा लिया।

समय एक सा नहीं रहता, क्रूर की कुनीति, एवं अपव्यय तथा जुआ आदि के जाल में फँस कर सेठ जी का सर्वस्व नाश हो गया। महाजनों ने डिगरी कराकर जो कुछ इनके पास बची बचायी सम्पत्ति थी वह भी हरण करा लिया। अब तो सेठजी के पास कुछ भी नहीं रह गया। क्रूरसिंह के कारण सबसे द्वेष बढ़ ही गया था—किसी ने उनको शरण न दी। दिन भर उपवास करने पर रात्रि में वे क्रूरसिंह के पास गये परन्तु दुष्ट ने उन्हें फटकार दिया। सेठजी के सामने कितने दुख का समय था, वे अपने स्त्री-पुत्र के सहित क्रूरसिंह के घर से निराश होकर लौट रहे थे कि राह में राधा मोहन किसी—सेठ जी को ऐसी आशा नहीं थी कि एक शत्रु जिसका हमने इतना अनिष्ट किया है—वह हमारी सहायता करेगा। परन्तु नहीं—राधामोहन बुद्धिमान था, पण्डित था, उसने सेठजी को अपने यहाँ ठहराया और उनकी पूरी सहायता की—

तक्षकस्य विषं दन्ते, मक्षिकायाश्च मस्तके।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वांगे दुर्जनस्य तत्॥

सर्प के दाँत में, मधुमक्खी के मस्तक में और बिच्छू के डंक में ही विष रहता है। परन्तु दुष्ट मनुष्य के सब अंगों में विष रहता है, अर्थात् दुर्जन (दुष्ट, मूर्ख) सब प्रकार से दूसरों को दुःख ही पहुँचाता है।

८३-कुपथ में अकेले कभी कहीं न जाना चाहिये।

रन में वन में-संग बिनु, या विदेश बिनु मीत।
निर्जन कुधर कुमार्ग में, मन उपजै बहु भीत॥

किसी गाँव में विष्णु शर्मा नाम का एक ब्राह्मण रहता था, एक बार वह कार्य्य-वश विदेश गया, और वहाँ बीमार पड़ गया। अपनी हालत खराब देख अपने घर पर स्त्री और बेटे के पास अपनी बीमारी का हाल भेजा कि यहाँ आकर मुझे घर लिवा ले चलो।

पति की बीमारी का पत्र पाकर उसकी स्त्री बहुत दुखी हुई, लड़का अभी छोटा था, अकेले उसे कैसे भेजे? राह में बड़े २ जंगल पड़ते थे। माता को दुखी देख लड़के ने कहा—मां, तुम क्यों घबड़ाती हो? हम चले जायेंगे, जङ्गल के बाघ भालु हमारा कुछ नहीं कर सकते। माता ने कहा—बेटा! यह ठीक है,—'परन्तु कुपथ में किसी को कभी अकेले नहीं जाना चाहिये,।

मां अपने पुत्र से इतना कह कर गाँव के बगल वाले पोखरे से एक केकड़ा पकड़ लाई, और अपने पुत्र को देकर बोली कि लो, इसे साथ लेते जाओ। यही तुम्हारा साथी रहेगा। अकेले जाना ठीक नहीं। माता के वचन को उपदेश समान मान कर बालक ने केकड़े को अपने पूजा के डिब्बे में जिसमें कपूर रखा करता था रख कर-यात्रा के आवश्यक सामानों को लेकर चल पड़ा।

कई दिनों तक चलते २ एक दिन दोपहर को मैदान में जहां एक सघन वृक्ष और विशाल कुआं था ठहर गया। स्नान, पूजन और भोजन से निवृत हो विश्राम करने लगा। बालक लगातार कई दिनों से चल रहा था, जिससे काफी थक गया था, अतः ठंडी २ वायु के बहने से उसे नींद आ गई।

लड़के के सो जाने पर एक बड़ा भारी विषधर उस वृक्ष से उतर

और बालक को काटने के लिए बड़ी शीघ्रता से दौड़ा। परन्तु निकट आते ही वह कपूर की गन्ध से मस्त हो गया। वह ब्राह्मण के पूजा की गठरी के पास गया, और कपूर की डिब्बी को उलटने लगा इसी प्रकार बहुत देर तक उसे उलटतापुलटता रहा, परन्तु वह नहीं खुल सका--सांप और भी क्रोधित हुआ, उसने उस डिब्बे को अपने शरीर से लपेट लिया और फुँफकारता हुआ ब्राह्मण की तरफ बढ़ा। तब तक सांप के शरीर के आघात से कपूर की डिब्बी खुल गई और केकड़ा बाहर निकल पड़ा। डिब्बे के उलटने पुलटने से वह पहले से ही क्रोधित हो रहा था—निकलते ही अपने सामने भयंकर विषधर को देख, और भी क्रोधित हो उठा, तुरत उसने अपने तीक्ष्ण सूढ़ों को सीधा किया और सर्प के शरीर में लगा दिया। सांप बहुत फुँफकारता रहा परन्तु उसकी एक न चली—केकड़े ने अपने तीक्ष्ण सूढ़ों से उसे तुरन्त दो टुकड़े कर दिया। देखते २ सांप का शरीर खण्ड २ हो गया, केकड़े ने बात की बात में उसे सैकड़ों टुकड़े कर दिया।

बालक जागने पर अपने निकट एक खण्ड २ पड़े हुए सर्प को देख चकित हुआ। थोड़ी ही दूर पर उसने अपने केकड़े को भी चुपचाप बैठा देखा, उसको प्रसन्नता का ठिकाना न रहा, दौड़कर उसने केकड़े को उठा लिया और मन ही मन कहने लगा—ठीक है, हमारी माँ सत्य कहती थी, किसी को कुपथ में कहीं अकेले नहीं जाना चाहिए। आज यदि यह केकड़ा न होता तो इस विषधर से मुझे कौन बचाता?

थोड़ी देर में बालक अपने सब सामान के साथ आगे बढ़ा, इसी प्रकार चलते २ एकदिन अपने पिताके पास पहुँच गया उसने केकड़े और सर्प की कहानी पिता को भी सुनाई, उसे भी केकड़े के कर्त्तव्य पर बड़ा आश्चर्य हुआ, और बच्चे की रक्षा होने से ईश्वर को धन्यवाद दिया। उसी दिन बालक अपने पिता को लेकर वहाँ से चला, और राह में ठहरता २ कुछ दिनों के बाद कुशलपूर्वक अपने घर पर आ पहुँचा। स्त्री अपने पति और पुत्र को सकुशल देख अत्यन्त प्रसन्न हुई। बालक

केकड़े की मित्रता का हाल सुन बोली—सत्य है—कुपथ में सबों को एक न एक साथी रखना चाहिये।

२४—जन्म स्वभाव नहीं जाता

गुण स्वभाव जावै नहीं, जनम तत्व कर दोष।
ज्यों वराह भटकत फिरे, हरिहूँ धाय करि रोष॥

किसी समय एक तपस्वी गंगा के किनारे तप कर रहे थे, एक चील एक चुहिया को चंगुल में पकड़ कर उड़ा जा रहा था—दैव योग से चुहिया उसके चंगुल से छूट गई और तपस्वी के आसन पर गिर पड़ी। उसकी दीन दशा देख मुनि ने सोचा यदि यह इसी प्रकार रहती है तो जंगली जीव इसे बहुत सतावेंगे, और अन्त में मार कर खा जायेंगे।

महात्मा ने दयाकर तपस्या के बल से उसे कन्या बना दिया। उन्हीं के आश्रम में रहकर वह धीरे २ बढ़ने लगी। ऋषि उसे मूषिका कह कर पुकारा करते थे। कुछ दिनों में वह सयानी हो गई। कन्या को विवाह योग्य देख मुनि को चिंता हुई उन्होंने विचार किया कि किसे दूं। जो सब से बड़ा और योग्य हो, उसी के साथ इसका विवाह करना अच्छा होगा। उन्होंने सोचते २ सूर्य को सर्व श्रेष्ठ समझा और उन्हें बुलाने के लिये उनका आकर्षण किया।

मुनि के आकर्षण से सूर्य भगवान प्रकट हुये और बोले—ऋषिराज! क्या आज्ञा है? किस लिये मुझे याद किये हो! बोलो—सूर्य के कहने पर ऋषि ने कन्या को बुलाकर कहा—क्या तुम इन्हें वरण करना चाहती हो? कन्या ने उत्तर दिया अरे बाप! ये तो अग्नि के समान जल रहे हैं इनके सम्पूर्ण शरीर से अग्नि ज्वाल निकल रहे हैं, मैं इन्हें कैसे वरण करूं? इन के पास जाने पर मैं तो स्वयं भस्म हो जाऊँगी।

कन्या को अनुकूल नहीं होते देख महात्मा अत्यन्त दुःखित हुये और सूर्य से बोले—भगवन् ! मैंने इसी लिये आप को कष्ट दिया था। अच्छा, अब यह बतलाइये कि आपसे भी कोई श्रेष्ठ है ? सूर्य ने कहा हाँ ! और तो कोई हमसे बड़ा नहीं है-केवल एक मेघ ही ऐसा है जो मुझे कभी २ छिपा लेता है। उसके सामने हमारा सारा प्रकाश छिप जाता है।

सूर्य के चले जाने के बाद ऋषि ने मेघ का आकर्षण किया। वह सूर्य के समान तत्काल मुनि के पास पहुँचा, बादल को सम्मुख देख महात्मा ने कन्या से पूछा-क्या तुम इन्हें अपने योग्य समझती हो ! कन्या ने लज्जा पूर्वक कहा, ओह ! ये तो बड़े भयंकर स्वरूप वाले हैं इन्हें देख कर तो भय मालूम होता है। फिर भला इनके साथ हमारा सम्बन्ध कैसे रह सकता है ?

कन्या को विपरीत देख ऋषि ने मेघ से कहा—कहिये आपसे भी कोई बड़ा है ? मेघ ने उत्तर दिया, हाँ ! इस संसार में केवल एक पवन ही मुझ से बड़ा है वह जिधर चाहता है उधर ही मुझे उड़ा ले जाता है।

मेघ के जानेपर महात्मा ने मारुत का आवाहन किया, क्षणमात्रमें वह अट्टहास करता हुआ पहुँच गया। ऋषि ने वायु को सम्बोधित कर कन्या से कहा, पुत्री ! क्या तुम इन्हें योग्य समझती हो ? कन्या ने कहा पिताजी ! ये तो अत्यन्त सूक्ष्म शरीरधारी हैं, इनका रूप रंग तो कुछ दिखाता ही नहीं, कैसे मैं इन्हें योग्य समझूँ ?

कन्याके इस प्रकार उत्तर देने पर मुनि महाराज पवन से बोले, कहो भाई ! क्या तुम से भी बलवान् संसार में कोई है ? पवन ने कहा और तो कोई ऐसा नहीं दिखाता-जो मेरा सामना कर सके, हाँ ! एक ऐसा है जिस पर मेरा बल नहीं चलता, वह मुझे बरबस रोक लेता है, मैं केवल पर्वत से ही हारा हूँ।

वायु के चले जाने पर महर्षि ने पर्वत को बुलाया, उसे देखते ही

कन्या घबड़ा कर कहने लगी, अरे राम ये तो एक दम जड़ हैं। चेतन का जड़ से कैसे सम्बन्ध, मैं इन्हें नहीं चाहती हूँ।

कन्या से रूक्ष उत्तर को सुन कर महात्मा ने पर्वत राज से पूछा हे गिरिराज! कहिये, आप से भी कोई बड़ा है? पर्वत ने कहा, मैं ही सब से बड़ा हूँ, मैं कभी की दाल गलने नहीं देता, परन्तु एक हमारा बहुत बड़ा शत्रु है, हम सहस्रों उपाय करने पर भी उसका अनिष्ट नहीं कर सकते, वह हमारे शरीर में घर बनाकर हमारे छाती पर कूदता और राज करता है—उल्टे मुझे डाँटता और हमारा अनिष्ट करता रहता है। चूहों के मारे मैं नाकोदम हो जाता हूँ।

पर्वत के जाते ही ऋषि ने चूहे को बुलाया और कन्या से पूछा—उसे देखते ही कन्या उसका गुणानुवाद गाने लगी, वह अत्यंत प्रसन्न हो कहने लगी, ओ हो! ये कैसे सुन्दर हैं, इनके कैसे छोटे २ चंचल पैर हैं, इनकी आंखें तो मृग लोचनों को मात कर रही हैं। इनका मुख कितना शोभायमान है, ये कैसे भले मालूम होते हैं। हाँ! ये योग्य है ऋषि ने कन्या की सब बातें सुन कर-कारण समझ लिया और तत्काल उसे पूर्ववत चुहिया बना दिया, कुछ देर में दोनों फुदकते हुये पहाड़ की तरफ चले गये, सत्य है-जन्म स्वभाव नहीं छूटता।

२५—बिना जाँचे किसी को नकल मत करो।

समझि-बूझि नर-परखि के, खोटो-खरो निहार।
लेना है सो लेई ले—मनवा! जग व्योहार॥

(१)

किसी जंगल में एक महात्मा रहते थे, आसपास के गांवों में उनके सहस्रों शिष्य थे, बाबा जी कभी २ शिष्यों के पास भी आते जाते रहते थे। उनका ध्यान योग की तरफ अधिक रहता था, नित्य सवेरे

४ ही बजे उठ जाते थे—और अपने नित्य कर्म करने में जुट जाते थे। बाबा जी बराबर अपने शिष्यों को भी उपदेश दिया करते थे। भक्तों! खूब सवेरे उठ कर ही भजन किया करो, इसी से मुक्ति मिलेगी। संसार से अपने को उबारने की यही युक्ति है, भगवान ही सब कुछ हैं।

महात्मा जी नित्य योग की क्रियाओं को करते थे। नेती, वस्ती आदि षटकर्म करने में कभी नहीं चूकते थे। एक शिष्य उनका रोज रोज यह देखा करता था, उसने भी बिना सोचे समझे उसे करना चाहा, एक सूत की लच्छी ले आया, और तत्काल नेती बना लिया, दूसरे दिन उसने १२ गज की वस्ती भी बना ली।

एक दिन सवेरे उठ कर शौचादि से निवृत्त होकर लगा नाक में नेती घुसेड़ने, परन्तु वह एकाएक एक ही दिन में कहाँ से पार हो, बहुत थक कर उसे हटा दिया—पश्चात् उसने बस्ती के कपड़े को उठाया और धीरे २ निगल गया। अब तो उसकी बड़ी दुर्दशा हुई, अब निकाले तो कैसे निकाले। बड़ी विपद में पड़ा, घण्टों परीशान रहा, जब ऊपर को खैंचता रहा, तब जान पड़ता था कि आँखें खिंची आ रही हैं।

धीरे २ दश बज गया, आस पासके पड़ोसियों को यह बात मालूम हुई, सभी दौड़ आये और उसकी मूर्खता पर पछताने लगे, अन्त में सभी लोग मिल कर उसे महात्मा के पास ले गये, उन्होंने उपर से घी डाल २ कर बड़े परिश्रम से उस वस्त्र को निकाला, वस्त्र तो निकल गया पर वह रोग से छुटकारा न पा सका, जन्म भर हृदय-रोगमें मरता रहा। महात्माओं ने ठीक कहा है—

देखा देखी साधे योग, छीजे काया बाढ़े रोग।

बिना जाँचे काम करने का यही परिणाम होता है, योग भी नहीं सधा उल्टे और रोग भी आ गया, संसार में सभी बातें सोच समझ कर करनी चाहिए।

(२)

एक गाँव के बगीचे में कुछ बढ़ई लोग काम करते थे। दो पहर

को सभी अपना-अपना काम बन्द कर खाने के लिये चले जाते थे। उसी बाग में बन्दरों का एक झुण्ड रहा करता था। एक दिन बढ़ई लोग शहतीर चीर रहे थे। दो पहर तक वह नहीं चिरा-सकी अधूरी रह गई। बढ़ई लोगों ने वहाँ पर एक खूँटा ठोक दिया और सभी सामान रख कर भोजन करने के लिए गाँव में चले गये।

बढ़ई लोगों के चले जाने पर सभी बन्दर वहाँ इकट्ठे हो गये, और उनके औजारों को लेकर उसी प्रकार काम करने लगे, कोई रन्दा चलाने लगा, कोई बसूला चलाने लगा और कोई रुखाने से काम लेने लगा,— इसी प्रकार सभी उत्पात करने लगे। कुछ देर बाद ५,७ बन्दर उस शहतीर पर जा जुटे, और उस पर उछलने लगे। खूँटे के ऊपर जितना चीरा हुआ था उसी में पैर डाल २ सभी कौतूहल मचाने लगे। दो तीन बन्दर मिलकर उस खूँटे को भी हिलाने लगे। खूँटा खूब ठोका हुआ था, टस से मस नहीं हुआ, अब तो बन्दर और भी जी जान से उसे हिलाने लगे।

बन्दरों ने खूब जोर लगाया, बाद में बढ़इयों की तरह आरा हिलाने लगे, अब तो और किलकारी मार २ कर उठे और हिलाने लगे। एकाएक खूँटा उछट पड़ा, ५,७ बन्दर उसी झटके में आकर धड़ाम से धरती पर आ गिरे और खूँटा भी लद गया। उधर जो ५, ७ बन्दर शहतीर के भीतर पैर डाले बैठे थे। खूँटा छटकते ही उसी में दब गये, बाकी बन्दर तुरत नौ दो ग्यारह हुए।

भोजन के बाद लौटने पर बढ़ईयों ने बन्दरों को मरे देखा वे उनकी मूर्खता पर खूब हँसे। सत्य है—बिना जाँचे किसी काम के करने में बुराई है,—देखो, बन्दरों की दुर्दशा! बिना जाने हुए खूँटा उपारने में कैसा दण्ड मिला। इसी भाँति जो मनुष्य, बिना जाँचे किसी की नकल करेगा, वह भी इन बन्दरों के समान दुर्दशा को प्राप्त होगा।

एक गाँव में एक बड़ा कृपण महाजन रहता था। वह बराबर दूस
को ठग-ठग कर धन जुटाया करता था। दिन रात गद्दी पर ही बै
रहता। कहीं घूमने-घामने के लिये भी नहीं जाता था। सबसे व
दोष उसमें यह था कि वह दूसरों की नकल करने में खुद उस्ताद था

दैव योग से उसे मन्दाग्नि हुई और धीरे-धीरे उसे अतिसार शु
हो गया। अब तो बनियाँ बड़ी विपत्ति में फँसा। कैसे गद्दी पर बैठे
यहाँ तो घण्टे २ पर दस्त आ रहे हैं। उसने सैकड़ों अपने मनकी दव
इयाँ खाईं पर कोई फायदा नहीं हुआ। अब तो अतिसार के साथ-सा
शूल भी प्रकट हो गया।

उसी गाँव में रामसिंह नामके एक जमींदार रहा करते थे, उन
पेट में भी एक बार शूल उत्पन्न हुआ था, विचारे बड़े परेशान हु
थे, हजारों रूपये उन्होंने औषधि में फूँक दी थी—वर्षों मारे-मारे फि
थे, परन्तु कहीं से उन्हें लाभ नहीं हुआ था, अचानक एक बाबाजी
उनकी भेंट हुई और उन्होंने एक दवा बतलादी, जिससे जमींदा
साहेब एक ही दिन में अच्छे हो गये थे, वह दवा इसी बनिये व
दूकान से गई थी।

बनिया को उस दवाई का नाम मालूम था, उसने तुरंत उस व
डिब्बी खोल कर देखा, उसके पास दूकान में मौजूद थी, वह अब औ
अधिक विलम्ब नहीं कर सकता था, एक तो दस्त और दूसरे दर्द दोन
उसे तकलीफ दे रहे थे। उसका दम निकला जा रहा था। वह तुर
दवा बनाने के फेर में पड़ गया—न कुछ सोचा न समझा और न जमीं
दार साहेब से ही पूछा कि दवा कैसे बनाई जाती है? आप ने कैसे
बनाया था? वह इतना ही जानता था—बाबू रामसिंह का दर्द अच्छा
हो गया है। एक ही दिन में उनकी सारी व्याधि मिट गई है हम भ
एक ही दिन में अच्छे हो जायेंगे।

उस दवाई का नाम था जमालगोटा। रामसिंह को मलोपण ह

गया था, कब्ज की शिकायत थी। दस्त नहीं होता था। पेट में मल सूख गया था। इस कारण से खराब इनके पेट में शूल उत्पन्न हुआ था। उसकी दवा बनाया था साधु ने जमालगोटा। यहाँ तो लाओ जी को दस्त पर दस्त आ रहे थे हाजमा शक्ति खराब हो गई थी। अन्न पेट में टिकता ही नहीं, वायु की वृद्धि है, इस से पेट में दर्द शुरू हुआ है।

बनिये ने डिब्बे से १ मुट्ठी जमालगोटा निकाला और रेंडी की तरह फोड़कर उसका गुदा इकट्ठा किया। बिना शुद्ध किये ही सोचने लगा कैसे खायँ। चीज तो बड़ी अच्छी है—कहते हैं कि यह शरीर से सारा रोग निकाल कर बाहर कर देता है।

यह बैठे २ धीरे २ चिलिया बदाम की तरह एक एक दाना खाने ा। स्वाद तो नहीं मिलता था पर करे तो क्या, अच्छे होने की ा थी। कुछ देरमें २०, २५ दाना खा गये. आगे और खाने ही े थे कि अन्दर के हूल ने रोक दिया।

अब तो हूल पर हूल आने लगे। दनादन कै होने लगी। एक तो दा शरीर दूसरे दस्त ने कमजोर बना दिया। और तीसरी बला हूल भी सरपर सवार हुई बनियां कहां तक रोक सकता था, हूल इनकी हुलिया बिगाड़ दी। वह पृथ्वी पर पड़ गया. इतने रुकी छुट्टी ां मिली, थोड़ी ही देरमें अपान वायु ने अपनी टोंटी एक दम खोल . अबतो एक मनट का भी फुरसत नहीं. लगा शरीर का रोग सट २ पृथ्वी तत्व के दरवाजे से बाहर हने। थोड़ी देरतक तो सेठ जी होश रहा बाद एक दम बेसुध हो गये, इनका सारा शरीर; देह के ऽ हुए रोग से जो शरीर से बाहर हुआ था, लथ-पथ हो गया। पास सभी अदमी जुट गये। लोगों ने देखा कि लाओ जी की नाड़ी बन्द हो गई।

बिना जांचे नकल करने का परिणाम देखो, सेठ जी चल बसे सभी आदमियों को चाहिये, कि खूब सोच समझ कर काम करें।

संसार की समर स्थली में बुद्धि बल से काम लो।
जब तक न जानो मर्म सारा, कर्म के अंजाम को॥
तब तक न उस में हाथ दो परिणाम बिन जाने अहो।
होगा कठिन दुख भोगना इस हेतु तुम बचते रहो॥

२६—लोभ न करो।

लोभ भलो करिबो नहीं, याते जनम नशाय।
गांठ दाम खोवैं सबें, करि करि के दुख पाय॥

(१)

एक नगर में एक लोभी सुनार रहता था। रात दिन उसके पेट में लोभ घुसा रहता था। कैसे पावें और धन्ना सेठ हो जायँ,—यही वह दिन रात सोचा करता था।

एक दिन उस नगर में एक रसायनिक महात्मा आये। खबर पाते ही सुनार तुरत दौड़ गया, और बड़ी भाव भगत से उनके पैरों पर गिर पड़ा। महात्मा ने उसे आशीर्वाद देकर बिठाया। बहुत देर तक वह बाबाजी का गुणानुवाद गाता रहा। इसी भांति वह नित्य बाबाजी के दर्शनों को आता और उनकी सेवा किया करता था।

एक दिन बाबा जी जाने लगे, सभी लोग उन्हें पहुँचाने लिये नगर से बाहर तक आये, बाबाजी ने सभी भक्तों को तो आशीर्वाद दे दे कर लौटाया, परन्तु सुनार नहीं लौटा। उसने बाबाजी की गठरी मोटरी उठाली, और कहा, महाराज हम तो शरण में ही अपना जीवन बितावेंगे। जहां आप रहेंगे वहीं रहकर आपकी सेवा करेंगे। सन्तों की शरण में जाने पर मनुष्य का कल्याण हो जाता है। संत की महिमा वेद न जाने। संत ब्रम्हज्ञानी आप परमेश्वर है।

महात्माने सुनारको बहुत समझाया, परतु वह लोभी-जड़ अपने हठ पर तुला रहा। जब साधूने देखा कि यह किसी प्रकार नहीं मानता, तब

ंने एक युक्ति ढूंढ़ निकाली—वे सोचने लगे कि यह सुनार लोभी विना कुछ प्राप्त किये नहीं मानेगा। इस लिये इसे कुछ दे कर छुड़ाना चाहिये।

महात्मा ने कहा, बेटा! सुनो, मैं तुम्हें एक ऐसी युक्ति बताता हूँ, सो तुम्हारा बड़ा उपकार होगा, लोक परलोक बना सकोगे, घर बैठे हें अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष आदि पदार्थ मिल जायेंगे। सोनार व चूकने वाला था? उसने तत्काल कहा, भगवन्! जैसी आपकी च्छा हो वैसी ही करें। हमलोग तो आपके दासानुदास हैं, जैसी भाज्ञा देंगे वैसी करेंगे। हम लोग कभी आज्ञाका उल्लङ्घन नहीं कर सकते, हमारे बाप दादे सभी संतों के भक्त होते चले आ रहे हैं, संतों की सेवा से बढ़कर हमारे पूर्वज कोई दूसरा धर्म नहीं समझते थे।

बाबाजी ने कहा देख! यह एक बटिया मैं तुझे देता हूँ, यह नित्य ५२ तोले सोना तुझे बना दिया करेगी। ५२ तोले तांबा गलाकर उसी में डाल कर इसे निकाल लिया करना, तुम्हारा गला हुआ ताँबा सोना हो जायगा। लेकिन याद रख, लालच न करना, ५२ से अधिक मत बनाना। यह बटिया तो हजारों तोले बना सकती है, लेकिन तुम रोज बावन ही तोले बनाना, परन्तु बनाकर सब खा भी न जाना, आधा धर्म करना, उसका आधा दीनों की सहायता में लगाना, जो कुछ बच रहे उसका आधा आप खर्च करना और आधा जमा रखना। १ वर्ष के बाद आकर हम अपना धन और यह बटिया तुमसे ले जायेंगे।

सुनार बटिया लेकर नगर में आ गया, और उस दिन से ५२ तोले सोना बनाने लगा। वह लोभी था ही, दिन में ८, १० बार बनाने लगा,एक दिन उसके मनमें यह आयी कि हजार दो हजार तोले में यदि बटिया छोड़ी जाय तो बहुत सोना तैयार हो, उसी दिन उसने १००० तोले तांबा गलाकर उस में बटिया छोड़ी। इसबार वह बटिया उसी में गल गई, और वह हजार तोले तांबा भी सोना नहीं बना, बल्कि एकदम लाल हो गया।

सुनार अपने किये पर पछताने लगा. लोभ बड़ी बुरी बला है, यदि लोभ न करता तो रोज ५२ तोले सोना बना लिया करता, परन्तु लोभने उसे चौपट कर दिया, अब हाथ पर हाथ रख कर मलने लगा।

दूसरे साल ठीक समय पर महात्माजी आये उन्होंने इससे अपन बटिया और धन मांगा। लोभी सुनार ने रोकर अपनी सारी कथा क सुनायी, महात्मा ने इसके लोभ पर दुःख प्रकट किया, और हजार तोल तांबा जिसमें वटिया थी—लेकर जङ्गल का रास्ता लिया। सभी आद मियों को सुनार की इस कहानी से लाभ उठाना चाहिये।

(२)

किसी गांव में एक लकड़िहारा रहता था, दिन भर जङ्गल जाकर लकड़ी काट लाता और सांझ को बाजार से बेच कर जो पै मिलते थे उस से अपने कुटुम्बका पालन करता था।

एक दिन वह जङ्गल में लकड़ी काटने के लिये गया, ढूँढ़ते ढूँढ़ दोपहर को उसे एक सूखा वृक्ष दिखाई पड़ा जो एक तालाबके ऊपर था लकड़िहारा उसीके ऊपर चढ़ कर लकड़ियाँ काटने लगा। धीरे धी बहुत लकड़ी उसने काट कर तालाब के मेड़ के उपर गिराया। अचान लकड़ी काटते समय उसकी कुल्हाड़ी उछर गई और हाथ से छूट क छप से अथाह जल में जा गिरी।

लकड़िहारा गरीब था, यही एक कुल्हाड़ी ही उसकी पूँजी थी इसी से उसके कुटुम्ब का पेट चलता था, उसे जल में गिरते ही र उठा और हाय २ करता हुआ पेड़ से नीचे उतरा। अब लकड़ियां कौन बटोरता है, उसकी तो चिंतामणि ही खो गई, रोने के सिवा उसे औ कुछ नहीं सूझता था।

उसे रोते २ संध्या हो चली, खुद वह उतने पानीमें पैठ नहीं सकत था, दूसरा कोई सहायक भी नजर नहीं आता था, बिलखते रहने के सिवा और क्या कर सकता था। इसकी दीन दशा देख जलदेवत को दया आ गई और उन्होंने प्रकट होकर पूछा क्यों रोते हो

लकड़िहारे ने कहा महाराज ! हमारी कुल्हाड़ी जल में गिर पड़ी है हम बहुत गरीब हैं उसीसे लकड़ी काट कर अपना गुजर करते थे। आज वह भी हम से छूट गई, अब हम क्या करेंगे, हमारे बाल-बच्चे भूखों मर जायेंगे। जल देवता ने कहा—ठहरो, मैं तुम्हारी कुल्हाड़ी ला देता हूँ।

जलदेवता ने डुब्बी मार कर एक सोने की कुल्हाड़ी निकाल कर दिखाया और लकड़िहारे से पूछा क्या यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है ? उसने कहा नहीं, यह हमारी नहीं है। इसके बाद उन्होंने दूसरी चाँदी की कुल्हाड़ी निकाल कर दिखायी और पूछा क्या यह तुम्हारी है ? परन्तु उसने कहा नहीं, यह नहीं है। इसके बाद उन्होंने उसको लोहे की कुल्हाड़ी दिखाया देखते ही वह प्रसन्न हो उठा और बोला, हाँ ! हाँ ! यही हमारी कुल्हाड़ी, यही है। जल देवता ने उसकी सच्चाई पर प्रसन्न होकर, उसकी कुल्हाड़ी उसे दे दिया, और थोड़ा पुरस्कार भी दिया। लकड़िहारा पुरस्कार और अपनी कुल्हाड़ी पाकर बड़ा खुश हुआ, अपनी लकड़ी समेट अँधियारा होने पर बाजार में पहुँचा और उसे बेच कर घर आया, दश पाँच रोज तो खूब मौज उड़ाया, परन्तु फिर उसी प्रकार लकड़ियों से अपना गुजर करने लगा। एक दिन उसके मन में लोभ घुस गया, और उसने उसी पेड़ पर चढ़ कर अपनी कुल्हाड़ी पानी में जान बूझ कर गिरा दिया—और झूठ मूठ चिल्ला २ कर रोने लगा।

घंटों रोता रहा, एक पहर बीता, दोपहर बीता तीसरा पहर भी बीत गया, जल देवता ने समझा आज इसके दिल में लोभ घुस गया है, इसे अवश्य कुछ दण्ड देना चाहिये। पहले के समान वे जलसे प्रकट हुये, और बोले क्या चाहता है ? लकड़िहारा तो सब बातें जानता ही था, तुरत बोल उठा भगवन् ! हमारी कुल्हाड़ी जल में गिर गई है, मुझ अनाथ की यही पूंजी है। जल देवता ने कहा—ठहरो, मैं तुम्हें दिखाता हूँ, इतना कह कर वे जल में डुब्बी लगा एक सोने की

कुल्हाड़ी निकाल लाये और बोले क्या यह तुम्हारी कुल्हाड़ी है ! उस लकड़िहारे ने कहा, नहीं यह हमारी नहीं है। इस बार जल देवता दूसरी चांदी की कुल्हाड़ी दिखाकर बोले क्या यह तुम्हारी है ? उस चमकीली कुल्हाड़ी को देखते ही लोभी लकड़िहारे के जीभ पर पानी आ गया। वह झट से बोल उठा—हाँ हाँ यही हमारी कुल्हाड़ी है; लाओ मुझे दो. जल देवता ने देखा यह तो बड़ा लोभी है, चांदी की कुल्हाड़ी को अपनी बना रहा है। अच्छा,—कहते हुये वे बोल उठे। देखो लालच बुरी चीज है "अब मिलती है तुम्हारी कुल्हाड़ी" चाँदी की कुल्हाड़ी लिये हुये जल देवता उस तालाब में अन्तर्धान हो गये। लकड़िहारा सिर धुन २ कर पछताने लगा। चांदीकी कुल्हाड़ी के लिये अपनी कुल्हाड़ी भी खो बैठा।

त्यागो न तुम सर्वस पड़कर लोभ के जंजाल में।
खोओ न अपना स्वत्त्व सुस्थिर स्वार्थ के दुश्चाल में॥
रोना पड़ेगा अन्त में निज धर्म का पालन करो।
सत्कर्म में बढ़ते हुये विघ्नादि से तुम मत डरो॥

२७—लोभ का दंड।

पापी वरु पापी नहीं, लोभ पाप को रूप।
सुर नर वर्णित सकल मत, लालच दुर्गुण भूप॥

(१)

एक गांव में एक अवारा कुत्ता रहता था, वह बड़ा भारी चोर भी था। जहाँ सन्नाटा पाता, चुपचाप खाने पीने की चीजें पाता—धीरे से उठाकर ले भागता था। छोटे २ बच्चे जहाँ हाथ में लिये कुछ खाते रहते थे, वह तुरत उनके पीछे लग जाता था और जैसे बनता था, छीन छान कर खा लेता था।

गाँव वालों को इसने ऊवा दिया था, कई वार सबों ने इसे पीटा भी, पर इसकी आदत नहीं छुटी।

एक दिन यह किसी के घरसे एक रोटी ले कर भागा, लोगों ने उसका पीछा किया। जब इसने देखा कि आज जरूर पीटे जायेंगे, तो इतने जोर से दौड़ा कि सब पीछे छूट गये। कुत्ते का दूर निकल जाते देख सभी खदेरने वाले वापस लौट आये। कुत्ता रोटी लिये नदी किनारे पहुंचा, जल के किनारे पहुँचते ही उस ने अपनी परछाहीं देखकर विचार किया कि यह दूसरा कुत्ता रोटी लिये जा रहा है।

कुत्ता बड़ा ही लोभी था—उसने सोचा ठीक है. एक रोटी हमारे पास है ही, दूसरी यह लिये ही जा रहा है, मार कर यह दूसरी भी छीन लूँ, ऐसा सोचकर उसने बड़ी जोर से भूका, उसका भूकना था कि रोटी नदी में गिरकर वह गई। कुत्ता छट-पटाने लगा, परन्तु छट पटाने से क्या होता है, अब तो रोटी चली ही गई। लौटकर थोड़े ही आ सकती है। महात्माओं का उपदेश है कि लोभ न करो, नहीं तो अपनी वस्तु भी चली जायगी। जैसे कुत्ते की रोटी भी वह गई, वह एक से दो करना चाहता था, परन्तु एक भी नहीं रही। इससे शिक्षा मिलती है कि लोभ न करो और इससे वचते रहो—यही सभी दुर्गुणों को उत्पन्न करता है इससे सभी पाप होते हैं।—

(२)

लक्ष्मी कुण्ड पर लछमन नामका एक लोभी भक्त रहता था। वह दिन रात सिद्धियों के फेर में पड़ा रहता था। वह नित्य सवेरे सीता कुंडमें स्नान कर विश्वनाथ की पूजा किया करता। एक दिन जब वह सीता कुंड पर स्नान करने गया कि सीताजी के मन्दिर में उसे एक झोली दिखलाई पड़ी, उसने उसे उठा लिया और घर पर लाकर रक्खा, दोपहर को जब विश्वनाथ जी की पूजा कर लौटा तब उस झोली को खोला, उसमें कुछ यंत्र लिखे हुये कागज थे। उसने उसे पढ़ना आरंभ किया, पढ़ते २ उसे एक यक्षिणी का मंत्र मिला, अब क्या था? दो ही

एक दिनमें उसने उस मंत्र को कंठाग्र कर लिया और तीसरे ही दि
एक वट वृक्ष के नीचे बैठकर उसका जप भी करने लगा। कुछ दिन
यक्षिणी प्रसन्न होगई और वर दिया कि तुम्हें रोज पाँच अशर्फियाँ
करेंगी, लेकिन उन्हें धर्म में खर्च करना। दूसरे दिन से उसे
र्फियाँ मिलने लगीं, लोभी ने खुश हो अपनी सारी सम्पत्तियों को
हंडे में डाल दिया और उसी हंडे में उन्हें इकट्ठा करने लगा।
दिन तक यक्षिणी अशर्फियाँ देती रही, परन्तु जब उसने देखा कि
कुछ नहीं करता तो रुष्ट हो गई और उस हंडेको उठा ले गई। अ
लछमन बड़ा सटपटाया, पहले तो खूब रोया, और हाय! अश
हाय अशर्फी। कहता हुआ पागलोंकी तरह बनारस की गलियोंमें घू
लगा। कुछ दिनके बाद उसने फिर यक्षिणी की पूजा की इस
महीनों मंत्र जपता रहा, परन्तु यक्षिणी नहीं आई—लोभका परिण
बुरा होता है।

भूलो न तुम तो मनुज हो, इस लोभ को छोड़ो अहो।
इस नाशकारी कर्म से मुख शीघ्र तुम मोड़ो अहो॥
बन कर अहो तुम कर्मयोगी वीर उद्योगी—बनो॥
परमार्थ के कारण तथा धर्मार्थ सहयोगी बनो॥

२८—लोभ का दुष्परिणाम

लोभ सरिस अवगुण नहीं, तप नहिं सत्य समान।
तीरथ नहि मनशुद्धि सम, विद्या सम धन आन॥

एक जंगलमें एक बूढ़ा बाघ रहता था, वह दौड़ धूपकर अपना नि
करने में अशक्त था। उसने सोचा कि अपने माँद में— जिन आदमि
को हमने मार-मार कर खाया है—उनके गहने पड़े हैं, उन्हीं को ले
पाँके वाले तालाब पर जा बैठें और जो कोई उधर से आवे उसे गह

का लोभ दिखाकर अपने पास बुलावें। जब वह पाँके में फँस जाय तब आसानी से हम पेट पूजा करें।

विचारने के अनुसार ही बाघ दूसरे दिन कुछ गहना लेकर तालाब के डीह पर जा बैठा, सबेरे से बैठे २ उसे दोपहर को उस मार्ग से एक ब्राह्मण जाता हुआ दिखाई पड़ा, उसने उसे पुकार कर कहा, ब्राह्मण देवता ! सुनो, सुनो, हमारे पास ये गहने पड़े हैं इन्हें ले जाओ।

ब्राह्मण ने बाघ की बातें सुनकर आश्चर्य किया, परन्तु दूर से गहनों की चमक देख चकित हो गया और सोचने लगा, ओहो ! ये तो हजारों रुपये के गहने हैं—किस प्रकार इन्हें प्राप्त करें ? तब तक बाघ ने फिर कहा—ब्राह्मण देवता ! आओ, डरो मत। किसी बात की चिन्ता मत करो ! हमने अपना हिंसक कर्म छोड़ दिया है। मैं चारों धाम की यात्रा कर आया हूँ, हमने सभी तीर्थों में स्नान कर अपने पापों को धो दिया है—मैं तो अब फलाहारी हो गया हूँ। उपकार करना ही हमने अपना धर्म समझ लिया है। तुम निडर होकर चले आओ, तुम ब्राह्मण हो इसी लिये मैं कहता हूँ कि यह धन मैं तुम्हीं को दूँ। तुम निर्धन हो धनवान को तो सभी देते हैं किन्तु मैं तुम्हीं को यह सारा धन दूंगा।

ब्राह्मण लोभी था इतना धन देखते ही लार टपक पड़ा, अतः बा की बातों में आकर तालाब में पैठ गया। थोड़ी दूर जाने पर पाँका उसका पैर फंसने लगा। यह देख उसने कहा भाई बाघ ! मैं तो प में फँस रहा हूँ, कैसे तुम्हारे पास आऊँ।

बाघ ने तत्काल उत्तर दिया, कोई चिन्ता नहीं, मत घबड़ा जोर लगाओ आगे बढ़ो थोड़ा और बाकी है। बाघ के आश्वा देने पर ब्राह्मण ने खूब जोर लगाया और आगे बढ़ा, परन्तु ज्यों आगे बढ़ता गया त्यों २ पाँके में फसता गया—यहाँ तक कि उसे पैर निकालने की भी शक्ति नहीं रही। तब हताश हो बा कहने लगा, भाई ! अब तो मैं नहीं निकल सकता, मैं तो एकदम में फस गया हूँ।

ब्राह्मण की बातें सुनकर बाघ ने कहा ठहरो मित्रवर, मैं सहायता करता हूँ। इतना कहकर बाघ धीरे धीरे वहाँ पहुँच और तेज पंजों से ब्राह्मण को चीरकर खाने लगा।

देखो, लोभ में पड़कर ब्राह्मण की कैसी दुर्दशा हुई, यदि ल करता तो क्यों बाघ द्वारा मारा जाता? अतः कल्याण चाहने मनुष्यों को उचित है कि लोभ से स्वयं बचें और स्वय अपनी स को बचावें।

कहा है— लोभश्चेदगुणेन किम् अर्थात् लोभ जिसमें है तब अवगुण क्या चाहिये?

> है लोभ दुर्गुण दुःखदायी नाशकारी धार है।
> लोभी मनुज संसार में पाता कहीं निस्तार है?
> है बंध काया भोगकारी लोभ में ही क्रांति है।
> जाता ठगा माया-मनुज इस दुष्ट में ही भ्रांति है?

> लोभ तवै कस ऐगुणआन दुजो कस पाप जवै लतुराई।
> सत्य रहै तपते तब कामना शुद्ध वृथा तब तीरथ जाई॥
> सील हुई फिर का गुण और कहा भिनभूपन जौ महिनाई।
> वेद भयो धन ते तब का मृतु कौन जवै अपकीरति छाई॥

२९—सन्तोष से सुख प्राप्त होता है

> सत सुख जो पानो चहै, मनवां कर सन्तोप।
> आशा तृष्णा त्याग दे, मृग मरीचिका रोप॥

(१)

राजा भोज के यहां कालीदास नाम के महाकवि रहते थे वरावर कहा करते थे कि 'सन्तोषी महासुखी'। राजा कहा करता था यह ठीक नहीं—परन्तु कालीदास वरावर अपनी ही पुष्टि किया क

थे। जहां सन्तोष वहीं सुख है, सन्तोष के बराबर और दूसरी वस्तु में सुख नहीं है।

एक दिन कालीदास से कहा कि इसे तुम सिद्ध करो कि सन्तोष से सुख प्राप्त होता है। कालीदास ने कहा अच्छा! मैं दश पांच दिन में ही इसे सिद्धकर दिखाऊँगा कि सन्तोषी सुखभागी होता है।

उसी दिन सायंकाल में आकर कालीदास ने शहर में मुनादी कर दी कि हमारे एक गुरु भाई का देहान्त हो गया है। समय २ पर श्राद्ध संस्कार विधि के अनुसार क्रिया कर्म इत्यादि करता रहा, तेरवें दिन उसने राजाप्रजा सबों को भोजन का निमंत्रण दिया--

भोजन के दिन बीसों प्रकार के सामान बनाये गये। भोजन होते-होते बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई--राजा भी अपने मंत्रियों के साथ पहुँचा, कालीदास ने तुरन्त सबों के भोजन का प्रबन्ध किया। सभी अपने २ स्थान पर बैठ गये, सैकड़ों आदमी भोजन के लिये तैयार हुए बात की बात में सबों के आगे भोजन सामग्री आ गई और लोगों ने श्री गणेश किया।

लोगों के भोजन कर चुकते देख कालीदास सबों के आगे नम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगा--महाराजों! अभी और खाइये, हमारी साध अभी पूरी नहीं हुई है। फिर लोगों ने धीरे २ खाना शुरू किया। कालीदास ने कहा—जितना २ जो अधिक खायेगा उतना उसको रुपया दिया जायगा--यहां तक कि उन्होंने १, १ लड्डू पर १, १ अशर्फी देने का वचन दिया।

अब क्या था? लगे दनादन लड्डू पर लड्डू उड़ाने। गले तक खूब ठूँस ठूँस कर भर लिया, यहां तक कि पानी के द्वारा ग्रास उतारने लगे, सैकड़ों के पेट फूल आये, हजारों तो इतना ठूँस २ कर खा लिये थे कि उनसे उठा ही नहीं जाता था, हजारों तो वहीं पर लेटे २ फें करने लगे, लोभ ने सबों की खूब खबर ली, पचासों अशर्फी लेनेवाले लोभी पेट से कंठ के रास्ते लगे गिन गिन कर लड्डू निकालने।

राजा यह हाल देखकर हँस पड़ा, और उसने कहा ठीक है कालीदास, ये सब असन्तोषी रहे, इसीलिये अशर्फी के लालच में पड़कर सैकड़ों लड्डू उड़ा गये, उसीका फल ये लोग भोग रहे हैं। यदि सन्तोषी होते तो पेट भर खाकर उठ जाते।

हर बात में सन्तोष रखो, खाने पीने में, धन जन में और व्यवहार में, जहां सन्तोष रहेगा वहीं सुख होगा, जहां सन्तोष नहीं वहां सुख नहीं। देखो उन ब्राह्मणों को सन्तोष नहीं था, इसलिये वे एक रोज के लड्डू का फल बीसों दिन भोगते रहे। लड्डू का सूद व्याज समेत उनके पेट से निकल गया, तकलीफ ऊपर से हुई। सन्तोषी बनो नहीं तो रोना पड़ेगा।

३०—अनुचित लाभ उठाने का फल।

अनुचित उचित विचार कै, मनवां कारज साध।
स्वयं स्वार्थ अनुरक्त, जनि उपजावै व्याध॥

रमापुर नगर में कुबेर नाम का एक दरिद्र ब्राह्मण रहता था, उसके ४ बेटे थे। ब्राह्मण ने उस नगर में जब अपनी जीविका चलते नहीं देखी तो बेटों से कहा कि चलो! कल यहाँ से कहीं दूसरे देश को चल चलें। यात्रा का सब सामान ठीक कर रात में सभी सो रहे।

एक पहर रात रहते सभी उठे और चल पड़े, दिन निकल आने पर भी पांचों बराबर चलते रहे। आगे उन्हें एक भयानक जंगल मिला, परन्तु वे बढ़ते ही गये, धीरे २ दोपहर हो आया—कुवार का महिना था, प्यास के मारे सभी घबड़ा गये।

थोड़ी दूर और बढ़ने पर उन्हें एक कुँआ दिखाई पड़ा, वहीं पर पांचों रुक गये और पानी निकालने के लिये गठरी से लोटा और डोरी खोलने लगे, लोटा तो निकाल लिया, परन्तु डोरी दुर्भाग्यवश घर ही पर छूट गयी थी, अब तो वे लोग और दुःखी हुये।

गया कि तुम हजारों रुपये खर्च कर रहे हो, हमसे झूठ न कहना नहीं तो कोतवाल से पकड़ा दूँगा उसे कह दूँगा कि ब्राह्मण कहीं से चोरी करके बड़ा माल उठा लाया है।

ब्राह्मण बड़ा सीधा-सादा था, कायस्थ की बातें सुनकर डर गया और सच्चा-सच्चा भूत का सारा हाल सुना दिया।

कायस्थ बड़ा लोभी था, उसे भी इच्छा हुई कि चलें हम भी अपने बेटों के साथ वहाँ पहुंच कर भूत को डराकर मालामाल हो जायँ।

रात में चारो बेटों को ठीक कर सो रहा। और १ पहर रात रहे घरसे निकल पड़ा, चलते समय इन लोगों ने लोटा लिया परन्तु डोर जानबूझकर छोड़ दिया।

दोपहर होते-होते किसी प्रकार उस कुँए पर पहुँचे, सभी प्यास से मारे तड़फड़ा रहे थे, कायस्थ ने बड़े बेटे से कहा कि जाओ सरपत ले आओ।

बड़े बेटे ने पिता की बात सुनकर मँझलेसे कहा, उठो! सरपत तो ले आओ। मँझले ने सँझले को कहा—देखो, वही तो है-जाओ ले आओ। सँझले ने छोटे लड़के को धक्का देते हुए कहा—जाओ, जाओ! सरपत ले आओ। छोटे ने चिढ़कर कहा, जाते नहीं, तुम्हीं क्यों नहीं ले आते।

प्रेत कुँये में बैठा-बैठा सबों की बातें सुन रहा था। उसने देखा कि इन सबों में एकता है ही नहीं, ये आपस में ही लड़ रहे हैं हमारा कुछ नहीं कर सकते। बस! एकाएक गरजता हुआ कुये से बाहर निकला और बाप बेटों को पीटना आरम्भ किया, दनादन लात घूँसा मुक्का थप्पड़ खूब जमाया, सभी लोटा कपड़ा छोड़ हाय! हाय!! करते भागे। प्रेत बहुत दूर तक पीछा करता गया, और अन्त में लौट आया।

देखो आपस में मतभेद का परिणाम, यदि ब्राह्मणों के समान तुम भी एक दिल होकर रहोगे तो भारी से भारी प्रेत भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेगा, नहीं तो कायस्थों के समान मार खाना पड़ेगा। अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा न करो।

अनुचित फल चाखा चह्यो, का फल पायो मीत।
नष्ट भयो मनवा लख्यो दुख पायो बहु भीत॥
याते नर रह दूर तू, ह्वै जावे जनि क्रूर।
अनुचित मग आगो बढ़े; दुख पावत नर क्रूर॥

३१—मित्रद्रोह का परिणाम धर्मबुद्धि और पापबुद्धि।

मित्रद्रोह सम अघ नहीं, मनवाँ जान सुजान।
को कृतघ्न जो फल चहै नातरु नरक निदान॥

(१)

एक गाँव में दो मित्र रहते थे। एक का नाम धर्मबुद्धि और दूसरे का पापबुद्धि था। धर्मबुद्धि दया-धर्म की बातें विचार करता था। पापबुद्धि निरन्तर पापकी चिन्तना में समय व्यतीत करता था।

एक दिन पापबुद्धि सोचने लगा—मैं मूर्ख हूँ, मुझ में विद्या और बल नहीं, धन भी नहीं, कैसे जीवन निर्वाह करूँगा। धर्मबुद्धि बड़ा ज्ञानी है, यदि उसे साथ लेकर कहीं विदेश जाऊँ तो उसके द्वारा कहीं मुझे भी नौकरी मिल जायगी, और उसी के पास रहकर उससे भी चुराकर अथवा ठगकर मैं खूब रुपया कमा लूँगा।

ऐसा सोच—धर्मबुद्धि के पास जाकर बोला, मित्र! अभी तो युवापन है, किसी प्रकार कट रही है, बुढ़ापा आनेपर क्या करोगे? इससे उत्तम यह है कि कहीं विदेश में चलें और धन कमा ले आवें—जिससे वृद्धावस्था में कष्ट न हो। धर्मबुद्धि पापबुद्धि की बातों में आ गया, और दूसरे दिन यात्रा कर दिया।

विदेश में पापबुद्धि अपने मित्र के द्वारा नौकरी पा गया, दोनों एक साथ रहने लगे, धर्मबुद्धि ने बड़ा रुपया कमाया। अन्त में जब घर लौटने को हुए तो धर्मबुद्धि ने पापबुद्धि से कहा—मित्र! तुम

गया कि तुम हजारों रुपये खर्च कर रहे हो, हमसे झूठ न कहना नहीं तो कोतवाल से पकड़ा दूँगा उसे कह दूँगा कि ब्राह्मण कहीं चोरी करके बड़ा माल उठा लाया है।

ब्राह्मण बड़ा सीधा-सादा था, कायस्थ की बातें सुनकर डर गया और सच्चा-सच्चा भूत का सारा हाल सुना दिया।

कायस्थ बड़ा लोभी था, उसे भी इच्छा हुई कि चलें हम भी अपने बेटों के साथ वहाँ पहुंच कर भूत को डराकर मालामाल हो जायँ।

रात में चारो बेटों को ठीक कर सो रहा। और १ पहर रात रहते घरसे निकल पड़ा, चलते समय इन लोगों ने लोटा लिया परन्तु डोरी जानबूझकर छोड़ दिया।

दोपहर होते-होते किसी प्रकार उस कुँए पर पहुँचे, सभी प्यास के मारे तड़फड़ा रहे थे, कायस्थ ने बड़े बेटे से कहा कि जाओ सरपत ले आओ।

बड़े बेटे ने पिता की बात सुनकर मँझलेसे कहा, उठो! सरपत तो ले आओ। मँझले ने सँझले को कहा—देखो, वही तो है-जाओ ले आओ। सँझले ने छोटे लड़के को धक्का देते हुए कहा—जाओ, जाओ! सरपत ले आओ। छोटे ने चिढ़कर कहा, जाते नहीं, तुम्हीं क्यों नहीं ले आते!

प्रेत कुँये में बैठा-बैठा सबों की बातें सुन रहा था। उसने देखा कि इन सबों में एकता है ही नहीं, ये आपस में ही लड़ रहे हैं हमारा कुछ नहीं कर सकते। बस! एकाएक गरजता हुआ कुये से बाहर निकला और बाप बेटों को पीटना आरम्भ किया, दनादन लात घूँसा मुक्का थप्पड़ खूब जमाया, सभी लोटा कपड़ा छोड़ हाय! हाय!! करते भागे। प्रेत बहुत दूर तक पीछा करता गया, और अन्त में लौट आया।

देखो आपस में मतभेद का परिणाम, यदि ब्राह्मणों के समान तुम भी एक दिल होकर रहोगे तो भारी से भारी प्रेत भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकेगा, नहीं तो कायस्थों के समान मार खाना पड़ेगा। अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा न करो।

अनुचित फल चाखा चह्यो, का फल पायो मीत।
नष्ट भयो मनवा लख्यो दुख पायो बहु भीत॥
याते नर रह दूर तू, ह्वै जावे जनि क्रूर।
अनुचित मग आगो बढ़े; दुख पावत नर क्रूर॥

३१—मित्रद्रोह का परिणाम धर्मबुद्धि और पापबुद्धि।

मित्रद्रोह सम अघ नहीं, मनवाँ जान सुजान।
को कृतज्ञ जो फल चहे. नातरु नरक निदान॥

(१)

एक गाँव में दो मित्र रहते थे। एक का नाम धर्मबुद्धि और दूसरे का पापबुद्धि था। धर्मबुद्धि दया-धर्म की बातें विचार करता था। पापबुद्धि निरन्तर पापकी चिन्तना में समय व्यतीत करता था।

एक दिन पापबुद्धि सोचने लगा—मैं मूर्ख हूँ, मुझ में विद्या और बल नहीं, धन भी नहीं, कैसे जीवन निर्वाह करूँगा। धर्मबुद्धि बड़ा ज्ञानी है, यदि उसे साथ लेकर कहीं विदेश जाऊँ तो उसके द्वारा कहीं मुझे भी नौकरी मिल जायगी, और उसी के पास रहकर उससे भी चुराकर अथवा ठगकर मैं खूब रुपया कमा लूँगा।

ऐसा सोच—धर्मबुद्धि के पास जाकर बोला, मित्र! अभी तो युवापन है, किसी प्रकार कट रही है, बुढ़ापा आनेपर क्या करोगे? इससे उत्तम यह है कि कहीं विदेश में चलें और धन कमा ले आवें—जिससे वृद्धावस्था में कष्ट न हो। धर्मबुद्धि पापबुद्धि की बातों में आ गया, और दूसरे दिन यात्रा कर दिया।

विदेश में पापबुद्धि अपने मित्र के द्वारा नौकरी पा गया, दोनों एक साथ रहने लगे, धर्मबुद्धि ने बड़ा रुपया कमाया। अन्त में जब घर लौटने को हुए तो धर्मबुद्धि ने पापबुद्धि से कहा—मित्र! तुम

बहुत कम रुपया कमाये हो और मैं खूब रुपया कमाया हूँ—हम दोनों एक साथ आये हैं इसलिए दोनों रुपया मिलाकर आधा-आधा आपस में बाँट लो।

दोनों आदमी रुपया लेकर अपने घर की ओर चले, जब ग्राम १ कोस रह गया, तब पापबुद्धि ने धर्मबुद्धि से कहा मित्र! यह सब रुपया एकबार ही घर पर मत ले चलो, नहीं तो परिवारमें शीघ्र समाप्त हो जायगा। थोड़ा द्रव्य ले चलो और बाकी इसी अज्ञात जंगल में कहीं गाड़ दो। जब जब आवश्यकता पड़ेगी तब २ यहां से ले जाया करेंगे—धर्मबुद्धि ने कहा अच्छी बात है गाड़ दो

एक झाड़ी के किनारे दोनों आदमियों ने गड्ढा खोद कर धन का बड़ा भाग गाड़ दिया। और थोड़ा २ लेकर अपने २ घर पर आये। इधर उसी रात में पापबुद्धि वहां जाकर सभी धन उठा लाया।

थोड़े दिन बीतने पर पापबुद्धिने धर्मबुद्धिके पास जाकर कहा-मित्र! मेरा परिवार बड़ा है, जो कुछ धन हम लाये थे सभी खर्च हो गया। चलो, चलकर थोड़ा धन और ले आवें। दोनों आदमी जंगल में गये, परन्तु स्थान खोदने पर वहाँ कुछ न मिला, पापबुद्धि चिल्लाकर कहने लगा, धर्मबुद्धि! यह तुम्हारा ही काम है। तुम्ही ने यहाँ से धन चुराया है, दूसरा जानता कौन है? यह तुम्हारा ही काम है।

धर्मबुद्धि ने कहा, नहीं—कदापि नहीं, तुम ले गये हो। इस प्रकार परस्पर लड़ते झगड़ते न्यायालय में पहुँचे।

न्यायाधीश बड़े विस्मय में पड़ा। किसको चोर साबित करे। इसी बीच में पापबुद्धि बोला, आप लोग हम लोगों का फैसला नहीं कर सकते। वहीं वनदेवता और वनदेवी बतला देंगी कि किसने धन चुराया है? मैं कल ४ बजे वहां पूछूंगा कि हम दोनों में कौन चोर है? आपही निर्णय हो जायगा।

न्यायाधीशों ने पापबुद्धि की बात मान ली और धर्मबुद्धि को दूसरे दिन ४ बजे उसी जंगल में बुलाया।

बन्धुओं ! धूर्तता तथा कृतघ्नता का परिणाम पापबुद्धि पा गः मित्रघात कभी न करना चाहिये ।

(२)

किसी गाँव से दो मित्र विद्या पढ़ने के लिये काशी जी गये, जब ाढ़ लिख कर दोनों पूरे पंडित हो गये तब अपने घर को लौटे, रास्ते ं रात हो गई और दोनों आदमी एक पेड़ के नीचे वन में रह गये।

रात को दोनों ने भोजन बनाने का विचार किया परन्तु आग कह े आवे, तब उसमें एक ने कहा घबड़ाओ मत, आग तो मैं पैदा क ाता हूँ—तुरत उसने मंत्र के बल से अग्नि उत्पन्न कर दी—दोनें ादमी खाये पीये और उसी पेड़ के नीचे सो गये।

रात को दूसरे ने सोचा अरे ! इसने तो खूब विद्या सिखी है, इसके सामने हमारी कौन पूछ करेगा, इससे तो इसे मार डालना चाहिये, तुरत तलवार निकाला और पैर से शिखा दाब गर्दन पर तलवार चलाना चाहा, इतने में वह जगा और बोला भाई ! यह क्या करते हो ? उसने कहा ठीक है, हम तुम्हें मार डालेंगे, वह विचारा बहुत प्रार्थना करने लगा परन्तु इसने एक नहीं माना, अन्त में वह विचारा असहाय हो चिल्लाने लगा।

दुष्ट मित्र ने तलवार का वार किया, परन्तु अँधेरे में उसके गर्दन पर नहीं बैठी, आधा दुष्ट के पैर पर और आधा पत्थर पर गिरी, दुष्ट का पैर कट गया और तलवार भी टूट गयी दुष्टके पैर से इतना रक्त बहा कि वह उसी रात में मर गया।

मित्र-घात ते नश गयो, तन धन वंश वितान।
याते याको त्यागि कै, मित्र सप्रेम कर ज्ञान ॥
उभय लोक नशिहैं अहो, मित्र-द्रोह ते मीत।
अबहूँ चेत न मूढ़ हो, तज कुकर्म कर प्रीत ॥

३२—मूर्ख नौकर ।

सखा भृत्य गुरु नारि औ, पंच पुरोहित जाँच ।
योग्य विना राखे अहो ! आवत निश दिन आँच ॥

पन्ना लाल सेठ बड़े धनवान आदमी थे । उनके यहाँ एक नौकर था—वह बड़ा मूर्ख था उसे कितना ही समझाया जाता था, परन्तु वह ना था एक दम लेटर वक्स का वोमाँ, चाहे उस में व्याह की चिट्ठी ालो या मरनी की, न हंसेगा और न रोवेगा ।

एक दिन सेठ जी भोजन कर रहे थे—सेठ जी ने नमक मांगा ौकर तुरत हाथ पर ले आया, सेठजी ने कहा, देखो, अव जो चीज ाँगा जाय उसे तश्तरी में रख कर लाना । नौकर ने कहा जी अच्छा !

कुछ दिन के वाद सेठ जी कहीं वाजार जाने लगे और नौकर से हा कि जूता ले आओ, वह तुरत एक तश्तरी में रख कर ले आया, ह देख सेठ जी उसकी दुर्वुद्धि पर वहुत दुःखी हुये ।

ऋषियों का उपदेश है—

मित्र गुरुहिं सेवक सदा, जानि रखहु निज पास ।
ना जाने विन होइहै, मनवाँ निश्चय नास ॥
बुद्धिमान सेवक विना, सुख का पावे नाथ ।
नीच मूर्ख ह्वै दास जो, दुख फल आवे हाथ ॥

३३-लाल वुझक्कड़ ।

(१)

एक सौदागरों का दल घूमता घामता रात होने पर किसी ग्राम ; वाहर ठहर गया । एक पहर रात रहते ही सव लोग उठे और, ौच से निवृत्त हो स्नान करने लगे । उन सौदागरों में एक वड़ा भक्त ा । नित्य पूजा किया करता था । उसने एक लोटे में पानी भरकर

उसमें एक लाल फूल छोड़ दिया और सूर्य को अर्घ देकर बाकी पानी कूपमें डाल दिया। लोटेका फूल भी कुयें में जा गिरा, सूरज उगते सौदागरों का दल दूसरे शहर के लिये चल पड़ा।

सवेरा होने पर गांव के स्त्री पुरुष जल भरने के लिये उस कुयें पर इकट्ठे हुये, कुँये में एक लाल वस्तु को देखकर सबोंको बड़ा आश्चर्य हुआ, लोग बैठे २ तरह २ की बातें करने लगे, परन्तु कोई निश्चय नहीं कर सका कि क्या बात है। धीरे २, १ पहर दिन चढ़ आया। अन्त में सबों ने अपने गुरु महाराज को बुलाया।

यथा समय लाल बुझक्कड़ जी आये और अपने शिष्यों के बीच में बैठते हुये बोले-क्या है भाई! आज क्यों याद किये हो? शिष्यों ने कुयें का हाल बताया। लाल बुझक्कड़ जी तुरत उठे और कुँये पर जाकर बड़े विचित्र ढङ्ग से झांकने लगे थोड़ी देरतक विचारने के वाद ठहाका मारकर हंसने लगे।

गांव वालों को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने पूछा गुरुजी महाराज आप क्यों हंस रहे हैं। लाल बुझक्कड़ ने कहा, हमने समझ लिया, यह क्या है? गांव वालों ने कहा कि हम लोगों को भी बताइये, लाल बुझक्कड़ ने कहा अच्छा सुनो।

बूझे तो लाल बुझक्कड़, और न बूझे कोय।
कुंआ पुराना होगया, कहिं कांच न निकला होय॥

सब लोग धन्य धन्य कहते हुये उनके पैरों पर गिर पड़े।

लाल बुझक्कड़

(२)

उस गाँव में एक वार हाथी आया। सभी गांव वाले उसे देखने के लिये दौड़ आये। सभी हाथी के स्वरूपको देख देख कर आश्चर्य करने लगे आपस में कहने लगे भाई यह क्या है वापरे वाप! इसका

पेट कितना बड़ा है, यह क्या चीज है पहाड़ तो नहीं, यह तो चलता फिरता भी है इसके माथे में तो एक अजगर लटक रहा है, दादा रे दादा! ये भगवान तो नहीं है।

सभी आदमी अपने गुरु महाराज श्री लाल बुझक्कड़ जी के यहाँ गये और उन्हें सब घेर कर खड़े हो गये। और पूछने लगे कि महाराज यह क्या है? लाल बुझक्कड़ने कहा 'घबड़ाओ मत' मैं अभी बतलाता हूँ कि यह क्या है।

लाल बुझक्कड़ एक बार उस हाथी के चारों ओर घूमे फिर आदमियों के बीच में आकर बोले, ओहो! अरे हमने तो जान लिया। सुनो—

बूझे तो लाल बुझक्कड़, और न बूझे कोय।
सारी रात की अंधेरी, कहुँ जाय इकट्ठी होय॥

सभी वाह! वाह! करने लगे।

३४-गुरु और चेला

गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खेलें दांव।
दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ पाथर की नाव॥

एक शेख चिल्ली एक बार अपने गुरु के यहाँ गया, और बड़ी आव-भगत से दण्डवत कर एक कोने में जा बैठा, धीरे-धीरे दस बज गया। गुरुजी ने समझा जब यह जाय तो काम चले,नहीं तो इसे भी खिलाना पड़ेगा—शेख चिल्ली यह सोचता था कि अब दस बज ही गया है,बिना खाये पिये कहां जायं, आज गुरुजी के यहां ही थैला भरा जाय।

बैठे २ बहुत देर हो गई, गुरुजी ने देखा कि अब यह दुष्ट बिना खाये नहीं उठेगा—तब लाचार हो चेले से कहा उठो, चौका बर्तन करो—भोजन बनावेंगे। शेख चिल्ली उठा और तुरन्त सब इन्तजाम कर दिया।

उसमें एक लाल फूल छोड़ दिया और सूर्य को अर्घ देकर बाकी पानी कूपमें डाल दिया। लोटेका फूल भी कुयें में जा गिरा, सूरज उगते २ सौदागरों का दल दूसरे शहर के लिये चल पड़ा।

सवेरा होने पर गांव के स्त्री पुरुष जल भरने के लिये उस कुयें पर इकट्ठे हुये, कुँये में एक लाल वस्तु को देखकर सबोंको बड़ा आश्चर्य हुआ, लोग बैठे २ तरह २ की बातें करने लगे, परन्तु कोई निश्चय नहीं कर सका कि क्या बात है। धीरे २, १ पहर दिन चढ़ आया। अन्त में सबों ने अपने गुरु महाराज को बुलाया।

यथा समय लाल बुझक्कड़ जी आये और अपने शिष्यों के बीच में बैठते हुये बोले-क्या है भाई! आज क्यों याद किये हो? शिष्यों ने कुयें का हाल बताया। लाल बुझक्कड़ जी तुरत उठे और कुँये पर जाकर बड़े विचित्र ढङ्ग से झांकने लगे थोड़ी देरतक विचारने के बाद ठहाका मारकर हंसने लगे।

गांव वालों को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने पूछा गुरुजी महाराज! आप क्यों हंस रहे हैं। लाल बुझक्कड़ ने कहा, हमने समझ लिया, यह क्या है? गांव वालों ने कहा कि हम लोगों को भी बताइये, लाल बुझक्कड़ ने कहा अच्छा सुनो।

बूझे तो लाल बुझक्कड़, और न बूझे कोय।
कुंआ पुराना हो गया, कहिं कांच न निकला होय॥

सब लोग धन्य धन्य कहते हुये उनके पैरों पर गिर पड़े।

लाल बुझक्कड़

(२)

उस गाँव में एक बार हाथी आया। सभी गांव वाले उसे देखने के लिये दौड़ आये। सभी हाथी के स्वरूपको देख देख कर आश्चर्य करने लगे आपस में कहने लगे भाई यह क्या है बापरे बाप! इसका

पेट कितना बड़ा है, यह क्या चीज है पहाड़ तो नहीं, यह तो चलता फिरता भी है इसके माथे में तो एक अजगर लटक रहा है, दादारे दादा ! ये भगवान तो नहीं हैं ।

सभी आदमी अपने गुरु महाराज श्री लाल बुझक्कड़ जी के यहाँ गये और उन्हें सब घेर कर खड़े हो गये । और पूछने लगे कि महाराज यह क्या है ? लाल बुझक्कड़ने कहा 'घबड़ाओ मत' मैं अभी बतलाता हूँ कि यह क्या है ।

लाल बुझक्कड़ एक बार उस हाथी के चारों ओर घूमे फिर आदमियों के बीच में आकर बोले, ओहो ! अरे हमने तो जान लिया । सुनो—

बूझे तो लाल बुझक्कड़, और न बूझे कोय ।
सारी रात की अंधेरी, कहुँ जाय इकट्ठी होय ॥

सभी वाह ! वाह ! करने लगे ।

३४-गुरु और चेला

गुरु लोभी शिष्य लालची, दोनों खेलें दांव ।
दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ पाथर की नाव ॥

एक शेख चिल्ली एक बार अपने गुरु के यहाँ गया, और बड़ी आव-भगत से दण्डवत कर एक कोने में जा बैठा, धीरे-धीरे दस बज गया । गुरुजी ने समझा जब यह जाय तो काम चले,नहीं तो इसे भी खिलाना पड़ेगा—शेख चिल्ली यह सोचता था कि अब दस बज ही गया है,बिना खाये पिये कहां जायं, आज गुरुजी के यहां ही थैला भरा जाय ।

बैठे २ बहुत देर हो गई, गुरुजी ने देखा कि अब यह दुष्ट बिना खाये नहीं उठेगा—तब लाचार हो चेले से कहा उठो, चौका बर्तन करो—भोजन बनावेंगे । शेख चिल्ली उठा और तुरन्त सब इन्तजाम कर दिया ।

गुरुजी रसोई बनाने लगे, थोड़ी देर में सब तैयार हो गई, गुरुजी ने दो थाल में पड़ोसा, चेले के थाल में सूखा दाल भात रक्खा और अपने थाल में घी, अचार और पापड़ भी डाल लिया। खाने के वक्त गुरुजी की चतुराई देख चेले ने कहा महाराज हम किस पर बैठें, इस पर या उस पर। ऐसा कह कर उसने दोनों थाल छू दिया। गुरुजी ने कहा अब दोनों पर बैठो-यह तो हमारे लायक रही ही नहीं, शेख चिल्ली मजे में सभी उड़ा गया।

मन का मैल न धो सका, मिटा न जगका फंद।
का तारै तू संग ले, काको मन ! मतिमंद॥
स्वार्थ साधना में तुही, है जब लिप्त अजान।
का तोड़े फिर मोह तू, मोही जग अज्ञान॥

३५—मैंने तो शत्रु का पैर काटलिया।

द्वापर में महाभारत की बड़ी भारी लड़ाई हुई उसमें अठारह अक्षौहिणी दल कट गया। एक दिन बड़ा घनघोर युद्ध हुआ, उसमें राजा दुर्योधन के तरफ के कुछ सिपाही मार खाकर भाग खड़े हुये, भागते २ वे एक गाँव में पहुँचे और अपनी बड़ाई करने लगे, गाँव वालों ने पूछा भाई, आप लोगों ने आज क्या किया।—

सिपाहियों में से एक बोल उठा अजी, हमने तो खूब काम किया, ५, ७ पांडवों के महारथियों का पैर ही काट डाला, इस पर गाँववाले बोले भाई ! उनका सिर क्यों नहीं काट लिया ? इस पर सिपाही बोला—अरे सिर क्या काटते, उनका सिर तो पहले ही से कटा था। हम क्या करते, हम ने मारा तलवार और दन्न से सबों का पैर काट लया—इतना सुनते ही गाँव वाले सभी हंसने लगे।

३६—मोकदमे की जड़।

मूरख दुख पावै सदा, मेल तजै जो नीच।
बैर विरोधहिं सब नशै, प्रेम बारि ज्यों कीच॥

किसी गांव में एक धनी अहीर रहता था, उसके ४ लड़के थे, जब उसका अन्तिम समय आया तब उसने चारों लड़कों को बुलाकर कहा, बेटा, सभी आपस में मिलकर ,कारबार करना, सुनो मैं तुमलोगों को काम बांट देता हूँ बड़ा भाई तुम सबों का मालिक रहेगा, मामला मोकद्दमा सब वह देखा करेगा, रोज कचहरी जायगा और सायंकाल में तुम सबों से हिसाब ले लिया करेगा। मँझला भाई हलवाहों का दारोगा रहेगा, कहाँ हल जोता जाय, कहाँ क्या बोया जाय, कब काटा पीटा जाय इत्यादि सम्पूर्ण भार उसके ऊपर रहेगा संझला भाई चरवाहों का दारोगा रहेगा, कितने बैल गाय भैंसें हैं, कहां चरेंगे, क्या खायेंगे, कितना दूध होता है, किस की किस प्रकार रक्षा की जाय इत्यादि सब काम वह सम्हालेगा, और छोटा लड़का घर पर रह कर दिन भर की आमदनी खर्च का जिम्मेदार होगा।

बूढ़े के मरजाने पर चारों भाई नियम पूर्वक काम करने लगे, दिन दूना और रात चौगुनी उन्नति होने लगी। हजारों मन अन्न सवाई और डेवढ़ी पर उठाने लगे, सबों ने खूब रुपया इकट्ठा किया, चारों ओर महतो जी! महतो जी! के धन की प्रशंसा होने लगी।

दूर दूर के हजारों किसान इन से उधार अन्न लेने लगे।

उस गाँव में १०, २० घर ब्राह्मण-ठाकुर भी रहते थे जब वे लोग कभी उधार माँगने जाते थे, तो महतो जी उन लोगों को देखते ही खाट पर से उठ कर दण्ड प्रणाम करते और नम्रता पूर्वक हाथ जोड़ कर कहते थे, सरकार अब तो नहीं है, कहाँ से दें?

यह बात ब्राह्मण ठाकुरों को बुरी लगती थी, आपस में कहते थे देखो इस महता को, दूर दूरके आये सैकड़ों आदमियों को तो अन्न

दे रहा है, हम लोग जाते हैं तो कोरा जवाब देता है—इसका दण्ड इन लोगों को देना चाहिये।

इस प्रकार आपस में सबों ने राय की कि इन चारों भाइयों में किसी प्रकार वैमनस्य कराओ, तभी हम लोगों की दाल गलेगी वरना नहीं, सभी लोग इसी ताक में लगे रहे, बहुत उपाय किये, परन्तु सब व्यर्थ हो गया।

कुछ दिनों के बाद, एक दिन बड़ा भाई कचहरी गया था और इधर मंझला भाई हरवाहे से दक्षिण बहिआर में हल जोता रहा था, संभला भाई भी चरवाहों को लिये उसी बहिआर में अपने गौओं को चरवा रहा था, और दोपहर के समय अपना काम काज समाप्तकर छोटा भाई भी उसी बहिआर में स्नान करने के लिये आया।

तीनों भाई स्नान कर गीली धोती पहिने घर आ रहे थे, गाँव में पैठने पर पहले ब्राह्मण ठाकुरों का मकान पड़ता था—उस समय कई ब्राह्मण ठाकुर एक चौपाल में बैठे महतो जी के बारे में बात-चीत कर रहे थे तब तक तीनों भाई उसी राह से निकले, उन्हें देखते ही ठाकुरों ने पुकारा आइये, महतो जी—आइये! तीनों ने नम्रता पूर्वक कहा—नहीं सरकार! बड़ा काम है अभी स्नान करके आरहे हैं—फिर दर्शन करेंगे।

ब्राह्मण-ठाकुरों के आग्रह से विवश होकर उन्हें आना पड़ा। चौपाल में आकर वे भूमि में बैठने लगे, तब ब्राह्मण ठाकुरों ने हाथ पकड़ कर उन्हें खाट पर बिठा लिया। थोड़ी देर तक इधर उधर की बातें होती रहीं। इसके बाद एक ठाकुरने तीनों भाई महतो से पूछा, कहो भाई! इस जीवन का कोई भरोसा नहीं—देखो, अभी भूलन तेवारी कैसे तन्दुरुस्त रहे, कोई कहता था कि मरेंगे? ३ ही घंटे में चल बसे। ठाकुर की बात सुन कर सभी हाँ जी, हाँ जी कहते हुये कहने लगे, यह देह तो क्षणभंगुर है, इसका क्या ठिकाना? आज है कल नहीं।

इतना कहने पर ठाकुर पुनः बोला क्या आप लोग मोकदमे की जड़ जानते हैं? तीनों भाई महतो ने कहा मुझे मोकदमे से क्या

प्रयोजन ! भइया तो हैं न वे सभी काम कर लेते हैं। ठाकुर ने कहा—अगर भैया न रहे तब कैसे चलेगा ? सब राज-पाट बिलट जायगा, हमलोग तो आपके शुभचिंतक हैं. मोकदमे की जड़ तो सबको जानना चाहिये। बिना इसके काम नहीं चलता है।

महतो जी ने कहा, हां, ठीक है। मोकदमा की जड़ जरूर सीखना चाहिये। ठाकुर जो मोकदमा की जड़ जानता है वही मालिक बनता है-देखिये, आपके भाई साहेब कैसे ठाठ से साफा शेरवानी और जूता कस कर ५००) के घोड़े पर चढ़ कर रोज कचहरी जाते हैं और आप लोग बिना जूता छाता के धूप में दिन भर भटकते हैं--आप लोग रोज कचहरी जाकर मोकदमे की जड़ सीखिये इससे सबका भला होगा। एक एक दिन पारी से कहचरी जाइये और मालिक बनिये।

इतना कहकर तीनों भाई उन तीनों को दण्ड प्रणाम करके वहां से उठे और राह में परस्पर वार्त्तालाप करते हुये घर आये। एक दूसरे से पूछने लगे कहो तुम मोकदमे की जड़ जानते हो ? परन्तु किसी ने उत्तर नहीं दिया।

ठाकुर की बात तीनों के मन में बैठ गई। तीनों भाइयों ने निश्चय किया कि हम सबों को भी मोकदमे की जड़ सीखना चाहिये एक एक दिन पारी बांध कर कचहरी चलो।

इसी प्रकार बालू की भीत बनाते सभी भीतर आये, और भोजन करने लगे, बात बात में सभी कहते जाते थे, कि मैं भी एक दिन मालिक बनूँगा और मोकदमे की जड़ सीखूँगा। इस प्रकार बकझक करते भोजन से निवृत हुए, और सब काम छोड़-छाड़ कर पैर फैलाकर सो गये।

सन्ध्या हो जाने पर बड़ा भाई कचहरी से लौटा और मँझले भाई से पूछा कि कहो आज किस बहिआर में हल चलता था ? उसने कहा कल बतायेंगे। इसी प्रकार दूसरे भाई से पूछा, कहो, आज किस बहिआर में तुम्हारे पशु चरते थे ? उसने कहा परसों बतायेंगे। अन्त

में उसने छोटे भाई से पूछा कहो आज दिन भर का आय व्यय कितन हुआ ? उसने कहा चौथे दिन बतायेंगे ।

बड़ा भाई बड़े आश्चर्य में पड़ गया, वह तत्काल घर में जाक अपनी स्त्री से पूछने लगा, कहो—आज भाइयों को खाने-पीने में कुछ तकलीफ तो नहीं दिया ? स्त्री ने कहा न मालूम जब से दोपहर के तीनों आये हैं अंट संट बक रहे हैं। भोजन करते समय घंटों सब यह बतलाते रहे कि एक दिन हम भी मालिक बनेंगे, एक दिन हम भी कचहरी जायेंगे।

स्त्री की बातों को सुनकर बड़ा भाई समझ गया, कि दाल में कुछ काला अवश्य है । उसने तुरत तीन नौकर रख लिये १ हरवाहों का दारोगा, २ चरवाहों का दारोगा और तीसरा घर का आय व्यय देखने वाला। पश्चात् तीनों भाइयों को बुलाकर पूछा कि तुम लोग क्या चाहते हो ? जो कुछ आज्ञा कहो उसे हम करेंगे।

तीनों भाइयों ने कहा कि हमलोग एक एक दिन मालिक बनेंगे और मोकद्मे की जड़ सीखेंगे। अपना पोशाक और घोड़ा हमलोगों को एक दिन दो।

बड़े भाई ने उन लोगों के कथनानुसार ही किया।

दूसरे दिन १० बजे खा पीकर कपड़ा लत्ता पहिन ५०० रु० का तोड़ा ले घोड़ा पर बैठकर मझला भाई मोकद्मे की जड़ सीखने के लिये कचहरी चला। वहाँ पहुँच कर घोड़े को एक पेड़ से बाँध दिया और आप एक मुख्तार के पास जाकर बोला, ५२ बिगहा खेत एक आदमी काट रहा है, जल्दी मेरे नाम से डिगरी करा दो। मुख्तार ने इस मामले को न समझ कर कहा—बैठ जाओ।

महतोजी बैठ गये, इतने में मुख्तार की पुकार हुई और वह अपने मुवक्किल को लेकर मोकद्मा लड़ने चला गया। इधर महतोजी बैठे २ घबड़ाये और थोड़ी देर के बाद मुख्तार को खोजने के लिये उसी तरफ गये जिधर वह गया था। महतो जी न्यायाधीश के कमरे के पास

पहुंचे, अन्दर जाने से चपरासी ने रोका, पर ये कब मानने वाले थे, ...तर पिलते ही गये, जब चपरासी ने बात से नहीं मानते देखा तो ... थप्पण जोर से जमा दिया। अब तो महतो जी सिटपिटा गये, ...र बोले किधर जायँ ? सन्तरी ने कहा, जाओ उस पेड़ के नीचे बैठो।

मुख्तार के वापस आने पर महतो जी ने डपट कर कहा—मेरे ...म से डिगरी मिल गई ? मुख्तार ने कहा—अलबत्ता।

इतना सुनते ही महतो जी उठे और घोड़े पर चढ़ कर अलबत्ता ! रटते हुये घरकी ओर चल पड़े, उधर दोनों भाई घर से आकर राह इन्हें देखने के लिये बैठे थे।

भाइयों को देख महतो जी घोड़े से उतर पड़े और बोले भाई ! ...कदमे की जड़ तो बता देता है लेकिन एक थप्पड़ इतने जोर से ...माता है कि पुरखे याद आ जाते हैं। दोनों ने कहा क्या हर्ज है, सभी ...ध कर सह लेंगे। इसी प्रकार उसने वहां का सारा हाल बता दिया।

दूसरे दिन मंझला भाई पहुँचा और उसी मुख्तार से मिला, मुख्तार हाकिम के पास जाने पर यह भी पीछे २ गया, चपरासी से इसकी ...ठभेड़ हुई चपरासी ने समझा कि यह कलवाला असामी ही है। ...सने ४, ५ झांपड़ लगा कर पेड़ के नीचे बैठने को बता दिया।

मुख्तार के आने पर इसने भी वही बात कही, जो मंझले भाई ने ...पट कर पूछा था। मुख्तार ने कहा यह बात तसदीक है।

इतना जानते ही, यह बात तसदीक है कहता हुआ घोड़ा लेकर ...ल दिया, और दोनों भाइयों से मिल कर मंझले से लगा कहने, अरे ...ुम तो बड़े झूठे हो, वहां एक थप्पड़ कहां जमाता है, ४, ५ थप्पड़ ...माता है, लेकिन यही अच्छा है कि मोकदमे की जड़ सिखा देता है।

तीसरे दिन छोटा भाई गया वहां इसकी खूब पूजा हुई मुख्तार ...ो इसने कुछ कटु शब्द भी कह दिया, इससे वे क्रुद्ध होकर बोले, चल ...ट ! सरली घोड़ी—नौ मन सूत ऐसे कितने आते हैं कितने जाते हैं।

मुख्तार की बात को मोकद्मे की जड़ समझ कर उसको रटता हुआ तीसरा भाई भी घर पहुंचा।

तीनों भाई एक साथ रहते, दिन रात सभी अपना २ महामंत्र बका करते थे, अलबत्ता, यह बात तसदीक है और चलहट, सरली घोड़ी नौ मन सूत ऐसा कितना आता है कितना जाता है। इन लोगों के व्यवहार से सभी लोग इनको पागल समझने लगे।

एक दिन किसी रियासत का सिपाही उस ओर दोपहर को धूप और प्यास से घबड़ाता हुआ जा रहा था। उसने महतो के बड़े मकान को देखा और दारवाजे पर आकर बैठ गया, इस अभिप्राय से कि कोई निकले तो कहूँ कि जरा पानी पिला दीजिये।

थोड़ी देर में मझला भाई निकला, सिपाही के पानी मांगने पर अलबत्ता कहता हुआ वह घर में चला गया। कुछ देर के बाद सँझला भाई निकला, उससे भी सिपाही ने जल मांगा, वह यह बात तसदीक है कहता हुआ घर में घुस गया। सिपाही ने समझा—शायद कुछ खाने का भी प्रबन्ध कर रहे हैं।

बड़ी देर के बाद छोटा भाई निकला, सिपाही ने नम्रता पूर्वक कहा—महतो जी! बड़ी देर हुई। छोटा भाई—चल हट सरली घोड़ी नौमन सूत, ऐसा कितना आता है कितना जाता है कहता हुआ घर में चला गया।

सिपाही दुखी हुआ, और गांव के दूसरे तरफ ब्राह्मण ठाकुरों के चौपाल में जाकर जल पीया, और आप बीती सभी बातें उन सभों से कहा, वे लोग अच्छा मौका देख सिपाही से तीनों भाइयों के नाम का दावा करा दिया—हम घोड़ी पर सूत लादे लिये जाते थे और तीनों भाई महतो ने जबरदस्ती पीट कर छीन लिया। मुकदमा चला, तीनों भाइयों के पास कचहरी में हाजिर होने के लिये सरकारी समाचार आया। तीनों भाई बड़े प्रसन्न हो कहने लगे हमतो मुकद्मे की जड़ जानते हैं। यथा समय कचहरी में पहँचे हाकिम ने तीनों से एक २ कर

पूछा—कि तुमने इसकी घोड़ी और नौमन सूत छीन लिया है ? तीनों ने क्रमशः अलबत्ता ! यह बात तसदीक है, और चल हट सरली घोड़ी नौमन सूत ऐसा कितना आता है कितना जाता है—उत्तर दिया। इनके उत्तरों से हाकिम ने तीनों को कठोर कारागार का दंड दिया. क्योंकि तीनों ने अपराध स्वीकार कर लिया।

बड़े भाई को इन तीनों की मूर्खता पर बड़ा दुःख हुआ। अन्त में उसने हाकिम से प्राथना की और यह सिद्ध किया कि ये तीनों पागल हो गये हैं और दिन रात यही बका करते हैं। तब किसी प्रकार कारागार से छूट सके।

भाइयो ! किसी के बहकाने में नहीं आना चाहिये, परस्पर मेल से सब काम सिद्ध होता है। बुद्धि श्रेष्ठ वस्तु है, सदैव बुद्धि से सोच समझ कर काम करो। बुद्धिहीनों को नाश भोगना पड़ता है।

—

३७—किसी की नकल मत करो।

बिन जाने देखा किये, होत क्षणहिं महँ क्षार।
देखा देखी जो करै, पावे दण्ड अपार॥

एक समय एक कोयल उड़ती २ इन्द्रलोक के एक सुन्दर नगर में पहुँच कर पारीजात के वृक्ष पर बैठ कर मधुर राग अलापने लगी। उसके सुन्दर मन मोहक स्वर को सुनकर आस पासके सभी देवता बड़े प्रसन्न हुये। उन्होंने देवताओं के राजा इन्द्र के पास इस बात की सूचना दी कि महाराज एक ऐसा पक्षी आया है कि जिसके मुख से अमृत झरता है।

देवताओं के राजाने सबों को हुक्म दिया कि उसे पकड़ कर दर्बार में लाओ—हम उसका यथोचित सत्कार करेंगे। अनुचरोंने राजा की आज्ञा का पालन किया। बाग में जाकर अनेक यत्नों के द्वारा उस

कोयल को पकड़ कर दरबार में ले आये। कोयल बोलने लगी, उसके एक एक स्वर से इन्द्र सभा मोहित हो गई। कुहू कुहू की सुरीली तान में एक प्रकार की मादकता थी। यद्यपि उसका सम्बन्ध एक ही था परन्तु उसके राजा ने प्रसन्न होकर उसके शरीर को मणियों से अलंकृत करके पूछा—तुम कहाँ रहते हो? कोयल ने कहा हम मृतलोक के वासी हैं राजा ने कहा—भाई! वह पृथ्वी धन्य है जहाँ तुम्हारे ऐसे अमृत की बरसा करने वाले हैं। इस प्रकार इन्द्र से सन्मान पाकर कोयल उड़ती उड़ती मृत्यु लोक में आई और एक वृक्ष के ऊपर बैठकर सुरीली तान भरने लगी।

उसी वृक्षके एक डाल पर एक काग बैठा था—उसने कोयल के रूप को देखकर बड़ा आश्चर्य किया और उससे पूछा कि यह मणि कहाँ से लाये हो? कोयल ने इन्द्रलोक की सभी बातें सुनादी।

कोयल के उड़ जाने पर कागने विचार किया कि रूप और रंग में तो कोयल हमारे ही समान है, यदि हम भी वहां जायँ तो हमारा भी इसी प्रकार सन्मान हो, ऐसा सोच कर वह भी उड़ता उड़ता इन्द्र लोक में गया और एक पेड़ पर बैठ कर कांयों, कांयों करना आरम्भ किया।

उसके कर्कश स्वरने सबों को विरक्त कर दिया। लोग ऊब गये और इन्द्र के पास जाकर कहने लगे—महाराज, आज बाग में एक ऐसा पक्षी आया है जो शांति भंग कर रहा है इन्द्रने कहा उसे पकड़ कर दर्बार में ले आओ। अनुचरों ने वैसाही किया।

काग तो जानता ही था कि लोग पहले पकड़ने आयेंगे इसके पश्चात् सारे शरीर में मणि आदि उत्तम रत्न पहना देंगे। वह अनुचरों को अपनी ओर आते देख स्वयं उनके पास पहुँच गया। सभी उसे पकड़ कर दण्ड देने लगे, कोई उसका पैर दाबता था, कोई उसको पर नोचता इसी प्रकार उसकी खूब दुर्दशा की गई। काग बड़ा दुखी हो रहा था—वह मन ही मन पछता रहा था कि हाय मैं क्यों आया—

लोग उसे मारते-पीटते दर्बार में ले गये। इन्द्र ने पूछा तुम कौन हो? इसने कहा मैं काग हूँ। इन्द्र ने कहा—तुमही एक अकेले हो या और कोई? उसने कहा नहीं? हमही क्यों हैं? हमारे ऐसे सहस्रों वहाँ घूमते रहते हैं। यह सुन कर इन्द्रने अपने अनुचरों से कहा यह काफी दण्ड पा चुका छोड़ दो। इस प्रकार काग अपमान से दुखी होता हुआ पृथ्वी पर आया और अपनी नकल पर पछताने लगा। अतः किसी को अनाधिकार चेष्टा नहीं करना चाहिये जो लोग ऐसा करते हैं उन्हें कागके समान कठिन दंड भोगना पड़ता है।

सत्य है—

नकल किये फल का लहै, सिर धुनि धुनि पछिताय।
काम बिगाड़े आपनो, जग में होय हँसाय॥
याते मनवाँ चेत कर, सोच समझ मन माँहि।
तव पैठे तू कर्म में, नतरु दण्ड दे जाँहिं॥

३८—एक सिद्धान्त रक्खो।

चलती चक्की देखके, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में, साबित बचा न कोय॥

एक वार पशु और पक्षियों में अपनी श्रेष्ठता के लिये युद्ध हुआ। पशु कहते थे कि हम बड़े और पक्षी कहते थे कि हम बड़े हैं। सभी वर्षों तक आपस में लड़ते रहे—परन्तु कोई किसी को नहीं जीत सका। एक वार पशु लोग जीतने लगे—और पक्षी लोग हार-हार कर लगे भागने।

पक्षियों के पराजय को देख चमगादड़ घबड़ाया, उसने सोचा, यह तो बड़ा बुरा हुआ। हम तो उड़ते हैं, लोग मुझे पक्षी कहते हैं। पक्षियों की हार हो रही है—जानवरों का रंग चढ़ जायगा, उनकी सब

प्रशंसा करेंगे—अब तो निश्चय ही पत्तियों की निन्दा हुआ करेगी। क्या उपाय करें ? अब पत्तियों का संग छोड़कर विजयी जानवरों के दल में मिलकर अपनी प्रतिष्ठा रखनी चाहिये—

ऐसा सोचकर चमगादड़ उड़ता-उड़ता पशुओं के सेनापति के पास गया और बोला, मैं आपकी ओर से लड़ूँगा—देखो मैं जानवर हूँ। सेनापति ने कहा—वाह तुम जानवर कैसे हो ? तुम तो पक्षियों के समान उड़ते हो—

सेनापति की बात सुनकर चमगादड़ खिलखिलाकर हँसते हुए बोला—ठीक है, लेकिन किसी पत्ती को आपने दांत देखा है—क्या कोई पत्ती अपने बच्चों को कभी दूध पिलाता है। चमगादड़ की बातों को सुनकर सेनापति को विश्वास हो गया और उसने आज्ञा दे दी। वस अब क्या था ? चमगादड़ पशुओं से मिलकर पत्तियों से लड़ने लगा।

परन्तु तुरन्त ही पक्षियों ने जीतना शुरू किया। जानवरों का दल भागने लगा। यह देख चमगादड़ तुरन्त पक्षियों के सेनापति के पास पहुंचा और बोला मैं पत्ती हूँ—आकाश में उड़ता हूँ पक्षियों की रक्षा के लिए जानवरों से लडूंगा—

इस प्रकार वह पक्षियों की ओर से लड़ने लगा—परन्तु यह लड़ाई अधिक दिनों तक नहीं चली, कुछ ही दिनों में दोनों दलों ने आपस में सन्धि कर ली।

सन्धि के उपलक्ष में एक दिन सबों ने सहभोज करना निश्चित किया। सभी जानवर और पत्ती निमन्त्रित किये गये—बड़ा जलसा किया गया। खूब सबों ने नाचगाना किया—लोगों के मुँह से खबर पाकर चमगादड़ भी उसमें शरीक होने के लिये पहुँचा। पहले वह पत्तियों के दल में गया और बैठना चाहा—पक्षियों ने कहा तुम जानवर हो—जानवर, जानवरों के दल में जाओ।

चमगादड़ उड़ता हुआ जानवरों के दल में गया, वहाँ उन सबों ने

कहा हटो-हटो तुम पक्षी हो, पक्षी, पक्षियों के दल में जाओ, बिचारा इधर गया, उधर गया, परन्तु सबों ने दुत्कार दिया।

चमगादड़ बड़ा शरमिन्दा हुआ। मारे अपमान के एक अँधेरे खोह में घुस गया, और दिन भर छिपा रहा, रात की अँधियारी में निकला। अब बराबर वह दिन भर छिपा रहता और रातमें लोगों की नजर बचाकर निकलता तथा अपना पेट पालन करता था।

देखो. दो प्रकार के विचारों पर चलने का परिणाम! अपना एक मार्ग निर्दिष्ट करके उसी पर चलना चाहिये। कभी दो मार्ग पर चलकर कोई पार नहीं पा सकता।

या जग में तू आई के, राह एक गहि लेय।
यापै वापै दुहुँन पै, मन मत आतुर देय॥
जग-नदिया जल अगम है, एक नाव पर बैठ।
दो ललचा में डूबिहौ, निश्चय मन तज ऐंठ॥
दो गति-मति राखे कभी-जावे क्या भवपार।
काम नशावे आपनो, कर-कर निज अपकार॥

३६—साहस का फल।

का नहिं साहस कर सके, साहस ही जग मूल।
याके साधे सब सधे, बज्र होहिं मृदु फूल॥

किसी गाँव में एक गरीब ब्राह्मण रहता था। वह आस पास के गाँवों में पुरोहिताई करके अपना जीवन निर्वाह करता था। एक दिन एक यजमान ने प्रसन्न होकर उसे एक बछिया दी. ब्राह्मण बछिया को बहुत प्यार करता था उसे खूब हरे-हरे घास खिलाता तथा समय-समय पर उसकी उचित सेवा किया करता था। कुछ ही दिनों में बछिया खूब मोटी ताजी हो गई।

वहाँ एक चोर रहता था। उसने ब्राह्मण के घर के निकट ही एक

खँडहर में छिप कर जा बैठा और रात्रि की प्रतीक्षा करने लगा। उस गाँव वाले जङ्गल में एक राक्षस रहता था, उसने सोचा कि ब्राह्मण तो सबों के यहाँ खूब माल खाता है, इसका मांस बड़ा उत्तम होगा— चलो, आज उसे ही खायँ। ऐसा विचार कर वह भी उसी खँडहर में आकर बैठा कि आधी रात बीतने पर ब्राह्मण को चलकर खायेंगे।

चोर ने राक्षस को देखकर पूछा—तुम कौन हो? और यहाँ क्यों आये हो? राक्षस ने कहा, मैं धूम्राक्ष नामका राक्षस हूँ और आज ब्राह्मण को खाने के लिये आया हूँ। तब राक्षस ने पूछा तुम कौन हो? और यहाँ क्यों बैठे हो? चोर ने कहा, कि मैं ,चण्डचूर नाम का चोर हूँ और ब्राह्मण की बछिया चुराने के लिये बैठा हूँ। दोनों ने कहा बहुत ठीक है, हम दोनों को एक ही जगह पर काम करना है—अतः ठहरो, साथ ही काम करेंगे। आधी रात होने पर प्रेत उठा और चोर को कहा कि तुम बैठो—हम ब्राह्मण को खा आते हैं। चोर ने कहा—वाह, तुम खुद गुरु मिले। तुम ब्राह्मण को खाने लगो और वह जाग जाय तो मेरा परिश्रम व्यर्थ ही जायगा। राक्षस ने कहा—यदि तुम पहले गाय चुराने जाते हो, यदि खोलने में बछिया बोलने लगी और ब्राह्मण जाग गया तब तो हमी घटाले पड़े तुम तो खूब उस्ताद जान पड़ते हो। पहले हमें खा आने दो, राक्षस की बात सुनकर चोर ने कहा— नहीं, पहले हम जायेंगे। इसी प्रकार हम-हम कहते दोनों परस्पर लड़ते झगड़ते हुए ब्राह्मण के दरवाजे तक आये। शोरगुल सुनकर ब्राह्मण जाग गया और घर के बाहर आया ब्राह्मण को देखते ही चोर ने कहा—देखो ब्राह्मण! यह राक्षस तुमको खाने आया है। राक्षस ने कहा—देखो ब्राह्मण! यह चोर तुम्हारी बछिया चुराने आया था—

राक्षस और चोर की बातें सुनकर ब्राह्मण बड़ा घबड़ा गया परन्तु साहस पूर्वक अपनी रक्षा के लिये इष्टदेव का स्मरण करने लगा। थोड़ी देर में इष्ट के प्रभाव से राक्षस तो भाग गया अब रह गया केवल

चोर। ब्राह्मण ने उसे खड़े देख जोर से चिल्लाकर कहा—लाओ तो डण्डा रे। बस इतना कहना था कि चोर भी रफूचक्कर हो गया।

ठीक है साहस और धैर्य्य बड़ा काम देता है। उस समय यदि ब्राह्मण घबड़ा कर भागता तो निश्चय उसकी दुर्दशा हो जाती। साहस और धैर्य्य ने उसकी रक्षा की—अतः विपत्तियों के समय धैर्य्य से म लेना चाहिये।

ाहस धैर्य शील सत्कर्मा। विपति देख त्यागिय जिन धर्मा॥
वेघ्न शोक दुख देखि न भागे। मनुज वीर जो भीरुहिं त्यागे॥
साहस ते पूरण करे, कठिन असंभव काज।
रन में वन में विपद् में, राखत साहस लाज॥

साहसी क्या नहीं करता उसकी शक्ति के आगे संसार तुच्छ है—

पर्वतों को काट कर सड़कें बना देते हैं वे।
जंगलों में हाय! महा मंगल मचा देते हैं वे॥
अगम जल निधि गर्भ में बेड़ा चला देते हैं वे।
सैकड़ों मरुभूमि में नदियां बहा देते हैं वे॥

४०—पण्डित की व्यवस्था।

सात पांच लड़का और जहां संगे संतोष।
गदहा मारे नाहीं दोष॥
अपनी नारी कुछ नहीं, पर की नारी दोष।
गदहा मारे पाप का, जहां रहे सन्तोष॥

किसी गांव में एक पंडित रहते थे। उन्हें ढोंग और पाखंड खूब रचने आता था। बराबर गांव वालों को धर्म के आड़ में तंग किया करते थे, छोटे २ कामों में भी लोगों को धर्म के फन्दे में फँसा लेते थे और उनसे विना कुछ वसूल किये नहीं छोड़ते थे—

जहां किसी ने कोई नया काम किया कि आपने दम्भ से उसके विपरीत उसे अधर्मी ठहराया। अब वह विचारा क्या करे—बिना इनकी पूजा किये कैसे व्यवस्था पावे—

पंडित जी को सन्तोष नाम का एक लड़का था—वह इनके प्रकृति के एकदम प्रतिकूल था। उसमें यह ठगविद्या की पालिसी नहीं थी, वह बड़ा सीधा साधा और अबोध था। संसार के छल पाखंड से दूर था, धूर्तता का भाव उसके हृदय में नहीं था, उसका दिल एकदम आइने के समान साफ़ था। पं० उजागरराम उसे बराबर मूर्ख बेटा कहकर पुकारते थे। सन्तोष भोला था, उसका मन पढ़ने लिखने में नहीं लगता था, पिता ने उसे गौओं को चराने का हुक्म दिया—वह चरवाहों के साथ रहते २ कुछ ही दिन में चंचल हो गया।

एक दिन ५, ७ चरवाहे मिलकर किसी धोबी के भागे गदहे को घेर कर लगे खेलने। उसे पकड़कर ३, ४ लड़के चढ़कर दौड़ाने लगे। कोई गर्दन पर कोई पीठ पर, कोई कंधे पर और कोई कमर पर। गदहा परेशान हो गया और लगा हाँफ २ रैंकने।

गदहा एक तो बूढ़ा था। उस पर यह लड़कों की मार कहां तक सह सकता था? सिपों सिपों खूब किया, परन्तु वे मूर्ख लड़के क्या समझें? उन्हें तो इससे और आनन्द आ रहा था। ज्यों २ गदहे को पीटते थे—लड़के खूब हँसते जाते थे। यहां तक कि मार खाते २ गदहा परलोक वासी हो गया—

शाम होते २ गदहे के मरने की खबर चारों ओर फैल गई। चरवाहों के बाप मुखिया के पास आये और सिफ़ारिश करने लगे कि आज चरवाहों से बड़ी गलती हो गई है। चलिये जरा पंडितजी के यहां चलकर गदहे की हत्या का प्रायश्चित्त करा दीजिये।

लोगों के कहने पर मुखिया पंडित जी के यहां गया—और हाथ जोड़कर कहने लगा, महाराज! आज तो चरवाहों से एक बड़ा भारी

दोष हो गया है। उन लोगों ने खेलखेल में कल्लू धोबी के भागे गदहे का मार डाला है, उसीका योग्य प्रायश्चित्त बताइये—

पंडितजीने सोचा खूब रग गठा है। सभी चरवाहों के घर वालोंसे मुँह माँगा द्रव्य मिलेगा। ऐसा सोचकर उन्होंने कहा, सबों से अपराध तो बड़ा भारी हुआ है, इसका प्रायश्चित्त तो बड़ा कठिन है। १३ एकादशी व्रत करे और गदहे बराबर सोना दान करे तभी इसका पाप मिटेगा—नहीं तो हत्या का फल गांव वालों को भी भोगना पड़ेगा।

पंडित जी की बातें सुनकर मुखिया बोला, महाराज! उन लड़कों में तो सन्तोष भी रहे। सन्तोष का नाम सुनते ही पंडित जी के होश उड़ गये—उनका खिला हुआ चेहरा मुरझा गया और बोले—ओहो! तब क्या डर है! लो—

जहां सात पांच और सन्तोष। वहां गदहा मारे का दोष॥

देखिये—खुदगर्जी का उदाहरण, दूसरों के दोष पर तो चान्द्रायण व्रत और स्वर्णदान, परन्तु अपने बारी में कोई दोष ही नहीं—सभी लोग अपने २ घर आये और पंडित जी की पालिसी की चर्चा करने लगे। धीरे २ उनका भंडाफोर हो गया। और लोग उनके जालों में नहीं फँसने लगे।

धरम करम सब एक है, फल सब एक समान।
कपट करै यामें कहूं, दुख पावै अज्ञान॥

४१—मालढ़ चले नौगढ़ हिले।

किसी गांव में एक स्त्री रहती थी। वह स्त्री क्या थी साक्षात यक्षिणी की भी दादी थी। दिन भर भनभनाही करती थी, जब वह चलती थी तब उसके पैर जहांके तहां पड़ते थे। कभी दीवाल से भिड़ती

दो चार सीढ़ी उछल जाती और कभी एक ही सीढ़ी पर फूँक-फूँक कर १० बार पैर रखती थी।

उसकी चाल विचित्र थी। चलते चलते कहीं किसी चीज में ठोकर लगा देती, कभी पैर से किसी को उलट देती और कभी हाथ के धक्के से किसी चीज को छींट दिया करती थी—वह बराबर राह में चमकती चलती थी। राह का पत्ता-पत्ता उससे डरता था। बिल्लियाँ दबक जाती थीं, चूहे बिल में घुस जाते थे। और मच्छर अपनी बोली बन्द कर देते थे। हवा कांप जाती थी और दीवार सहमजाते थे, धरती बिचारी थर्राने लगती थी। कहने का आशय यह है वह बड़ी फूहर थी, उसे किसी बात का सोच न था।

स्त्रियों को बड़ी सोच समझ के घर के कामों को करना चाहिये, सभी चीजों को ठौर-ठौर सुरक्षित रखना चाहिये। बराबर नीचे निगाह कर चलना चाहिये। सदैव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि कोई चीज नष्ट न होने पाये।

४२—भाग्य का खेल।

या जग में सुख दुख भरे, पावे कर्म समान।
उदय भाग्य फल होंहि जब, प्रगटे सुख तब जान॥

इङ्गलैण्ड के किसी देहात के एक गांव में भिटिंगटन नाम का एक अनाथ बालक रहता था। उसने लोगों के मुँहसे सुना था कि लन्दन की सड़कें सोनेकी हैं। वह प्रायः सोचा करता था कि यदि मैं वहां पहुँच जाऊँ तो हजारों मन सोना मुझे मिल सकता है। लेकिन लन्दन का राह भयानक जङ्गल और पहाड़ों के बीच होकर गया था।

एक दिन वह लड़का लन्दन जाने के लिये तैयार हो गया और पूछता-पूछता जङ्गल में निकल गया। राह में उसे एक गाड़ी जाते दिखाई पड़ी। गाड़ीवान अकेला था। आगे बढ़ कर भिटिंगटन ने

उससे पूछा, कहाँ जा रहे हो ? उसने कहा मैं लन्दन जा रहा हूँ। तुम कहाँ जाओगे ? लड़के ने कहा मुझे भी वहीं जाना है। गाड़ीवाले ने समझा अच्छा हुआ एक साथी मिल गया। ऐसा सोचकर उसने लड़के को गाड़ी पर बैठा लिया। कई दिन बीतने पर गाड़ी लन्दन पहुँच गई, गाड़ी वाले ने मिटिंगटन को उतार दिया।

भिटिंगटन लन्दन की सड़कों में पत्थर जड़ा देखकर बहुत दुखी हुआ। उसकी सारी मनोभिलाषायें मिट्टी में मिल गईं। ताड़के ऊपर से गिरे हुये आदमी के समान वह हक्का-बक्का हो गया। उसके पास एक पैसा भी नहीं था। भूखके मारे उसका शरीर छटपटा रहा था। वह सामने के मकान में बैठे हुए ५-७ आदमियों के पास जाकर उनसे भीख माँगने लगा, परन्तु किसी ने उसकी ओर ध्यान न दिया। उल्टे उन आदमियोंमें से एक ने एक बेंत जोरसे इसके माथे में मारा, जिससे इसका सर फूट गया और खून बहने लगा। भिटिंगटन दुःख प्रकट करते हुए आगे बढ़ा, परन्तु चोट के कारण अधिक दूर नहीं जा सका, एक मकान के बड़े फाटक पर गिर पड़ा और बेहोश हो गया।

सायंकाल के समय वह फाटक खुला और उस मकान का दयालु मालिक निकला, उसने भिटिंगटन को इस दुर्दशा में पड़े हुए देखकर पूछा—तुम कौन हो और क्या चाहते हो ? भिटिंगटन ने बड़ी नम्रता से कहा—मैं एक गरीब लड़का हूँ, दो-तीन दिन से भूखा हूँ, और भीख माँगने का दण्ड भोग रहा हूँ। इसी प्रकार उसने अपनी राम कहानी कह सुनाई। लड़के की बातों को सुनकर मालिक को दया आ गई, उसने अपने नौकरानी को बुलाकर कहा, इस लड़केको ले जाओ और इसकी सहायता करो और जब अच्छा हो जाय तब अपने साथ काम लो। मालिक के चले जाने पर उस लड़के को उठाकर एक गन्दे कोठरी में डाल दिया, नौकरानी बड़ी ही कर्कशा स्त्री थी। उसने उस लड़के को उस स्थान पर रक्खा जहाँ दिन-दहाड़े सैकड़ों चूहे उधम मचाते थे। जहाँ दिन रात झिंगुर टर्राते और मच्छर भनभनाते थे।

समय कुसमय पर जब उसे ध्यान में आता था दो रोटियाँ दे दिया करती थी, किसी प्रकार धीरे-धीरे १५-२० दिन के बाद लड़के के सरका घाव अच्छा हुआ।

अभी भिटिंगटन भली-भाँति चङ्गा भी नहीं हुआ था कि नौकरानी उसे लगी पीसने; रात दिन काम में जुटाये रहती थी, कभी आराम करने के लिए भी समय नहीं देती थी, घण्टा रात रहते उठना पड़ता था। और आधी रात बीतने पर जब नौकरानी सो जाती थी तभी सोने या आराम करने का समय मिलता था।

लड़का चूहों और मच्छरों के मारे हैरान हो गया था, वे इसे रातमें भी सोने नहीं देते थे। जमीन पर सोता था। चूहों का दल बार-बार उसकी छाती पर चढ़कर धमा चौकड़ी मचाया करता था। कभी-कभी तो चूहे शरीर को ही नोचने लगते थे, लड़का भागता और चिल्लाता था, परन्तु दूसरा और स्थान ही कहाँ था जहाँ रहता। नौकरानी से अपनी दुर्दशा का हाल कहता था—परन्तु वह उपकार के बदले उल्टे और इसे पीटने लगती थी, बस यह बिचारा चुप ही रहता था। मालिक से इसके लिये जो कुछ द्रव्य या वस्त्र मिलता था—वह भी नौकरानी हथिया लेती थी। देनेको कौन कहे—कपड़े तक एकदम फटे पुराने दे दिया करती थी।

इसी बीचमें एक दिन मालिक का मित्र आया, भिटिंगटन ने उसका जूता साफ कर दिया, उसने इसे एक आना पैसा दिया। लड़के ने खुशी-खुशी से उसे लेकर रख लिया, और पहुँचाने के लिये बाहर गया। मालिक के मित्र को पहुँचाकर जब लड़का लौट रहा था तब उसने देखा कि एक बुढ़िया एक सुन्दर जानवर लिये जा रही है। उसने उससे पूछा माँ यह क्या है? बुढ़िया ने कहा. बेटा! यह बिल्ली है। यह चूहों को खाया करती है, जहाँ यह रहती है वहाँ चूहे नहीं रह सकते। बुढ़िया की बातें सुनकर लड़का बड़ा प्रसन्न हुआ और नम्रता पूर्वक बोला—माँ! क्या इस बिल्ली को तुम मुझे दोगी? बुढ़िया ने कहा,

हो ! मैं बेचती हूं । इसका दाम बारह आना होगा । भिटिंगटन ने दुःख प्रकट करते हुए कहा—मां ! मेरे पास सिवा एक आने के संसार में और कुछ भी नहीं है। लड़के की बातों ने बुढ़िया को बाँध लिया। उसने एक आने पैसे में ही बिल्ली दे दिया। लड़का बिल्ली को अपने पास रख कर काम में लग गया। इधर बिल्ली ने खूब काम किया सैकड़ों चूहों के सरदारों को काल के मुंह में भेज दिया। नित्य की भांति रात में सब कामों से निवृत्त हो थोड़ा भोजन लिये हुए लड़का कमरे में आया और बिल्ली को खिलाया। आप भी सोने का प्रबन्ध करने लगा। उस दिन उसे खूब नींद आई—बिल्ली रातभर पहरा देती रही। एक भी चूहा अपने घरसे गर्दन नहीं उठा सका। धीरे-धीरे चूहों का अड्डा वहां से उखड़ गया।

भिटिंगटन का मालिक बड़ा धनवान आदमी था। उसके बीसों जहाज व्यापार के लिये विदेश जाते थे। उसका यह नियम था कि जब जहाज जाने लगता था तब वह अपने सभी नौकरों से कहता था कि तुम लोग भी अपनी २ चीजें विदेश में बेचने के लिए भेजो। मुफ्त में हमारे माल के साथ जायेगी और जो चीज जितने में बिकेगी, उसका पूरा रुपया तुम्हें मिल जायगा।

उसके सभी नौकर उससे प्रसन्न रहते थे। सबों ने इस बार भी अपनी २ चीजें दीं, परन्तु भिटिंगटन क्या देता? उसके पास था ही क्या? मालिक ने उसे बुलाया और कहा, तुम क्यों नहीं कोई चीज देते हो? लड़के ने कहा, हाय! मेरे पास एक बिल्ली के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। मालिक ने जवाब दिया, उसी को लाओ। तुम्हारी बिल्ली विदेश में जाकर बिकेगी।

यथा समय जहाज खुला। लड़के की बिल्ली भी जहाज के साथ चली। कुछ दिनों के बाद समुद्र में बड़ा भारी तूफान आ गया और सभी जहाज तितिर-बितिर हो गये। जिस जहाज पर बिल्ली थी वह स्थल के किनारे जा लगा। किनारा जंगलों से भरा था, कप्तान अपने

दस पाँच साथियों के साथ उतरा और नगर गाँव के तलाश में घूमने लगा। थोड़ी देर में उसे १ बड़ा भारी महल का गुम्बज दिखाई पड़ा, और उसी ओर बढ़ा। तुरत एक बड़े भारी नगर में पहुँचा। वहाँ के आदमियों ने उसे राजा के यहाँ पहुँचाया। राजा ने इन सबों का समाचार पूछा, कप्तान ने कहा हमारे पास व्यापार के सामान हैं, आपके राज्य में बेचने की आज्ञा चाहते हैं।

राजा ने अनुमति देकर उन सबों का बड़ा स्वागत किया और समय २ पर उन सबों के लिये भोजन मँगवाया, जैसे ही ये लोग भोजन करने के लिये तैयार हुये कि सहस्रों चूहे आ गये और दनादन भोजन चट कर गये।

राजा ने कप्तान से कहा, भाई क्या करें, हमलोग सभी इसी के मारे परेशान हैं, कोई सुख से खाने पीने भी नहीं पाता, सारा राज्य तबाह है। कप्तान ने कहा घबड़ाइये मत, हमारे पास एक ऐसा जादू है कि हम एक दिन में ही आपका यह रोग छुड़ा सकते हैं। राजा ने नम्रता पूर्वक कहा भाई यदि तुम मुझे इस रोग से बचा लो तो हम मुँह माँगा द्रव्य देंगे। तुम्हारे जहाजों को सोने से भरवा देंगे। कप्तान ने सोचा—निःसन्देह अब भिटिंगटन की बिल्ली खूब धन देगी। कप्तान ने फौरन अपने आदमियों के द्वारा बिल्ली को मँगा लिया, और कहा—आप पुनः भोजन मँगवायें। राजा ने भोजन मँगवा दिया। रसोइया ने ज्यों ही भोजन की थाली रक्खा कि हजारों चूहे चारों ओर जुट पड़े। देखते ही देखते कप्तान ने बिल्ली को छोड़ दिया। बिल्ली का छूटना था कि उसने प्रलय कर दिया, सैकड़ों को काट डाला और सैकड़ों को घायल कर दिया। बाकी मारे डर के भाग निकले। बिल्ली ने पीछा किया और सैकड़ों को पटक २ कर मार डाला। जादू भरा काम देखकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ, उसने सारा जहाज सोना से भर दिया। कप्तान सभी माल बेचकर लंदन वापस आया और अपने मालिक को भिटिंगटन की बिल्ली का रहस्य कह सुनाया। मालिक ने

सारा धन भिटिंगटन को दे दिया। और आप उसकी रक्षा करने लगा। देखो ईश्वर की महिमा, एक बिल्ली से क्या करा दिया ? भाग्य ने कैसा चमत्कार दिखाया। सत्य है—

सुख दुख चक्र समान है, आवत जात सदैव।
पुण्य होंहिं वहु प्रकट तब, नष्ट करें दुख दैव॥

——

४३—झूठ बोलकर किसी को धोखा न दो

मत असत्य व्यौहार ते, काहू को दुख देय।
दण्ड पड़ै भोगन तुम्हें, उचित सिखावन लेय॥

एक गांव में गड़ेरिया का लड़का रहता था, वह अक्सर जंगल में जाकर भेड़ों को चराया करता था, एक दिन उसने मन में विचार किया कि गांव वालों को छकाना चाहिये। उसने जंगल में जोर २ से चिल्लाना शुरू किया, भेड़िया आया, भेड़िया आया! दौड़ो भाई, आओ, आओ बचाओ!

चरवाहे की आवाज़ सुन आसपास के खेतों में काम करने वाले हरवाहे, किसान और मजदूर सभी लाठी-डंडा-भाला वरछा लेकर दौड़ पड़े। खोजते २ उस स्थान पर पहुंचे जहां लड़का भेड़ियों को चरा रहा था, लोगों ने उससे पूछा, कहां भेड़िया है, कहां गया ? लड़का उन सबों की बात सुनकर खिल खिलाकर हँस दिया।

ऐसे ही उसने कई बार लोगों को छकाया। सभी समझ गये कि लड़का बड़ा शरारती है, अब कभी इसकी बात में नहीं आना चाहिये। दैवात् एक दिन भेड़िया आ ही गया। लड़के ने उसके भयानक स्वरूप को देखकर चिल्लाना शुरू कि-ा, लेकिन यहां आता कौन है ? सभी उसकी धूर्तता से परिचित थे कोई उसके पास तक नहीं गया।

भेड़िये ने धीरे२ सभी भेड़ोंको मार डाला। यहां तक कि इस लड़के पर भी टूट पड़ा और नोचनाच कर घायल कर दिया। अन्त में उसे लोगों से झूठ बोलकर धोखा देने का फल अच्छी तरह मिल गया।

(२)

एक लड़का बड़ा शरारती था। वह लड़कों की कौन कहे बड़े २ को छका दिया करता था। कभी झूठ-मूठ कहता--मेरा पेट दर्द करता है, कभी कहता था कि सिर दूखता है, कभी कह देता बुखार चढ़ा है और कभी कहता कि हमको चक्कर आ रहा है। सदैव मक्कर किया करता था, लोग समझ गये कि यह बड़ा झूठा है।

एक दिन सचमुच उसके पेट में शूल उठा और लगा चिल्लाने, बाप रे बाप ! दादा रे दादा ! पर कौन सुनता था ? उसका चिल्लाना सभी समझते थे कि मक्कर कर रहा है। लड़का खूब छटपटाया और रोया, मारे पीड़ा के बेचैन हो गया। थोड़ी देर तक छटपटा कर आखिर में मर गया। झूठ बोलने का दण्ड उसे मिल गया।

करहु सत्य व्यवहार सुखारी। जनि असत्य पग धरहु दुखारी॥
सत्य मांहि सुख रह्यो छिपाई। महिमा सत्य अकथ श्रुति गाई॥
झूठ बोलि खोयो सभी पायो दुख वन माँहिं।
छुट्यो भेड़ घायल पड़्यो, याते दुर्गण नाहिं॥

---

४ :—जो सबको प्रसन्न करना चाहता है वह किसी को प्रसन्न नहीं रख सकता।

यह मनवा संसार है, भिन्न भिन्न मति मान।
काको काको देखिहौ, भेद वेद तउ जान॥

किसी गांव में एक बूढ़ा धोबी रहता था। वह रोज सवेरे गदहे पर कपड़े लाद कर घाट पर जाता और उन्हें नदी में धोकर सांझको

घर वापस आता था। उसे १६ वर्ष का एक लड़का था, वह भी बाप के साथ २ काम किया करता था। कुछ दिनों के बाद गदहे को बूढ़ा होता देखकर धोबी ने अपने लड़के से कहा, बेटा! चलो बाजार, इस गदहे को बेचकर एक जवान जानवर खरीद लावें। बेटे ने कहा अच्छी बात है, परसो हटका दिन है।

हाट के दिन दोनों बाप बेटे गदहे को लेकर चले, राह में कुछ आदमियोंने इन दोनोंको देखकर हँसते हुये कहा देखो ये लोग कैसे मूर्ख हैं कि गदहा रहते भी पैदल पैर ठर्राते चले जा रहे हैं। आगे बढ़ने पर बूढ़े ने कहा, बेटा, लाओ इस गदहे पर हम चढ़ लें, लोग ठीक कहते हैं। बूढा गदहे पर बैठ गया और उसका बेटा पीछे २ चलने लगा। थोड़ी दूर पर इन्हें कुछ आदमी फिर मिले, वे भी उन आदमियों के समान हँसते हुए कहने लगे—देखो तो, यह बूढ़ा कैसा खूसट है कि आप तो गदहे पर बैठा मौज ले रहा है और छोटे लड़के को पैदल दौड़ा रहा है।

आगे बढ़ते ही बूढ़े धोबी ने अपने लड़के से कहा—बेटा! आओ, तुम भी मेरे पीछे बैठ जाओ, लोग क्या कह रहे हैं। लड़का भी उचक कर गदहे की पीठ पर चढ़ बैठा, गदहा विचारा क्या करता? एक तो रहा ही धूसरचंद चढ़ा, यह दूसरा मूसरचंद भी लद गया, अब लगा गदहा पिनपिनाने, लेकिन पिनपिनाने से क्या होता है? दो चार सोंटा जहां जमा कि लगा दुलकी झाड़ने।

इस प्रकार बाप बेटे दोनों लदे हुये जाही रहे थे कि इन्हें फिर कई आदमी मिले, वे सब इन दोनों को देखते ही खूब हँसे और आपस में कहने लगे, देखो तो ये लोग कैसे मूर्ख हैं कि इस बूढ़े गदहे पर जो विचारा चल नहीं सकता हट्टे कट्टे दो दो मूसरचंद लदे हैं, ये लोग कैसे निर्दयी हैं, इन्हें दया नहीं आती? गदहा विचारा तो मर रहा है, फिर भी उसके चूतड़ पर पीछे से जमा रहे हैं।

आगे बढ़ते ही बूढ़े ने कहा—बेटा, मूसरचंद उतरो, और गदहे के

पैरों को बांध कर भीतर से लाठी डाल के हम लोग अपने कंधे पर उठालें। ठीक है, गदहा अब थक गया है, ऐसा काम करो कि जिससे लोग भी प्रसन्न रहें और गदहा को भी परिश्रम न पड़े।

मूसरचंद ने बाप के कहने के अनुसार गदहे के पैरोंको उसके रस्सी से बांध दिया, और अपनी लाठी डालकर कहा—बप्पा अब उठाओ, और ले चलो, दोनों ने उठा लिया।

आगे राह में एक पुल पड़ता था। इधर से ये दोनों गदहे को टांगे जा रहे थे और उधर से एक गाड़ी आ रही थी। माल से भरी मोटरके निकट आने पर ड्राइवर ने इनको राह से हटने के लिये आवाज दिया। बस, भोंपूका बजना था कि गदहा भड़का। जिससे उसकी रस्सी टूट गई, और ऐसा उचका कि तीन उल्टी खा कर धम से नदी में पहुँच गया। उसका दो पैर तो अभी बंधा ही था। क्या करता? गदहा बिचारा लगा पानी पीने, थोड़ी ही देर में बिचारा चल बसा और इधर दोनों बाप बेटे हाथ में लाठी लिये पुल के ऊपर से झांकने लगे।

देखो, इन धोबियों ने सबको प्रसन्न करना चाहा था, परन्तु किसीको प्रसन्न नहीं कर सके। अतः खूब सोच विचार कर अपना काम करना चाहिये। मुंडे २ मतिर्भिन्ना। सबकी मति एक समान नहीं होती, संसार भिन्न २ प्रकृति वाला है। तुम किसे २ प्रसन्न कर सकते हो, देखो बड़े पुरुषों को, कोई तो उनकी स्तुति करते हैं और वहीं कोई उन्हें अपशब्द कहते हैं। इसी लिये जो बात ठीक है, न्याय पूर्वक हो, तथा जिससे लाभ हो, उसे ही सदैव करना योग्य है। उनका अन्याय पूर्वक, अनिश्चित क्रियाओं से हानि होगी।

सत्य है— जग-मति से तू दूर हो, आपन कर मजबूत।
ताते तरिहै सिन्धु तू तज दे, पर का भूत॥
रजक चह्यो सब की मती, का करि सक्यो प्रसन्न।
भार उठाओ तउ पै, रोयो मूर्ख विपन्न॥

४५—किसी को देखा देखी मत किया करो।

देखा देखी जो करैं, पावै दण्ड महान।
स्वान दीन भटकत फिरे, दुख पावै अज्ञान ॥

एक गांव में करीम नाम का धुनियाँ रहता था, उसने अपने काम के लिये गदहा रख लिया था, रोज उसी पर रुई लाद कर हाट बाजार किया करता था, उसी के घर के सामने रहीम पंसारी की दूकान थी। उसने भी अपने मालों को ढोने के लिये एक मजबूत गदहा ले रक्खा था। दोनों गदहे एक ही जगह बांधे जाते थे। करीम अपने गदहे पर केवल रुईका हल्का गट्ठर लादता था, और रहीम अपने गदहे पर भारी भारी गठिया लाद कर लाया करता था, भारी बोझ के कारण गदहा बड़ा दुःखी रहा करता था।

एक दिन रहीम २ गठिया नमक लादे हुए बाजार से घर आ रहा था कि अचानक उधर से करीम भी अपने गदहे पर२ गठिया रुईलादे हुए आ मिला। दोनों में राम सलाम हुआ, और दोनों बातचीत करते हुए चले। रहीम का गदहा मारे बोझ के दबा जा रहा था। बड़े दुःख के साथ रुक-रुक कर चल रहा था। लेकिन करीम का गदहा हल्का बोझ होने के कारण खूब तेजी से पैर बढ़ाते हुए रास्ता तै कर रहा था। इसी प्रकार सभी नदी के किनारे तक आये।

रहीम का गदहा जब नाला पार करने लगा तब उस में बैठ गया। लगा नमक गलने, जब तक रहीम अपने गदहे को उठावे २ तब तक नमक गल गया। गदहा उठा तो उसे बोझ बहुत हलका मालूम हुआ और नाला में तेजी से पैर बढ़ाया, करीम के गदहे ने यह देख कर समझा कि पानी में बैठने से बोझा हलका हो जाता है, तभी तो यह दूसरा गदहा फरफरा उठा है। वह भी देखा देखी पानी में बैठ गया। उधर रहीम करीम दोनों बातों में फसे थे। रुई वाले गदहे को किसी ने पानी में बढ़ते नहीं देखा। गदहा मारे खुशी के मय

सामान पानी में पैठा रहा—कि बोझा एकदम हल्का हो जाय। थोड़ी देर में रुई ने खूब पानी खींच लिया, अब तो हल्का होने के बजाय रुई पहले से कई गुना भारी हो गई। जब दोनों के बातों का सिलसिला बन्द हुआ तो करीम ने अपने गदहे को पानी में बैठा देख बड़ा क्रोध किया और दौड़ कर ५-७ डंडा जमाया, लेकिन गदहा उठे तो कैसे उठे ? वहाँ रुई तो लोहा बन गया था, करीम ने गदहे को खूब पीटा, यहाँ तक कि गदहे के पितर याद आ गये।

किसी प्रकार कुटुम्मह के बाद हांफता कांपता उठा और धीरे २ नाला के ऊपर आया, एक एक डग में उसका दम निकलने लगा, भींगी रुई उसे वर्षों का कसर निकाल रही थी करीम क्रोधित था ही, एक तो उसकी रुई भींज गई, दूसरे चलता भी नहीं; जहां अड़ता था कि दो चार डंडे रसीद हो जाते थे। गदहा अपने भूल पर पछता रहा था, परन्तु अब पछताने से क्या होता है। किसी का बिना सोचे समझे नकल करने का फल तो मिलना चाहिये न ?

इस प्रकार करीम के पिटम्मस से उसकी दुर्गति हो गई। करीम का डंडा भी चूर चूर हो गया। नाला से डेढ़ कोस जमीन डेढ़ पहर में भी नहीं पहुँच सका। बड़ी मुश्किल से सांझ को घर आया। उस रोज करीम ने उसे दाना भी नहीं दिया।

इस से सिद्ध होता है कि बिना विचारे देखा देखी करना मूर्खता है। जो लोग ऐसा करेंगे उनकी करीम के गदहे के समान दुर्दशा होगी। मनुष्य को चाहिये कि सदैव सोच विचार कर काम किया करे, कभी भी किसी दशामें बिना विचारे कोई काम न करना चाहिये, क्योंकि इससे अनिष्ट की सम्भावना रहती है। प्रत्येक कार्य्य को सांगोपांग देख लेना चाहिये, बुद्धि के द्वारा यह जानने की चेष्टा करनी चाहिये कि इस विषय का आन्तरिक रहस्य क्या है ?

सोच समझि मन जानि के, गुन कारज को लेखि।
जो जन करते कर्म सुख हैं पावें फल देखि॥

४६–नाचे न आवे अँगनवें टेढ़।

एक राजा था, उसे नाच का बड़ा शौक था। एक दो नहीं, बीसों देशके नाच गान करने वाली स्त्रियों की नित्य भीड़ लगी रहती थी, बड़े बड़े करथक और वेश्यायें जुटा करती थीं, और राजा रात दिन नाच में पड़ा रहता था—

नाच वालों को राजा यथोचित पुरष्कार भी दिया करता था। सारे देशमें धारे २ इस बातको धूम मच गई। जो भी हो राजा के यहाँ पहुँच गया और अपने को नर्तक बता कर कुछ प्रशंसा कर दी बस, कुछ न कुछ उसे मिल ही जाता था। उस समय राजाकी दृष्टि ऋषियों के समान ही नर्तकियों पर थी।

एक दिन राजाके राजमें कर्नाटक देशकी एक नर्तकी आई। वह नाचना गाना कुछ भी नहीं जानती थी, रुपये के लोभ से आई थी राजा ने हुक्म दिया कि इस नर्तकी का नाच आज होगा।

सायंकाल में सभी उपस्थित हुये। नर्तकी भी आई वह सभा मंडपमें घूमने लगी। वह भयभीत थी, क्योंकि उसे नाचना नहीं आता था। वह घंटों थिरक थिरक कर आती और जाती। फिर रुक रुक कर थिरकती थी—

घंटों बीतने पर राजाने कहा, क्यों! अपना नृत्य क्यों नहीं दिखाती? नर्तकी ने कहा हजूर? यह सभामंडप ही टेढ़ा है, हम कैसे नाचें।

ठीक है, काम तो करना आवे नहीं, कार्य्य क्रम जानते ही नहीं, उल्टे का यँको ही दोष देते हैं।

४७–धैर्य का फल।

धैर्य्य सरिस को मित्र है, मनवां जगमें जांच।
धैर्य्य रहे का आ सके, विपदा वस दुख आंच॥

किसी समय एक राजाने एक सिंह के बच्चेको पाला था। दिन रात उसे अपने पास ही रखता था। शेर का बच्चा इतना हिल मिल गया था कि उसके लिये पिंजड़े की जरूरत नहीं थी। बराबर राजा के साथ ही साथ राज महल में घूमा करता था। धीरे २ कुछ ही दिनोंमें वह पूरा शेर हो गया। एक दिन राजा दोपहर में भोजन करके कुर्सी पर बैठा कोई पुस्तक पढ़ रहा था, शेर उसीके पास बैठा था। राजा कभी २ अपना बायां हाथ उसके माथे पर डालकर उसे सहला दिया करता था। शेर भी प्यारके कारण राजाके हाथको चाटने लगता था। धीरे २ राजा पढ़ने में तल्लीन हो गया, और शेर भी उसी प्रकार हाथ चाटता रहा। शेर हाथ चाटने में इतना व्यस्त था कि उसकी रुखड़ी जीभ के घर्षण से राजाके कोमल हाथ से रक्त कण छिटक पड़े, खूनके स्वाद को पाकर शेर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह और जोरसे राजा के हाथ को चाटने लगा।

चाटनेके द्वारा कष्ट होने पर राजाने हाथकी ओर देखा, उससे खून टपकते देख अपने हाथको खींचना चाहा, परन्तु ज्योंही हाथ हिलाया कि शेर एकाएक गुर्रा उठा और हाथको पंजों से पकड़कर चाटने लगा।

राजाने सोचा, यदि इस समय मैं अपना हाथ खींच लेता हूँ तो यह हिंसक जीव मुझे विना मारे न छोड़ेगा, क्योंकि मेरे शरीर से रक्तका स्वाद पा चुका है। अस्तु, धैर्य्य पूर्वक अपने को सम्हाल लिया। इधर हाथको उसी प्रकार शेरके मुंह में लगे रहने दिया और पुस्तक की ओर मुँह करके अपने नौकरको पुकार कर कहा कि जल्दी वन्दूक लेकर आओ, और इस शेर को मार डालो। नहीं तो यह आज मेरी हत्या कर देगा।

नौकर राजाकी बात सुनकर दौड़ा हुआ आया और पीछे से वन्दूकका निशाना ठीक करके शेरके ऊपर गोली छोड़ा। गोली शेरकी छाती को पार कर गई, और वह मर गया। तब राजाने अपना हाथ उठाया

...जिस दिन आप इस जिन्न को काम नहीं देंगे, उस दिन यह आपको खा जायगा। बंजारे ने कहा पर्वाह नहीं; काम की कमी हमारे यहाँ नहीं है।

बंजारा जिन्न को लेकर घर आया--रात में खा पीकर सो गया, सबेरे उठते ही उसने जिन्न की डिब्बी खोली। तुरत पर्वत के मानिन्द सूरत वाला एक जिन्न खड़ा हो गया और बोला काम बताओ। हम उस आदमी के गुलाम हैं जिसके पास यह डिब्बी है। बंजारे ने कहा जाओ तेहरान जाकर हमारी कोठी का समाचार ले आओ। तुरत जिन्न गायब हो गया।

इधर बंजारा हुक्का मंगवा कर पीने लगा। अभी वह मैदान जानेके लिये उठा ही नहीं था कि जिन्न आ पहुँचा और सब समाचार सुना कर कहा काम बताओ। बंजारे ने कहा शीराज जाओ, तुरत ही वह जिन्न गायब हुआ। बंजारा भी बधना में पानी लेकर शौच के लिये घर से निकला, अभी गाँव भी पार नहीं कर पाया था कि जिन्न आगया और समाचार सुनाकर काम मांगा। बंजारा उसे बगदाद जाने के लिए कह कर आगे बढ़ा—ज्योंहीं गाँव के बाहर पहुँचा था कि वह फिर आ पहुँचा और सब समाचार सुनाकर बोला—काम।

बंजारे का कुछ रुपया लोगों के यहाँ बसरा में बाकी था। उसने फौरन उन सबों का पता ठिकाना बताकर कहा शीघ्र रुपये ले आओ। उधर जिन्न बढ़ा और इधर बंजारा भी जल्दी २ एक झाड़ी के किनारे पहुँचा। वह चाहता ही था कि शौचके लिये बैठूँ, तब तक लाखों रुपयों की गठरियां लिये हुये जिन्न आ धमका। अब तो बंजारे के होश उड़ गये, और वह भाग खड़ा हुआ। जिन्न ने उसका-यह कहते हुये पीछा किया कि ठहरो मैं तुझे खाऊँगा। बंजारा भी कब रुकने वाला था? दौड़ता ही गया।

थोड़ी दूर पर एक दरवेश रहता था। बंजारा उसी के पास जाकर उसके पैरों में गिर पड़ा और कहा फकीर साहब मुझे इस जिन्न से

। दरवेश को दया आ गई, उसने जिन्न को कहा ठहरो। जिन्न मैं नहीं ठहरूँगा—यदि तुम उस के जामिन हो जाओ तो हम रुकें। दरवेश जामिन हो गया। तब वंजारे और जिन्न ने अपनी २ कहानी कह सुनाई। थोड़ी देर के बाद जिन्न ने दरवेश से कहा, काम बताओ, दरवेश ने हा देखो वंजारे के तालाब में जो लाठ गड़ी है उसपर चढ़ा उतरा करो यही तुम्हारा आज से काम रहा। जब वंजारे को कुछ जरूरत हुआ करेगी तब तुम्हें बुलवा लेगा। इसके अलावे और समय में तुम बस यही चढ़ा-उतरी किया करो।

सत्य है—

तन ही सौदागर बना, मनवाँ भूत समान।
आत्मज्ञान बिन साधुके, तन नाशत अज्ञान॥
मन साधे सब कुछ सधे, याते याको रोक।
थिरकर मनको आज तू, मिट जावै दुख शोक॥

४९—दुष्टों से दूर रहो।

मत अब सीख सिखावनो, दुष्टन ते रह दूर।
संग किये दुख मिलहिंगे, नश जै हैं बल,शूर॥

अपने गाँव में प० बोपदेव बड़े विद्वान थे। उन्हें धाधूँ नामका एक लड़का था। वह बुरे लड़कों के संग में बिगड़ गया था। पं० जी उसे रोज समझाते कि देख तू दुष्टों के संग में मत दौड़ा कर। परन्तु वह कभी अपने पिता की बात नहीं मानता था।

धीरे २ दुष्टों ने उसे वेश्यागामी बना दिया। वह नित्य प्रति वेश्या के यहाँ आने जाने लगा। जो कुछ रुपये पैसे मिलते थे वह सभी वेश्या के चरणों में न्योछावर कर दिया करता था। उसके माता पिता इस कृत्य से दिन रात रोते और पछताते रहते थे।

जो कुछ बची बचायी बुद्धि थी वह भी चौपट हो गई। पहले तो कुछ दिन वह इस काम को गुप्त रीति से करता रहा। परन्तु कुछ दिनों के बाद खुल्लमखुल्ला खाने पीने लगा।

दुर्व्यसन तो बीसों लग गये, परन्तु उनकी पूर्ति कहाँ से हो ? द्रव्य कहाँ से आवे ? दुष्ट नीचों ने उसे चोरी करने की सलाह दी। अब वह दिन रात सेंध मारा करता और द्रव्य लाकर अपना जीवन नष्ट करने में लग जाता था। कुछ दिनों के बाद शहर में चोरी की खूब धूम मच गई और यह देख राजा ने राज्य भर का बड़ा कड़ा इन्तजाम किया। वह चोरी में पकड़ा गया। जेल भोगने के बाद आया। सब चोर २ कहने लगे। तब जंगल का पैगाम किया।

इधर दो तीन दिन से ब्राह्मण का बालक चोरी में कुछ नहीं पा सका, खाली हाथ लौटने लगा। रात में पहरा इतना कड़ा रहता था जिसके मारे कहीं दाल नहीं गलती थी, तब सबों ने सलाह दी कि तुम शहर छोड़ कर जङ्गल की खाई पर बैठो, जो मुसाफिर आते दिखाई पड़े, उसे मार कर धन छीन लिया करो, दिन भर तो वहीं रहो साँझ के समय शहर में आकर मौज उड़ाओ। अब ब्राह्मण बालक ऐसे ही करने लगा।

एक दिन जाबालि ऋषि जङ्गल से चले आ रहे थे। उन्हें देख ब्राह्मण कुमार ने कहा जो कुछ तुम्हारे पास है रख दो। नहीं तो एकही लट्ठ में मार गिराऊँगा। जाबालि ने कहा—बेटा, यह क्या कहते हो ? किसके लिए तुम इस घृणित काम को अपने सिर पर उठाये हो ? ब्राह्मण बोला मैं अपने लिये ही नहीं ? बीसों आदमियों के लिये यह काम करता हूँ।

ब्राह्मण की बातें सुनकर ऋषि ने कहा—बेटा ! यह अधर्म है। इसको छोड़ दो, यह तुम्हें नरक में ले जायगा। ब्राह्मण ने कहा वाह वा ! मैं तो इसे वर्षों से कर रहा हूँ। हमारे मित्रों ने तो मुझे यही कर्म

करने का उपदेश दिया है। कैसे हम समझ लें कि यह बुरा है, यह हमारी गाढ़े पसीने की कमाई है।

ऋषि ने समझा यह बड़ा मूढ़ है। यह ऐसे न मानेगा, इससे दूसरी युक्ति की जाय। उन्होंने कहा—अच्छा, अपने मित्रों से जरा पूछ लो आओ, वे क्या कहते हैं?

ब्राह्मण ने कहा तुम तो बड़े गुरु हो, हम उधर जायँ और तुम इधर चल दो, तब हम क्या करेंगे? जाबालि ने कहा नहीं, मुझे बाँध दो, ब्राह्मण ऋषि को बाँध कर गाँव में आया और वेश्या तथा दुराचारी मित्रों से पूछा, सबों ने बताया कि यह अधर्म है। तुम जो कुछ करते हो वह तुम्हें ही भोगना होगा। ब्राह्मण को बड़ा दुःख हुआ। वह दौड़ा हुआ आया और मुनि का बंधन खोल उनके चरणों में गिर पड़ा। महात्मा ने उसे उपदेश दिया। उसने उसी दिन से बुरों का साथ छोड़ दिया।

इस लिये—

जो सुख चाहो जगत में, मनवाँ मानो बात।
दुर्जन ते रह दूर ही, तब को करिहैं घात॥
सदा सुजन सत्संग में, काटो काल कराल।
पाप भस्म ह्वै हैं छिनें, कटिहैं पूरन जाल॥

५०—सत्य बोलो।

एक ब्राह्मण कहीं परदेश गया था। उसके घर पर उसकी स्त्री और एक लड़का था। विदेशमें ब्राह्मण बीमार पड़ा, और अपने घर पर खबर भेजा कि लड़के के साथ १००) भेज दो।

उसकी स्त्री बड़ी दुःखी हुई। अकेले लड़के के साथ १००) रु० कैसे भेजे। राहमें बड़े २ जंगल पड़ते थे। उनमें डाकुओं का बड़ा भारी लश्कर रहता था। जो उस राहसे निकलते थे सभी को पीट २ कर उनके पास जो कुछ रहता था छीन लेते थे। चिट्ठीका हाल सुनकर

... ने कहा—माँ ! मुझे आज्ञा दो, हम अपने बापके पा पहुँच जायेंगे। ईश्वर हमारा रक्षक होगा, तुम चिन्ता मत करो।

लड़के के कटिबद्ध होने पर माँ ने एक लम्बी थैली में १००) देक कहा—बेटा ! इसको कमर में हिफाजत से बाँध लो, राह में निर्भ रहना, बराबर ईश्वर का स्मरण करते रहना, कभी झूठ न बोलना।

उसी दिन लड़का माता को प्रणाम कर चल दिया। कई दिन तक लगातार चलने पर एक दिन उस जङ्गल में पहुँचा जहाँ डाकुओं क दल रहता था। चलते-चलते दोपहर को ३, ४ डाकू उसे मिले। उन लोगों ने इसे पकड़ कर कैद कर लिया और सायंकाल में सभी कैदियों के साथ इसे भी सरदार के सामने पेश किया। सरदार ने एक-एक करके सभी कैदियों से पूछा तुम लोगों के पास क्या है ? लोगों ने कहा कुछ नहीं, परन्तु तलाशी लेने पर सभी के पास रकम निकलती जाती थी। सरदार सबोंको पिटवाता और तरह तरह से दण्ड देता था। अन्त में इस लड़के की भी बारी आई। सरदार ने इससे भी पूछा लड़के ! तुम्हारे पास क्या है ? इसने निर्भीकता पूर्वक उत्तर दिया, मेरे पास १००) हैं। माँ ने चलते समय मेरे कमर में बँधवा दिया है। सरदार इस लड़के के उत्तर को सुनकर चुप हो रहा, और उसे ज्ञान हो गया कि लड़का बड़ा सत्यवादी है। उसने अपने साथियों से कहा इसे १००) हमारे तरफ से इनाम दो—और जहाँ यह चाहता है वहाँ निर्विघ्नता पूर्वक पहुँचा दो। दो डाकुओं ने लड़के को कन्धेपर लाकर उसके बाप के यहाँ पहुँचा दिया।

५१—साहसी बनो

संसार के समस्त कार्य साहस से ही होते हैं। साहस के द्वारा व्यक्ति उस कठिन से कठिन कामों को कर लेता है जिन्हें आलसी और प्रमादी असम्भव कह कर छोड़ देते हैं। साहस से क्या नहीं होता ?

आज संसार के प्रत्येक आविष्कार जो बड़े-बड़े बुद्धिमानों को चकित कर रहे हैं उन सबों में साहस का ही खेल है। इनके आविष्कर्ताओं ने साहस से ही काम किया था। किसी समय इन्द्रदत्त नामका राजा राज करता था। उसका लड़का बड़ा वीर निकला। एक दिन राजा अपने अनुचरों के साथ आखेट खेलने के लिये वन में गया। कुँवर भी उसके साथ था। लौटते समय राजा का हाथी बैठ गया। पीलवानों ने बहुत परिश्रम किया, परन्तु नहीं उठा। अन्त में कुँवर को बहुत क्रोध हो आया और उसने हाथी को एक घूंसा मारा! बस! इतने ही में हाथी चिंघार मार कर मर गया।

कुँवर की वीरता की बड़ाई होने लगी। बड़े-बड़े जोधा इससे डरने लगे। उन लोगों ने राजा से कहा कि महाराज! कुँवर में कोई दानव घुस गया है। क्या मनुष्य में इतनी शक्ति हो सकती है कि वह एक घूँसे में हाथी को मार दे? कहीं कुंवर से और आप से किसी प्रकार का खटका हो जाय? यदि ऐसा हो गया तो वह एक अँगुली के धक्के में ही आपका अन्त कर देगा। राजा ने उन लोगों की बातें मानकर कुँवर को निर्वासन का दण्ड दे दिया।

जब यह बात कुँवर को मालूम हुई तो वह तनिक भी नहीं घबड़ाया, धैर्य पूर्वक अकेला केवल धनुष बाण लेकर जंगल में निकल पड़ा। जाते २ उसने बीच वन में देखा कि एक भीमकाय दानव पड़ा खर्राटे ले रहा है। अब तो वह न आगे बढ़ सकता था और न पीछे हट सकता था। परन्तु वह भयभीत नहीं हुआ। साहस पूर्वक दृढ़ होकर आगे बढ़ा। निकट पहुँचने पर उसके पद शब्द से दानव जाग पड़ा। खायों २ करता हुआ बालक के पीछे दौड़ा। वीर बालक वहीं पर रुक गया और धनुष पर तीर चढ़ा कर निशाना ठीक करने लगा। दानव को निकट आते देख उसने अपनी तीर चला दी। वह तीर जाकर दानव के आँख में लगी, तब तक दूसरी भी आकर उसके दूसरे आँख में घुस गई। दानव दोनों आँखों से रहित हो गया। यह देख

वह बड़े जोर से गर्जा। उसके कठोर शब्द से दिशायें प्रतिध्वनित हो गईं और वह निर्जन बन गूँज उठा, एकाएक वहाँ असंख्य दानव प्रकट हो गये और उस साहसी बालक को घेर कर मारने की चेष्टा करने लगे।

इतना होने पर भी बालक अपने साहस से नहीं हटा। बराबर लड़ता ही गया। उसने अपने तीखे बाणों से सहस्रों दानवों को मार गिराया। अपने साथियों को मरते देख सभी दानव भागने लगे। लड़का आगे बढ़ा, कुछ ही दूरके बाद उसे काँटोंका एक बड़ा बन मिला, उसने अपने साहसके द्वारा उसे भी पार किया। थोड़ी देरमें उसे आगका बन मिला, परन्तु उसमें भी दृढ़ रहा। सारा शरीर उसका झुलसने लगा। फिर भी चिन्ता नहीं, साहस पूर्वक बढ़ता ही गया। अन्तमें वह एक ऐसे नगरमें पहुँचा जहां के राजाकी प्रतिज्ञा थी कि जो कोई अग्निके कुण्ड पर चलेगा हम उसे अपना वजीर बनावेंगे। कोई इस काम को नहीं कर सके थे इस साहसी बालक ने कर दिखाया। राजा बहुत प्रसन्न हुआ और अपना राजपाट दे दिया।

५२-कुसंग का परिणाम

अच्छी संगति ही उपयोगी है। मनुष्य को सदैव भले आदमियों के संग में अपना अमूल्य समय व्यतीत करना चाहिये। सत्संग के प्रभाव से मनुष्य महात्मा बनता है।

कुसंग ही नाश का कारण है। मनुष्य कुसंग में पड़कर ही खड़-बड़ाता है। एक बार कुसंग कर लेने का परिणाम जन्म भर के लिये दुःखदायी होता है।

एक राजा के दो लड़के थे। राजा लड़कों को बराबर समझाया करता था कि कभी कुसंग में न जाना। आदमी कुसंग से बिगड़ जाता है।

बड़ा लड़का बड़ा फुर्तीला था। यह सवेरे उठकर शौचादि के

निमित्त बाहर चला जाता और सब कार्य्यों से निवृत्त होकर घंटों जङ्गल में एक महात्मा के यहाँ बैठ कर सत्संग किया करता था और इधर दूसरा लड़का बड़ा आलसी था, वह घंटों दिन चढ़े उठता और बाद नित्य कर्म से निवृत्त हो अपने उन साथियों के पास जा बैठता था जो शतरंज पचीसी, तास और जूआ खेला करते थे। धीरे २ इसे जुये की आदत पड़ गई। जुये का दुर्व्यसन आ जाने से छोटे की आत्मा कलुपित हो गई। उस में लोभ मोह और असत्य भाषण आदि अनेकों दुर्गुण घुस गये।

और इधर वह बड़ा बालक महात्मा के सत्संगके द्वारा पक्का महात्मा बन गया। उसके हृदय में दिव्य ज्ञान का प्रकाश उदय हो गया। संसार का यथार्थ रहस्य जान कर उसने सभी दुर्व्यसनों से अपने को हटा लिया, कामादिक प्रबल शत्रुओं को उसने हटा दिया। सर्वत्र उसकी प्रशंसा होने लगी, वह वास्तव में एक गण्य मान्य व्यक्ति हो गया।

छोटे लड़के ने धीरे धीरे कुसंग के द्वारा अपने को नष्ट कर दिया। उसके पास जो कुछ रहता था सब का जुआ खेल जाता था। जब पास में नहीं रहता तो घर से चीजों को चुरा लाता और बेचकर फूँक देता। कुछ दिनों के बाद जब घरमें कोई वस्तु नहीं मिलने लगी,तब बाहर खुले आम चोरी करने लगा। एक दिन दैवयोग से पकड़ा गया और अपने बापके पास न्याय के लिये लाया गया। पहले तो पिता को पुत्र की अधोगति पर दुःख हुआ, परन्तु करता क्या।

राजा ने मन में सोचा बालक सचमुच कुल घातक है। इसे छोड़ देने से न्याय का अपमान होगा। न्यायके लिये अपने आदमियों को भी दंड देना चाहिये। अतः उन्होंने कहा कि चोरी के अपराध में इसका दाहिना हाथ काट दो।

जल्लाद ने ऐसा ही किया। दाहिना हाथ कट जाने से लड़का दुःखी हुआ और दुर्गुणों की बात समझ गया। फिर वह ऐसा सुधरा जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

पाठकों ! सर्वदा ध्यान रक्खो । संतान दुर्व्यसनी न होने पावे। कभी कुसंग में उन्हें न जाने दो । परन्तु सब से पहले तुम्हीं कुसंगसे बचो, तभी तुम्हारे बच्चे तुम्हारा अनुकरण करेंगे ।

५३-किसीका उपकार के बदले अपकार मत करो, नहीं तो दंड भोगना पड़ेगा ।

गाँव के बाहर जङ्गल में एक साधु रहता था—उसके आश्रम के पास एक विशाल वट वृक्ष और ठंडे जलवाला एक कुआं था। उस शहर से चलने वाले मुसाफिर दो पहर को, बहुधा वहां रुककर विश्राम करते थे और बाद अपने २ घर जाते थे। सांझ हो जाने पर यात्री साधु बाबा के कुटिया पर ठहर जाते थे और सवेरे होते ही अपने २ घर का रास्ता लेते थे ।

साधु दिन भर भीख मांगता और सांयकाल में अपनी कुटी पर लौटता था। वहां जितने अतिथि ठहरे हुये रहते थे उन सबों को भोजन देकर आपभी भोजन करता था उसके इस उपकार की कहानी आसपास में सर्वत्र फैल गई थी। लोग उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। जहां जाता था लोग उसको प्रतिष्ठा करते थे और सभी मिलकर सहायता किया करते थे ।

वहीं पर एक गाँव में एक सेठ जी रहते थे। वे ऊपर से तो बड़े परोपकारी जान पड़ते थे, परन्तु भीतर उनका हृदय बड़ा कलुषित था। साधु महाराज दो तीन दिन उनके यहाँ गये, उसने कुछ अन्न देकर अपना पिंड छुड़ाया। एक दिन अचानक साधु महाराज ने दोपहर को आकर अलख जगाया। साधु को देख सेठ मन ही मन कुढ़ गया, परन्तु अपने भावको छिपाते हुए साधु से बोला, आइये! महाराज दंडवत, दंडवत ! साधु ने कहा, आशीर्वाद बच्चा ! आशीर्वाद !

साधु बाबा को कमरे में बैठा कर सेठ घर में गया और अपनी स्त्री से कहा कि ४ रोटियां ऐसी बनाओ जिसमें जहर मिली हो। यह साधु परच गया है ऐसे नहीं मानेगा। आज इसे ऐसी रोटी खिलाई जाय कि फिर कभी न खिलाना पड़े। न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसुरी। थोड़ी ही देर में सेठानी ने ४ रोटियाँ जहरीली बना दीं। सेठ जी उसे लेकर साधु के पास आये और उसके कमंडल में डालकर कहने लगे, महाराज! दास को न भूलियेगा कभी कभी इधर भी आ जाया कीजियेगा। हम आपके खास चरण सेवक हैं, सदैव सेवा के लिये तत्पर हैं। यह शरीर संतों का ही दिया हुआ है और उन्हीं के काम में भी लगना चाहिये।

साधु बाबा आशीर्वाद देकर सीधे कुटिया पर आये। वहाँ ठहर कर स्नान ध्यान से निवृत्त हो जो कुछ दूसरे दिन की भिक्षा अवशेष थी खाकर विश्राम करने लगे धीरे २ सन्ध्या हो गई। बाबा जी एकाहारी थे,—सेठ की बची रोटिया उन्होंने हिफाजत से दूसरे दिन के लिये रख दीं।

कुछ रात बीतने पर उसी जंगल में एक भूला हुआ मुसाफिर उसी राह से आ निकला और महात्मा जी से रात वहीं ठहर जाने के लिये प्रार्थना करने लगा। बाबा जी ने उसके ठहरने का प्रबन्ध कर दिया,जब वह मुसाफिर अपना सामान इत्यादि रखकर सुचित हुआ तब बाबाजी ने कहा—बच्चा कुछ खाओगे? युवक ने कहा—हाँ, महाराज भूख तो है परन्तु यहाँ मिलेगा क्या? बाबा जी ने सेठ की रोटियाँ मुसाफिर को दे दीं। थोड़ी देर में वह थका युवक धीरे २ सभी रोटियाँ खा गया, और पानी पी कर बाबा जी के पास आया। कुछ देर के बाद सेठ जी का हाल चाल पूछता हुआ बोला—महाराज! हम राह भूल गये थे, हम अमुक सेठ के लड़के हैं। बाबा जी ने कहा—बेटा! ये रोटियां भी तुम्हारे ही घर की थीं। मैं आज तुम्हारे यहां मिलने के लिये गया था। थोड़ी देर बाद साधु महाराज अपनी कुटिया में गये और

बच्चा वहीं सो रहा। यही सेठ जी का लड़का विदेश से लौट रहा था

सबेरे दिन चढ़ने पर भी बाबा जी ने देखा कि सेठ का बालक सोया पड़ा है। उन्होंने सोचा शायद सुकुमार होने से अधिक थक गया है इसलिये सो रहा है। परन्तु पहर दिन चढ़ने पर भी जब वह नहीं उठा तो साधु महाराज उसके पास जाकर जगाने लगे, परन्तु वह जागता कौन है? उसके तो प्राण पखेरू पहले ही उड़ चुके थे।

साधु ने देखा लड़का मरा है। उसका चेहरा काला हो गया है। वे विचारे बड़ी चिंता में पड़े। सोचने लगे रात में तो भला चंगा सोया था, इसे क्या हो गया? यह कलंक का टीका मुझे क्यों लगा, ईश्वर! मैंने कौन सा पाप किया है? मैं तो सदैव धर्म कार्य्यों में ही दत्तचित्त रहता हूँ।

सोच साच कर साधु ने सेठ जी को खबर दी कि तुम्हारा लड़का मर गया है। आओ देख जाओ। लड़के की मृत्यु का समाचार पाकर सेठसेठानी अपने पास पड़ोसियों के साथ रोते-पीटते साधु बाबा के आश्रम पर आये। वहां अपने लड़के को मरा देख उन्हें बड़ा दुःख हुआ। वे बार २ अपनी करनी पर पछताने लगे। हाय! हमने दूसरे के लिये कुआँ खोदा परन्तु वही हमारे लिये हो गया।

उन लोगों को विशेप रोते कलपते देख साधु ने समझाया--बेटा! चिन्ता मत करो, जो होने को था वह हो गया, अब रोने गाने से कुछ नहीं होता। धीरज धरो, और आगे कभी किसी की बुराई मत करना। जिसे न कुछ दे सको उसे पहले ही जवाब दे दो, स्पष्ट वक्ता दोपी नहीं होता। सेठ जी ने साधु की बात मान ली। लड़के का अन्तिम संस्कार कर बाबा जी से दीक्षा ग्रहण कर ली। कुछ ही दिनों के बाद उसने अपने को संसार का सच्चा सेवक बना लिया।

बंधुओ! इस उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करो, किसी का उपकार के बदले अपकार मत कर। नहीं तो दंड भोगना पड़ेगा।

५४—सुस्त लड़का मत बनो

किसी गांव में एक ब्राह्मण का लड़का था। वह सदैव हर कामों में सुस्ती किया करता था। वह प्रत्येक काम में बहुत देर करता था। जिससे उसका कोई काम सफल नहीं होता था। उसके माँ बाप बहुत समझाते, मगर वह किसी का कहा नहीं मानता था।

स्कूल से रोज शिकायत आती थी कि देर से आता है, घंटों बीत जाने पर स्कूल पहुँचता है। इसलिये स्कूल के लोगों ने उसका नाम ही लेट राम रख दिया था।

धीरे २ वार्षिक परीक्षा का समय आया। लड़के सब सेंटप हुये। किसी प्रकार लेटराम का नाम भी उसमें दर्ज हो गया। कल सभी लड़के ७ बजे सवेरे की गाड़ी से शहर के स्कूल में परीक्षा देने जायेंगे। परीक्षा १० बजे से आरंभ होगी।

परीक्षा के दिन सभी लड़के सवेरे ४ बजे उठकर शौचादि से निवृत्त हो ५ बजते २ स्नान कर लिये। ६ बजे कुछ खा पीकर स्टेशन आ पहुँचे। लेकिन लेटराम ४ बजे से उठते २ ६ बजे किसी प्रकार खटिये से पृथ्वी पर आये। किसी प्रकार शौच से निवृत्त हो बिना स्नान किये कपड़े लत्ते पहिर अपना सामान लिये स्टेशन की ओर बढ़े। फिर भी ठुमुक चाल से कदम रखते जा रहे थे। यदि शीघ्रता करता तो गाड़ी पकड़ सकता था। पर था तो लेटराम ही।

ज्योंही स्टेशन के निकट पहुँचा कि ट्रेन प्लेटफार्म पर आ गई। गाड़ी को देखते ही लगा लेटराम दुलकी खींचने। लेकिन अब दुलकी बिचारी क्या करेगी? अब तो सरपट से भी काम नहीं चल सकता। लेटराम दौड़ते २ स्टेशन के प्लेटफार्म के पास ज्योंही पहुँचा था कि गाड़ी ने सीटी दे दी। अब क्या होता है? गाड़ी प्लेट फार्म पार कर गई। लेटराम लेटर बक्सकी तरह पेट लिये रह गये प्लेट फार्म पर। उस वर्षका परिश्रम भी उनका बेकार गया।

५५—हुनर सीखो

एक राजा था, एक दिन वह जंगल में आखेट के लिये गया। सायं-काल में जब वह जंगल से लौट रहा था तब चोरों के एक दल ने उसे पकड़ लिया और बन्दी बना कर अपने जङ्गल वाले किले में ले जाकर बंद कर दिया।

राजा किसी प्रकार दिन काटने लगा, अपनी मुक्तिकी उसे कोई युक्ति नहीं दिखाई पड़ रही थी। वह दिन रात सोचा करता था कैसे उद्धार हो ? कैसे हम अपनी राजधानी में खबर दें? सोचते २ उसे एक युक्ति मिल गई।

उसने चोरों के सरदार से कहा—तुम मुझे कैद किये हो, हम व्यर्थ पड़े रहते हैं, इनसे अच्छा तो यह हो कि हम कुछ काम किया करें, मैं बहुत अच्छा रूमाल बनाना जानता हूँ। तुम मुझे बाजार से रंग बिरंगे सूत ला दिया करो, मैं नित्य एक रूमाल बना दिया करूँगा। उसे तुम आसानी से पचास रुपये में बेच लोगे। यदि यही काम रोज करते रहे तो कुछ ही दिन में तुम मालदार हो जाओगे।

चोरों के सरदार ने सोचा ठीक कहता है, यह वास्तव में हम सबों को सोने का यन्त्र मिला है। इस राय के अनुसार काम करने पर अवश्य हम लोगों को धन का अभाव नहीं रहेगा।

ऐसा विचार कर वह उसी दिन बाजार से हर रंग के सूत ले आया और राजा को देकर कहने लगा—लो, ये सब प्रकार के सूत ले आया हूँ, तुम इसका रूमाल बनाओ। राजा रूमाल बनाने लगा।

इधर राजा के एकाएक गायब हो जाने से राजमन्त्री बड़ा चिंतित हुआ, उसने छिपे २ सारा जङ्गल ढूंढ डाला। कहीं पता न लगा। परन्तु वह हताश नहीं हुआ। बराबर राज कार्य पर ध्यान रखता और राजा की खोज के लिये गुप्तचर से काम लेता रहता था। उसने

राज्य के लोगों पर यह सूचित किया कि राजा के आने की कोई दिन निश्चित नहीं है।

उधर जङ्गल के बन्द मकान में राजा ने एक रुमाल तैयार किया, उसमें बहुत से बेलबूटे बनाये और प्रत्येक स्थानों में फूलदार अक्षरों में अपना सन्देश मंत्री के पास लिखा। अपना पता ठिकाना लिख कर यह भी लिख दिया कि रुमाल ले जाने वाला चोरों का सरदार है। इस प्रकार जब देख लिया कि सभी बातें ठीक है तब चोरों के सरदार को बुला कर कहा—इसे लेकर बाजार में जाओ। और ५०) में बेच लाओ। इधर उधर न भटकना, सीधे राजा के मंत्री के पास चले जाना। वह तुम्हें ५०) दे देगा।

राजा के कहने के अनुसार चोरों का सरदार मंत्री के पास गया। मंत्री ने उस रुमाल को देखा। उसने सभी बातें जान लीं और तुरत सिपाहियों के द्वारा चोरों के सरदार को पकड़वा लिया, बाद अपनी सेना के साथ उस जङ्गल वाले मकान में पहुँचा जहाँ राजा कैद था। एक २ कर लोग अन्दर घुसने लगे, कुछ चोरों से उनकी मुठभेड़ हुई। परन्तु राजा के सिपाहियों के आगे वे कुछ नहीं कर सके। हताश हो सबों ने आत्मसमर्पण कर दिया। इसके बाद मंत्री ने राजा के बंद कमरे का दरवाजा खोलकर उन्हें बाहर किया।

चोरों को बन्दी बना सभी राजधानी में लौटे। राजा को पाकर प्रजा आनन्द विह्वल हो उठी। पाठकों! यदि राजा के पास यह हुनर न होता तो जन्म भर चोरों के कैदखाने में ही उसे सड़ना पड़ता। अतः कोई न कोई हुनर सबों को सीखना चाहिये।

५६—क्षमाका गुण।

नर को भूषण रूप है, रूपहुं को गुण जान।
गुण को भूषण ज्ञान है, क्षमा ज्ञान को मान॥

राजा बिन्दुसार के सौ लड़के थे। उनकी राजधानी पाटलिपुत्र में

थी जिसे अब पटना कहते हैं। वह बड़ा न्यायी राजा था—उसके रा
में बाघ और बकरी एक घाट में पानी पिया करती थी। राजा
मरने पर राज्य के लिये सौ भाइयों में लड़ाई होने लगी। अशो
सबसे बलवान निकला, उसने अपने निनावे भाइयों को मार कर अद
कुआँ में डाल दिया और आप राजा बन बैठा।

अशोक के गद्दी पर बैठते ही सैकड़ों शत्रु उठ खड़े हुये। लगे चार
तरफ से उत्पात मचाने। शान्त राज्य अशान्त हो उठा। चोर लुटेरे
और डाकू दिनदिन बढ़ने लगे, अपने राज्य का हाल देख अशोक
घबड़ाया, परन्तु डरा नहीं, बराबर सेनाओं के बल से उन्हें दबाता रहा,
परन्तु शत्रुओं की कमी नहीं हुई, दिन दिन बढ़ते ही गये।

इसी बीचमें कनिष्कों ने सर उठाया, सभी शत्रु उसी से जा मिले।
अब तो कनिष्क वाले बड़े बलवान हो गये। खूब लड़ाई हुई। लाखों
आदमी मारे गये। अन्त में अशोक ने उन्हें जीत लिया। जब वे बन्दी
रूपमें इसके सामने आये तो अशोक के हृदय में दया उत्पन्न हो गई।
उसने हुक्म दिया कि इन्हें छोड़ दो।

अशोक के क्षमा का प्रभाव उसके ऊपर खूब पड़ा, जन्म भर वे
लोग इसके ऋणी बन गये और सेवकों के समान इसकी सेवा
करने लगे।

अशोक अपने इन्हीं शत्रुओंके बल पर बौद्ध बन सका। क्षमा ने ही
उसके शत्रुओं को वशीभूत किया, जन्म भर कोई उसका शत्रु हुआ
ही नहीं, अतः क्षमा का गुण विचित्र है। जो सुख चाहते हो तो क्षमा
रूपी धन को अपनाओ।

५७—क्षमा की विजय।

क्षमा शस्त्र को कर गहे, शत्रुहिं काहि बसाय।
पाँच सात दस बीस का, विश्व विजय ह्वै जाय॥

एक बार विश्वामित्र ने कठोर तप किया, पृथ्वी थर्रा उठी, गगन हिल गया, मेरु विन्ध्यादि तथा स्वर्ग लोकादि काँप गया, सभी विश्वामित्रका लोहा मान गये, ऋषि ने अपने को सिद्ध किया कि मैं क्षत्रिय होते हुए ब्रह्मर्षि हूँ।

सबों ने विश्वामित्र की बात मान ली, परन्तु महर्षि वशिष्ठ ने कहा—नहीं, विश्वामित्र अभी ब्रह्मर्षि के योग्य नहीं हैं। वशिष्ठ को विपक्षी देख विश्वामित्र जल गये और मारे क्रोध के वशिष्ठ के सौ पुत्रों को एक-एक कर मार डाले।

इतना करने पर भी वशिष्ठ चुपचाप शान्त रहे, विश्वामित्र के प्रत्येक अपराधों को क्षमा करते रहे, उन्हें अपने पुत्रों के मृत्यु का तनिक भी शोक नहीं हुआ।

एक दिन विश्वामित्र ने विचारा संसार में वशिष्ठ को छोड़कर मेरा अनिष्ट कोई नहीं करता, सभी मुझे ब्रह्मर्षि कहते हैं, तब क्यों न मैं वशिष्ठ को ही मार डालूँ? ऐसा विचार कर एक दिन अँधियारी रात में तलवार लेकर वशिष्ठ के आश्रम की ओर उन्हें मारने के लिये चले, आश्रम में वशिष्ठ अपनी स्त्री से वार्तालाप कर रहे थे। विश्वामित्र खड़े होकर सुनने लगे, इन्हीं की चर्चा हो रही थी। वशिष्ठजी कह रहे थे कि तपस्या का बल विश्वामित्र जी के पास तो बहुत है, परन्तु एक बात की उनमें अभी बहुत कमी है। उन्होंने सब कुछ किया है, परन्तु अभी क्रोध को नहीं जीता, यदि वे क्रोध जीत जाँय तो ब्रह्मर्षि क्या स्वयं ब्रह्म हो जायँ।

वशिष्ठकी बातें सुनकर विश्वामित्र का हृदय भर गया, वे गद्गद हो उठे और तलवार फेंक कर वशिष्ठ के पैरों पर जा गिरे और क्षमा

माँगने लगे। वशिष्ठ ने उन्हें उठाकर हृदय से लगा लिया, और कहा भाई! आज तुम ब्रह्मर्षि हो गये। देखो तुमने हमारे सभी पुत्रों को मार डाला, परन्तु हमने क्रोध नहीं किया। बराबर उन्हें क्षमा करते रहे। क्षमा तू धन्य है! धन्य है!! तुम्हारी महिमा। क्षमा से ही वशिष्ठ जी की विजय हुई।

५८-सत्संग की महिमा। सत्संग करो।

का नहीं संगति कर सके, मोड़ै राण अनंग।
पारस परस कुधात ज्यों, त्यों शठ का सत्संग॥

सत्संग से ही सब गुणों की प्राप्ति होती है। मनुष्य सत्संग से ही सुधरता है, संगति के द्वारा ही मनुष्य में गुण दोष उत्पन्न होते देखा जाता है। मनुष्यको जाने दीजिये, पशु-पक्षियों में देखिये संगति के द्वारा बनते और बिगड़ते हैं। बहुत दिनों की नहीं है, अभी थोड़े दिन की बात है, जब कलकत्ता में अमेरिका से एक गो भक्त अंग्रेज अपनी ५ गायें और १ बन्दर के साथ आया था। उस बन्दर के विचित्र कार्य्य का कारण क्या था उसके माननीय गुणों के ग्रहण करने में किसकी कृपा थी? संसार को मानना पड़ेगा कि यह सब संगतिका खेल है। जो जैसी संगति में रहेगा। निश्चय ही वैसा हो जायगा।

किसी नगर में एक बहेलिया रहता था। नित्य जङ्गल से वह पक्षियों को पकड़ २ कर लाता और उन्हें बेच कर अपने परिवार का पालन पोषण करता था। एक दिन प्रभात काल पक्षियों के खोजमें निकला दिन भर जङ्गल में भटकता फिरा। लेकिन एक भी पक्षी नहीं मिला, सायंकाल हो जाने पर निराश होकर लौट रहा था कि एक पेड़ पर तोते के बच्चों की चहचहाहट सुना, वह तुरत उस पेड़ पर चढ़ गया और घोसले से तोते के दो बच्चों को उतार लाया।

बच्चों को लेकर जब वह नगर की ओर आ रहा था राह में उसे

एक महात्मा मिले, एक बच्चा तो उसने उन्हें दिया और दूसरा बाजार में एक कसाई के हाथ बेचा।

महात्मा अपने बच्चे को पाठशाला में रखा करते थे, वह रात दिन ब्रह्मचारियों के पाठों को सुना करता था, धीरे २ उसने बहुत कुछ वेद शास्त्र के सुन्दर उपदेशों को कण्ठ कर लिया।

इधर कसाई अपने तोते को कुछ पढ़ाता लिखाता नहीं था। उसके यहां मांस लेनेके लिये जो नीच लोग आया करते थे, और जो आपस में बुरी २ बातें किया करते थे तोता वही सुन २ कर दुष्ट वक्ता हो रहा था।

एकदिन एक चोरने दोनों तोतेको चुराकर राजाके यहां बेच दिया। राजा ने अवकाशके समय दोनों पिंजरा अपने सामने मंगवाकर पहले महात्मा के तोते को कहा—पढ़ो जी आत्मा राम ! इतना सुनते ही वह अच्छी अच्छी बातें सुनाने लगा, राजा बहुत प्रसन्न हुआ। पश्चात् कसाई वाले तोते को कहा—पढ़ोजी आत्माराम ! वह बुरी २ बातें कहने लगा, राजा ने पुनः आग्रह किया, अब तो वह उल्लू, हराम जादा और नालायक भी बकने लगा। राजा को बहुत गुस्सा आया, वह उसे मारने का विचार करने लगा। यह देख महात्मा वाला तोता बोला राजन् !

अहं मुनिवचनं श्रुणोमि
श्रुणोति यस्य यवनस्य वाक्यं ॥
न चास्य दोषो न च मे गुणो वा
संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ॥

५६—सत्संग की शक्ति

सात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक अंग।
तुले न ताहि सम सकल मिलि, जो सुख लह सत्संग ॥

एक बार विश्वामित्र और वशिष्ठ नाम के दो ऋषियों में परस्पर वाद विवाद हुआ कि हम बड़े, हम बड़े हैं। दोनों लड़ते झगड़ते

ब्रह्मा के पास गये, ब्रह्मा ने कहा तुम लोग शंकर भगवान के पास जाओ। शंकर भगवान समाधि में लीन थे, आकाशवाणी हुई कि तुम लोग विष्णु भगवान के पास जाओ। दोनों महात्मा विष्णु के पास गये अपना-अपना सवाल किये, विष्णु ने कहा देखो तुम्हारा फैसला यहाँ नहीं होगा, तुम लोग शेष भगवान के पास जाओ वे निर्णय करके बतला देंगे कि तुम दोनों में कौन बड़ा है।

विष्णु के कथनानुसार दोनों ऋषि शेष भगवान के पास गये। वे पृथ्वी को उठाये हुए अपने काम में लगे थे, दोनों महात्माओं को देख बोले—कहिये महात्मा, क्या आज्ञा है।

दोनों ऋषि हाथ जोड़कर बोले, भगवन्-हम इस अभिप्राय से आपकी सेवा में आये हैं कि आप निश्चित कर दें कि हम दोनों में कौन श्रेष्ठ है। शेषजी ने कहा—भाई हम इतनी बड़ी पृथ्वी को सिर पर उठाये हैं। आप लोग में से कोई यदि इसे रोकिये तो हम बत सकें। कि आप दोनों में कौन श्रेष्ठ है।

विश्वामित्र ने कहा यह कौन बड़ी बात है, हम अभी रोक लेते हैं। उन्होंने साठ हजार वर्ष के तपस्या का फल दिया, परन्तु पृथ्वी नहीं रुकी। यह देख वशिष्ठ जी ने कहा ठहरिये, मैं एक निमेष सत्सङ्ग का फल देता हूँ, पृथ्वी रुक गई और शेष जी बाहर हुए।

शेष जी को मुक्त देख विश्वामित्र ने पूछा, कहिये? हम दोनों में कौन बड़ा है। विश्वामित्र की बात सुनकर शेषजी हँसते हुए बोले क्या अभी तक आपको मालूम नहीं हुआ कि आप दोनों में कौन बड़ा है—विश्वामित्र लज्जित हो गये।

सत्य है सत्संग की महिमा अपरम्पार है? सत्संग क्या नहीं कर सकता।

६०—दुष्ट साधु का संग विकट परिणाम।

सङ्ग दोष गुण लहत हैं, भलो बुरो ह्वै जाय।
तज कुसंग जो भल चहै, नातरु जनम नशाय॥

बहराम नगर में बाबा रामदास रहा करते थे, सवेरे ही उनके यहाँ पचासों गँजेड़ी जुट जाया करते थे दस बजे तक सभी दम पर दम उड़ाते और बाद लाल-लाल आँखें लिये गिरते पड़ते अपना-अपना रास्ता लेते थे।

उसी नगर में रघुनाथ नाम का एक ब्राह्मण रहता था उसका लड़का भी कभी-कभी बाबाजी के पास जाया करता था। चिलम पीते २ कभी २ बाबा जी कह दिया करते थे लेओ बच्चा, लेओ एक फूँक, अरे यह तो प्रसादी है. इसमें दोष ही क्या? बाबा जी को यह कहते देख दस पाँच ठेलुये भी हां जी, हां जी कहने लगते थे। लड़का नहीं, नहीं, कहता था, परन्तु कुसंग क्या नहीं कराता? धीरे धीरे वह भी गँजेड़ी हो गया।

अब तो वह रोज सवेरे ही बाबा रामदास के पास पहुंचने लगा। दिन भर गांजे के ही फिराक में लगा रहता था लड़का जरा खूब सूरत भी था, बाबा जी ने उसे खिलापिला कर फाँस लिया। कुछ दिनों में वह बाबा जी का एकदम राम चेला ही हो गया।

लड़के के साधु हो जाने की खबर सुनकर रघुनाथ दौड़ा आया और लड़के से बोला बेटा! इस कुसंग से दूर हो, चलो अपने घर, यहाँ रहने पर तुम तीन कौड़ी के हो जाओगे। ये संडे मुसंडे तुम्हारा हलवा निकाल लेंगे, अभी तो बड़ा प्यार करेंगे, लेकिन चार दिन के बाद बड़े २ टोकना मलवावेंगे और जूठा उठवायेंगे और उस पर से चूतड़ पर छड़ी जमावेंगे। तब मालूम होगा। लड़के ने बाप का कहा न माना—और उल्टे उसे मारने दौड़ा, बाबा जी भी एकदम दलबल सहित बिचारे रघुनाथ पर टूट पड़े, विचारा जान लेकर भागा।

थोड़े ही दिनों के बाद हुआ यही, कुसंग में लड़का अवारा हो गया। चरित्र दोष में बाबा जी भी पकड़े गये। और उन्हें जेल हो गया, लड़का इधर उधर मारा २ फिरने लगा।

६१—मन का निग्रह

बन्ध मोक्ष कारण यही, मनवा सांचो जान।
मन साधे सब कुछ सधे, अबहूँ तज अज्ञान॥

जंगल में एक महात्मा रहते थे। दिन रात वे अपने योग में ही लगे रहते थे। सायंकाल में थोड़ा सा समय उन्होंने सत्संग के लिये निकाल रखा था। उसी समय दस पांच भक्त आ जाया करते थे।

महात्मा ने अपने एक प्रेमी भक्त को योग की क्रिया बतलाई, वह नित्य उसका अभ्यास किया करता था। कुछ दिनों के बाद महात्मा ने विचार किया। कि चलो आज भक्त को चलकर देखें—वह क्या करता है हमारी क्रियाओं को ठीक रीति से उपयोग में लाता है या नहीं। ऐसा सोच वे उस के घर पर गये। भक्त उस समय योगासन पर बैठा था, उन्होंने उसके पीछे से थोड़ी सी धूल आगे फेंक दी। तुरत वह इधर उधर देखने लगा, महात्माजी आप छिप गये। पुनः भक्त आँखें बन्द कर ध्यान करने लगा, महात्मा ने पीछे से ताली बजा दी, इस बार फिर वह इधर-उधर ताकने लगा। थोड़ी देर के बाद फिर भक्त ने बैठे-बैठे आँख मूँद लिया, इस बार महात्माजी उसके आगे से होकर निकल और अपने कुटी पर पहुँचे सायंकाल में वह भक्त आया। महात्मा ने उससे सभी बातें पूछा उसने सब कुछ बता दिया।

शिष्य की बातें सुनकर महात्मा ने कहा पुत्र! यह सब मन का खेल है, ध्यान में तो तुम्हारा मन था नहीं, तुम तो धूल और ताली में मन लगाये थे। यदि ध्यान में तुम्हारा मन होता तो तुम ताली का शब्द नहीं सुन पाते और न अपने आगे से किसी के

चलने फिरने का ही शब्द सुनते। अतः मेरी क्रियाओं के करने के पूर्व मन को रोको, उसे उसीमें लगाओ, तभी सिद्धि मिलेगी।

मन के हारे हार है। मन के जीते जीत ॥

८२—इन्द्रिय दमन।

जग जीतन जीतन नहीं, यातो तुच्छ समान।

जन्म अकारथ तो ठयो, इन्द्रिय दमन न जान ॥

रामचन्द्र ने रावण के हृदय में अग्नि-बाण मारा, उसके प्रबल ज्वाला से वह व्याकुल होकर धड़ाम से लड़ते लड़ते मैदान में गिर पड़ा। रावण के गिरते ही उसकी सारी सेना भागने लगी।

रावण का अन्तिम समय जान राम ने लक्ष्मण से कहा—भाई! रावण बड़ा पंडित था। उसके समान नीतिज्ञ संसार में कोई दूसरा नहीं है। तुम उसके पास जाओ और उससे नीति की शिक्षा ग्रहण करो।

लक्ष्मण बड़े भाई की आज्ञा पा रावण के पास पहुँचे, लक्ष्मण को देखते ही रावण ने कहा—'रघुवर्य्य नमस्ते' कहिये क्या आज्ञा है। लक्ष्मण ने अपने आने का कारण कह सुनाया।

लक्ष्मण की बातें सुनकर रावण ने कहा ठीक है, परन्तु यह बाण मुझे कष्ट दे रहा है। इसे खींचकर बाहर निकालो तब मैं कुछ कह सकूँगा। लक्ष्मण उसे खींचने लगे, परन्तु वह अँतड़ियों को खींचता हुआ बाहर निकलने लगा। यह देख रावण ने कहा—ठहरो, ठहरो? इसे इसी प्रकार रहने दो, मैं तुम्हें दो एक बात सुनाऊँगा। विशेष कुछ कहने की शक्ति नहीं है। सुनो सबसे बड़ी बात यह है, कि जन्म लेकर जिसने अपने इन्द्रियों को नहीं जीता उसने कुछ नहीं किया, यह इन्द्रियाँ ही सब कुछ कराती हैं। मैंने सब कुछ किया, लेकिन इन

इन्द्रियों को वश में नहीं रख सका, इसी कारण आज हमारी यह दुर्दश हुई। जग जीतने से बढ़कर है नफ्स जीत लेना। इन इन्द्रियों के मा मारा मैं जा रहा हूँ। इसी प्रकार रावण ने कई उपदेश लक्ष्मण क दिये। परन्तु अन्त में यही बताया कि इन्द्रिय दमन ही सब कुछ है

६३—चोरी करना पाप है।

निंद्य कर्म करनो नहीं, मन मैलो ह्वै जाय।
दूहूँ लोक बिगड़े तवे, सिर धुनि-धुनि पछताय॥

एक साहुकार का लड़का धन कमाने के लिये विदेश चला। राह में एक दिन एक महात्मा के आश्रम पर दोपहर को विश्राम करने के लिये ठहर गया। चलते समय महात्मा ने उससे कहा—बेटा! चोरी करना पाप है।

लड़केने इस बात को गाँठ बाँध लिया और विदेश जाकर एक बड़े शहर में एक धनवान बनिये के दूकान पर नौकरी कर लिया। बनिये के यहाँ सोने चाँदी की दूकान थी। उसके यहाँ दस पाँच और नौकर थे, परन्तु थे सभी चोर, रोज कुछ न कुछ सोना चाँदी चुराया ही करते थे।

बनियां यह सब जानता था फिर भी काम में होशियार रहने के कारण उन्हें नहीं निकालता था, क्योंकि उनसे उन्हें फायदा भी होता था। साहुकार का लड़का बड़ा सीधा था वह कभी चोरी नहीं करता था। बनिया उसे अपने लड़के के समान मानता था, क्योंकि उसे कोई बाल बच्चा नहीं था, उसकी स्त्री भी मर चुकी थी।

कुछ दिन के बाद बनिये को वैराग्य हो आया उसने साहुकार के लड़के के नाम अपना सारा धन कर दिया। और न्यायालय में यह अर्जी देकर जङ्गल में चला गया कि सरकार हमारे कारबार की जाँच करके साहूकार के लड़के के सुपुर्द कर दे।

दूसरे ही दिन राजकर्मचारियों ने उसके धन पर कब्जा कर लिया। और प्रत्येक नौकरों का हिसाब किताब देखने लगे। अब तो भयानक भण्डाफोड़ हो गया। सभी नौकरों के हिसाब में चोरी निकलने लगी बारह साल के हिसाब में करोड़ों का धन खजाने से गायब। सभी पकड़े गये। सबों के हाथ में हथकड़ी डाली गई और जेल भेजे गये।

बनिये का सारा धन साहुकार के लड़के को दे दिया गया। सत्य है चोरी करना निंद्यकार्य्य है। यदि बनियाँ के यहाँ साहुकार का लड़का भी चोरी करता तो—उसका धन पा सकता था? कदापि नहीं।

६४—शुद्धता से लाभ।

बाहर भीतर शुद्ध हो, मनबा भय तेहिं नाहिं।
स्वस्थ रहे सुर पुर चढ़े, जन्म सफल ह्वै जाहिं॥

एक पाठशाला में दो विद्यार्थी थे। एक का नाम साधो और दूसरे का माधो था। साधो अपने बदन की खूब सफाई रखता था, कभी गन्दगी नहीं करता था, जैसा वह बाहर से शुद्ध था वैसा ही अन्दर से भी था। उसका मन मैला नहीं था। माधो नट खट लड़का था। न तो वह कभी अपने बदन की सफाई पर ध्यान रखता और न अपने वस्त्रों के शुद्धता पर विचार रखता था। दिन रात गन्दगी में पड़ा रहता था। जैसा उसका बाहर था वैसा ही उसके भीतर भी कालिमा घुसी थी, उसका मन भी मैला था।

गंदगी ने माधो के मनोवृत्ति को बिगाड़ दिया, वह धीरे २ रोगी हो गया—पढ़ना लिखना तो दूर रहा अब तो वह खाट पर पड़ा २ कराहने लगा, परन्तु फिर भी उसने गंदगी नहीं छोड़ी, रोगों ने उसके शरीर पर अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया, अब भागेगा कहां? मन

ने और भी गज़ब ढा दिया। दूषित मन ने उसे और रुग्ण बना दिया, लोगों ने खूब दवा दारु की, परन्तु इच्छा शक्ति उसकी कूच कर गई थी। रोग जाय तो कैसे? हाय! हाय! करके वह अकाल में ही संसार से कूच कर गया।

अब साधो का हाल सुनिये। वह कभी रोगी नहीं हुआ सदैव स्वस्थ रहा, उसके हृदय में दिन दिन ज्ञान का प्रकाश बढ़ता गया, उसके हृदय में सन्तोष था, मन उसका शुद्ध और पवित्र था, उसने विद्या का खूब अध्ययन किया, उसका नाम देश २ में फैल गया। अतः संसार में सुखी रहने के लिये शुद्धता की बड़ी आवश्यकता है। विना शुद्धता और पवित्रता के कोई मनुष्य सुखी नहीं रह सकता, यह मानी हुई बात है। फिर अन्न, जल, वस्त्र, घर, पोथी, पत्रा जो कुछ उपयोगी पदार्थ हैं उनके शुद्धता पर ध्यान दो, अशुद्धता ही नाश का कारण है।

६५—बुद्धि की महिमा

मनवां जग जलधार है, अगम अगाध अपार।
बुद्धि वह्नि के भाग से, जावे नर भव पार॥

पुराने समय में भारत में महानन्द वंश का राज्य था। राजा महानन्द की दो स्त्रियां थीं एक क्षत्राणी और दूसरी एक नाइन, दोनों से राजा को नौ लड़के हुये थे। उन सबों में चन्द्रगुप्त बड़ा बुद्धिमान था।

एक समय महानन्द के यहां फारस के राजा ने एक पिंजड़ा भेजा जिसके भीतर एक शेर बना था। फारस के राजा ने कहला भेजा कि पिंजड़ा न खुलने पावे और शेर निकाल लिया जाय, अब तो महानन्द के दर्बार में खलबली मच गई। कोई उसे निकालने के लिये तैयार

यह हाल देखकर चन्द्रगुप्त दर्बार में आया, और सबों से कहा—देखो यह शेर किसी ऐसे वस्तु का बना है, जो गलने वाला हो। इस पिंजड़े को आग पर रक्खो, लोगों ने वैसा ही किया। आग पर रखते ही शेर गलने लगा, थोड़ी ही देर में एकदम गलकर बह गया, शेर लाख का बना था।

लोग चन्द्रगुप्त के बुद्धि की तारीफ करने लगे, इतना ही नहीं उसने बुद्धि से सैकड़ों काम कर दिखाया—यहां तक कि राज्य का उत्तराधिकारी नहीं होने पर भी अपने बुद्धिबल से भारत का सम्राट बन बैठा।

जिसके समक्ष न एक भी विजयी सिकंदर की चली।
वह चन्द्रगुप्त महीप था कैसा अपूर्व महाबली॥

बुद्धि से क्या नहीं होता? संसार बुद्धिबल से ही चल रहा है, बुद्धि की सर्वत्र प्रतिष्ठा होती है।

६६—विद्या की महत्ता

विद्या सम धन बल नहीं, याते कीजै प्रीति।
जा मिलते अखिलेश ते, या लीजै जग जीति॥

एक महात्मा अपने शिष्यों को एक दिन उपदेश दे रहे थे कि बालकों सुनो, विद्या की महिमा अपार है। तुम लोग प्रेमपूर्वक विद्या पढ़ो। यही मनुष्य का गुप्त धन है, इसे न तो चोर चुरा सकता है और न भाई बांट सकता है इसीसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है, इसी को धारण कर संसार मनुष्य बन सकता है। आज मैं तुम लोगों को विद्या की महत्ता के बारे में एक उदाहरण सुनाऊँगा।

एक सेठ के चार लड़के थे तीन तो महामूर्ख, लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर थे, चौथा पढ़ा लिखा हुआ था। सेठ के मरने पर चारों भाई लड़ने लगे, चौथे ने सोचा अरे ये सब थोड़े धन के लिये व्यर्थ लड़

रहे थे, छोड़ो झंझट, उसी दिन उसने तीनों भाइयों से कहा, भाई आप लोग हमारा हिस्सा भी आपस में बाँट लीजिये, व्यर्थ लड़ लड़कर परेशान मत हूजिये।

घर में सब कुछ शान्ति करके अकेला वह बाहर निकला। विदेश में वर्षों रहकर अपनी विद्वत्ता के द्वारा उसने खूब धन प्राप्त किया, अब वह सब प्रकार से सुखी हो गया। चारों ओर उससे उसकी इज्जत होने लगी विद्या ने उसकी विदेश में खूब रक्षा की, बन्धु के समान सहायक होकर उसे हर प्रकार के आफतों से बचाई।

कुछ दिन के बाद उसके तीनों भाई उसके पास आये, मूर्ख होने के कारण वे अपना सर्वस्व खो बैठे और भीख मांग मांग कर अपना जीवन निर्वाह करते थे, इसने फिर उन लोगों की सहायता की। विद्या के समान दूसरा धन नहीं।

६७—विद्वान् की प्रतिष्ठा

नृप पूजित ह्वै राज में, विद्या पूज्य जहान।
याते याको ग्रहण कर, महिमा मित्र! महान॥

किसी गांव में राजा रमेशचन्द्र के राज्य में एक पण्डित ब्राह्मण रहता था। उसकी विद्वता चारों ओर फैली थी, लोग उसे पूज्य दृष्टि से देखते थे, राजा को यह बुरा लगता था। कहीं २ तो राजा और विद्वान् जब दोनों एक स्थान पर कहीं जाते थे तब विद्वान् को आदर करते देख वे अपने प्रजाओं पर क्रुद्ध हो उठते थे।

राजा ने विद्वान् को देश निर्वासन का दण्ड दे दिया। बिचारा बाल-बच्चों को लेकर अपने जन्मभूमि को छोड़ राम राज्य में जा

राम राजा के राज्य में विद्वान ने खूब काम किया—राजा प्रजा सब उसकी प्रशंसा करते थे, उसने राम राजा के राज्य को विद्वान गुणी बना दिया—ब्राह्मण दश पाँच का ही नहीं—राजगुरु हो गया।

कुछ दिनों के बाद राम राजा के राज्य में एक उत्सव मनाया जाने लगा, उसमें देश देश के नरेश निमंत्रित किये गये।

उत्सव के दिन राजा ने एक ऊँचे सिंहासन पर विद्वान् को बिठाया, आप सातो राजा क्रमशः उसके नीचे वाले सिंहासन पर बैठे। इसके उपरान्त जितने बाहर के आये हुये निमंत्रित राजा गण थे वे बैठे, इधर उधर चारों तरफ नागरिक और दर्बारी बैठ गये।

सबों के बैठ जाने पर विद्वान् ने सभी सज्जनों को उपदेश दिया कि विद्या पढ़ो, अन्त में उसने यह कहा कि राजा तो अपने देश में ही पूज्य होता है परन्तु विद्वान की पूजा सर्वत्र होती है। राजा रमेशचन्द्र भी उन निमंत्रित राजाओं में बैठा था, वह तुरत उस विद्वान् को पहचान गया और सभा उठने पर उसके घर जाकर क्षमा प्रार्थना करने लगा, सत्य है विद्या ही प्रतिष्ठा दिलाती है।

८८—सत्य का प्रभाव।

सत्यहि ते धरणी थमी, तपहि सत्य ते सूर।
वहत सत्य से वायु भी, का जानै गुण कूर॥

सेठ हजारीमल को जुहारमल नाम का एक लड़का था। कुसंग में पड़कर वह बड़ा अवारा हो गया था, सेठ जी बहुत चाहते थे कि यह सुधरे, परन्तु दिन दिन बिगड़ता ही गया। इसीसे सेठ जी बराबर दुखी रहा करते थे। उन्होंने संकल्प कर रखा था कि जो हमारे लड़के को सुधार देगा उसे मैं दश सहस्र रुपये दूँगा। एक दिन सेठ जी के यहाँ एक महात्मा आये उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे लड़के को सुधार दूँगा, सेठ जी महात्मा के बात को सुनकर बड़े प्रसन्न हुये।

महात्मा जी से यहां से १०००) लेकर अपने कुटी पर आये और थोड़ा २ सैकड़ों स्थान पर पृथ्वी खोद कर रुपयों को गाड़ दिया, सेठ जी ने अपने लड़के से कहा--अरे अवारा नालायक जरा महात्माओं के पास तो उठा बैठा कर, दिन रात लुच्चे लफंगों के सोहबत में क्यों बैठता है। आज से भोला बाबा के पास जाया कर, लड़का उसी दिन बाबा जी के पास पहुँचा।

महात्मा ने लड़के को बिठाया कुशल समाचार पूछने के बाद कहा--क्यों बेटा, तुम्हें किसी बात की तकलीफ तो नहीं रहती, बोलो जो कुछ कष्ट हो बताओ। लड़के ने कहा, महाराज आज हमारे पास रुपया नहीं है--साधु ने कहा जाओ उस आम के पेड़ के नीचे खोद लो, लड़का गया और खोदकर १०) निकाल लाया इस प्रकार वह बराबर आता जाता और जब उसे जरूरत पड़ती तब बाबाजी उसे एक न एक जगह बता देते थे। एक दिन बाबाजी ने कहा, बेटा सुनो! तुम बराबर सत्य बोला करो तो हम तुम्हें रुपये दें। लड़के ने स्वीकार कर लिया और कहा और जो कुछ कहिये हम उसे मानने के लिये तैयार हैं। साधु ने कहा बस इतना ही काफी है।

रुपया लेकर लड़का अपने साथियों के पास गया, उस दिन लोग रात में सीताराम के मन्दिर में चोरी करनेवाले थे। लड़के से एक सिपाही ने पूछा आज क्या करोगे, उसने सच-सच बता दिया। सिपाही लोग पहले ही वहां पहुँच गये। चोरों को यह हाल मालूम हो गया दूसरे ही दिन से उन सबों ने इस लड़के का साथ छोड़ दिया--देखो, एक सत्य के पकड़ने से इसके सभी दुर्गुणी साथियों का साथ छूट गया। अब यह बराबर सच बोलने लगा कुमित्रों का साथ छूट जाने पर यह स्वयं सदाचारी और सुखी बन गया, तब तो सेठजी बड़े खुश हुये।

६९—साँच बराबर तप नहीं।

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदय साँच है, वाके हिरदय आप॥

राजा हरिश्चन्द्र के सत्य बल से देवताओं का राजा इन्द्र डर गया। उसने सोचा कहीं ऐसा न हो कि हरिश्चन्द्र हमारा सिंहासन ही छीन ले उसे उदास देख विश्वामित्र ने कहा, राजन् मत डरो। मैं अभी जाकर हरिश्चन्द्र के सत्य की परीक्षा लेता हूँ, निश्चय ही वह सत्य से हट जायगा—और तुम भय से बच जाओगे।

विश्वामित्र ने छल से राजा का राज्य दान करा लिया। दक्षिणा में उसे वंश समेत बेचवा कर छोड़ा फिर भी राजा हरिश्चन्द्र सत्य से नहीं डिगा।

राजा हरिश्चन्द्र का लड़का सर्प के काटने से मर गया, उसकी स्त्री उसे फूँकने के लिये श्मशान घाट पर ले आई जहाँ राजा घाट का कर चुकाने के लिये डोमरे की ओर से नौकर था—राजा ने कर मांगा। रानी ने बहुत कुछ समझाया परन्तु दृढ़व्रती अपने दृढ़ता से नहीं हटा, उसने कहा--

चन्द टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़ यह हरिश्चन्द्र के, टरै न सत्य विचार॥

मैं सत्य से कदापि विमुख नहीं हो सकता—यह सुनकर रोती हुई उनकी स्त्री अपनी आधी साड़ी फाड़ने लगी—कि इसे ही मैं घाट के कर रूप में दूँगी, उसी समय भगवान अपने विश्वस्त भक्तों के साथ प्रकट हुए--और राजा को अशीर्वाद दिये।

उसी समय विश्वामित्र और इन्द्र भी आकर राजा को धन्यवाद दिये, भगवान की कृपा से रोहिताश्व जी उठा।

चलते समय विश्वामित्र ने कहा राजन्! साँच बराबर तप नहीं

मेरे तपस्या का बल तुम्हें पथ-भ्रष्ट नहीं कर सका। जाओ अपना राज्य भोगो, जबतक सूर्य्य चंद्र विद्यमान रहेंगे तुम्हारी अक्षय कीर्ति फैली रहेगी।

७०--क्रोध ही काल है।

क्रोध काल जानो बड़ो, ह्वै जाओ नर क्रूर।
सत्य प्रेम हिम धीरके, मन याते रह दूर॥

राजा महानन्द के दो मन्त्री थे। एक का नाम शकटार और दूसरे का राक्षस था। राक्षस ब्राह्मण था परन्तु शकटार शूद्र होने पर भी अपने बुद्धि से प्रधान मन्त्री बन गया था।

महानन्द बड़े क्रोधी थे क्रोध की अवस्था में अन्ट सन्ट कर दिया करते थे। एक बार वे अनायास शकटार पर क्रोधित हो उठे, और हुक्म दिया कि इसका सारा धन राजकोप में मिला लिया जाय। और इसको परिवार समेत बन्दीगृह में बन्द किया जाय—खाने के लिये सिर्फ रोज १ सेर सत्तू दिया जाय।

शकटार बन्दीगृह में अपने परिवार के लोगों से कहा करता था कि यह सत्तू वही खाय जो इस राजा के वंश का नाश करे। शकटार के बाल बच्चों तथा उसकी स्त्री कोई उसे नहीं छूते थे, धीरे २ सभी भूख के मारे मर गये। शकटार थोड़ा २ सत्तू खाकर अपनी प्राण रक्षा करने लगा।

बन्दीगृह में रह कर भी एक बड़ी बुद्धिमत्ता का काम किया। जिस से राजा ने उसे जेल से बाहर कर पुनः राक्षस के पद पर नियुक्त कर दिया। परन्तु यह पहले की बात न भूला—अपने बच्चों का तड़प २ कर मर जाना इसके सामने नाच रहा था। यह रात दिन नन्दवंश के

शकटार ने चाणक्य को जंगल से लाकर पाठशाला में बिठाया और श्राद्ध पूर्णिमा के दिन विना निमंत्रित किए ही चाणक्य को सबसे ऊँचे मञ्च पर विठा दिया।

चाणक्य काला था, काला ब्राह्मण श्राद्ध में निषेध है। राजा ने जब मंडप में आकर देखा कि एक काला ब्राह्मण बैठा है तब क्रोध में आकर विना सोचे विचारे अपने नौकरों से कहा कि इसकी शिखा पकड़ कर बाहर निकाल दो। नौकर ने राजा की आज्ञा का पालन किया। जिससे चाणक्य की शिखा खुल गई, वह क्रोध से भर गया और बोला। जब तक मैं नंदवंश का नाश नहीं कर लूँगा तबतक अपनी शिखा नहीं बांधूँगा। हा! इसी क्रोध में नन्दवंश का नाश हो गया।

७१—क्रोध का परिणाम

प्रेम गयो भक्ति गई, दूर भयो तन ज्ञान।
क्रोध कियो फल का मिल्यो, अब तो मनवाँ जान॥

दो मित्र एक गाँव में रहते थे, दोनों साथ २ विदेश गये इकट्ठे रहकर खूब धन कमाये। एक दिन दोनों ने विचार किया कि चलो भाई अब घर चल चलें, बहुत दिन हुये बाल बच्चों की खबर नहीं मिली है। दोनों अपना २ समान ठीक कर घर की ओर चले।

कुछ रोज चलते चलते एक दिन एक जंगल में रात को ठहर गये। रात में विदेश के सुख दुःख की बातें होने लगीं; एक ने कहा यार! तुम तो कलवार के यहाँ रोटी बनाते थे, कलवार के यहाँ की रोटी खाना तो हाय! उसका अन्न तो अधर्म बतलाया गया है। हम तो कभी छू नहीं सकते थे, दूसरे ने कहा तुम तो यार! जीते गंगा पी गये, कुम्हार के यहां तो तुम रहते ही थे, उससे तो कहीं अच्छा कलवार है। दोनों बात ही बात में क्रोधित हो उठे।

थोड़ी ही देर में तमोगुण का पारा ऊपर चढ़ आया, ज्यों २ गरमी मिलती गई त्यों २ और ऊपर ही उठता गया। यहाँ तक कि लात, जूते, मुक्के और घूँसे की बारी आ गई, फिर भी मामला शान्त नहीं हुआ। दोनों अपने २ तलवार निकाल लिये और जुट पड़े बात की बात में दोनों यार उस निर्जन बन में कट मरे सारा धन वहीं पड़ा रह गया।

७२—सच्चा ब्रह्मचारी

ब्रह्मणे वेदादिविद्यायै चर्य्यते इति ब्रह्मचर्य्यम्।

महाभारत का संग्राम छिड़ गया, देश के बड़े बड़े वीर और योद्धा आपस में भिड़ गये। कौरवों की ओर भीष्म पितामह सेनापति थे। यद्यपि वे वृद्ध थे परन्तु उनके आगे बड़े बड़े महारथी एक क्षण भी नहीं ठहर सकते थे।

एक दिन घमासान युद्ध हुआ, हजारों वीर काम आये। पितामह के प्रहारों को रोकते रोकते अर्जुन शिथिल हो गया। भीष्म के बाण जनार्दन आकर पाण्डवों का नाश कर रहा था। सारी पाण्डवी सेना छिन्न भिन्न हो गई, अर्जुनादि वीर घबड़ा उठे, श्रीकृष्ण स्वयम् यह देख कर क्रोधित हो उठे। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि इस महाभारत के संग्राम में मैं अस्त्र नहीं उठाऊँगा। परन्तु पितामह के इस उग्र प्रलयकारी रूप को देखकर वे क्रोध को नहीं रोक सके, तत्काल सुदर्शन लेकर दौड़ पड़े।

श्रीकृष्ण को चक्र लेकर दौड़ते देख भीष्म ने प्रहार करना बन्द कर दिया और अपना मस्तक झुका कर रथ पर बैठ गये। उधर अर्जुन ने रथ से उतर कर श्रीकृष्ण को पकड़ लिया और समझा बुझा कर पुनः रथ पर बिठाया। पितामह की वीरता का क्या कारण था?

वे आजन्म ब्रह्मचारी रहे। ब्रह्मचर्य्य की शक्ति ने बड़े बड़े वीरों को परास्त किया, यह ब्रह्मचर्य का ही बल था कि भगवान् को भी

अपनी प्रतिज्ञा छोड़नी पड़ी। धन्य है, ब्रह्मचारी क्या नहीं कर सकता ? ब्रह्मचर्य के समान संसार में कोई दूसरा धर्म नहीं, बल नहीं, ज्ञान नहीं, और शक्ति-नहीं।

७३-सच्चा गृहस्थ का अतिथि सत्कार।

ब्रह्मचर्य व्रत पूणकर, पालन हित संसार।
लोभ द्रोह दुर्गुण तजे, मद माग व्यवहार॥

काशी खण्ड में रमाकान्त नामका एक ब्राह्मण रहता था। उसने ब्रह्मचर्य अवस्था में सांगोपांग वेदों का अध्ययन किया था, गृहाश्रमी बनने पर उसने परोपकार और ईश्वर भक्ति ही अपना कर्त्तव्य समझ लिया था। न तो वह किसी से द्वेष करता और न किसी से डाह, सबों से प्रेम पूर्वक मिलता था उसका यह सिद्धान्त था-कि मनुष्य मात्र से प्रेम करना ही ब्रह्मानन्द में मग्न होना है।

वह जानता था-कि—

आनन्द रूपी मोक्ष ही जिसके ग्रहण के योग्य है।
संसार में उसके सिवा नहीं अन्य कुछ भी भोग्य है॥
ममता नहीं घरबार की ब्रह्माण्ड भर घर मानता।
ज्ञानी अमानी संत मति गार्हस्थ्य सोई जानता॥

सर्वत्र रमाकान्त का मान था। नित्य दिन दुःखियों और अभ्यागतों का सत्कार किया करता था। किसी को. विमुख नहीं लौटाता था, उसके हृदय में सच्ची सहानुभूति थी। वह कपटी नहीं था उसकी अन्तरात्मा निर्मल थी। वह लोगों के सुख दुःखकी बात जानता था। एक बार कई महात्मा उसकी परीक्षा के लिये रात्रि में आये। उन सबों ने कहा "मुझे यज्ञ के लिये १००० तोले स्वर्ण दो" रमाकान्त ने कहा विश्राम कीजिये। भोजन तैयार है प्रसाद पाइये, हम स्वर्ण

का प्रबन्ध करते हैं। महात्माओं ने कहा नहीं, हम पहले स्वर्ण लेकर तब भोजन करेंगे।

रमाकान्त के पास इतना स्वर्ण कहां था कि महात्माओं को देता रातमें ही महाजन के यहां अपनी सारी सम्पत्ति रखकर १००० तोले स्वर्ण ले आया और महात्माओं को दिया। महात्मा प्रसन्न हुये और आशीर्वाद देकर चले गये।

रमाकान्त निर्धन हो गया, उसके पास कुछ रह नहीं गया, परिवार समेत दो दिन से भूखा था, तीसरे दिन ज्योंही भोजन बना कर खाने की तैयारी कर रहा था कि एक अतिथि आ पड़े। स्वयं न खाकर उसने अतिथि को खिला दिया। यहां तक उसने अतिथि सत्कार किया कि चालीस दिन तक भूखा ही रह गया। अन्त में भगवान प्रसन्न हो उठे, और वर देकर उसे आनन्दित कर दिये।

७४—सच्चा विरागी।

लोभ न काहू की करै, दुख सुख एक समान।
हानि लाभ जाने नहीं, जीवन मरन सुजान॥

एक बार राजा जनक के दर्बार में एक ऋषि आये। जिन्हें देखते ही सब हँसने लगे। उनका शरीर आठ स्थानों से टेढ़ा था।

दर्बार के फाटक पर पहुँच कर ऋषिने द्वारपाल से कहा कि राजा को खबर दो कि एक महात्मा मिलने के लिये आये हैं। दर्बारी ने राजा से जाकर कहा। जनक ने उत्तर दिया कि महात्मा को यहीं ले आओ।

राजाके कहने के अनुसार दर्बान ने महात्मा को दर्बार में हाजिर किया। महात्मा को देखते ही जनक हँस पड़े। राजाको अपनी कुरूपता पर हँसते देख महात्मा बड़े क्रोधित हुये और कर्कश स्वरसे बोले।

जनक ! आत्मा भी टेढ़ा या कुबड़ा है। बोल, तू क्या देखकर हँसता है। मेरे इस नाशवान शरीर को या हमारी अविनाशी आत्मा को।

राजाको तुरत ज्ञान प्राप्त हो गया, वे इतना सुनने पर शरीर और आत्मा के भेद को समझ गये। तत्काल उठ कर महात्मा के चरणों पर जा गिरे, महात्मा ने उन्हें उठाया और बतलाया कि मैं अष्टावक्र हूँ। तू आत्मा को देख, शरीर को नहीं। सुख दुःख हानि लाभ और जीवन मरन समान समझ किसी समय विषय में आसक्त मत हो। कभी कर्म फल की इच्छा न किया कर। निःसन्देह तू योगी हो जायगा।

जनक ने महात्मा की बात मान ली। दूसरे ही दिन से यह अभ्यासी हो गया। वह अष्टावक्र के उपदेश में इतना लीन हो गया कि कुछ ही दिनों के बाद संसार ने उसे विदेह के नाम से पुकारा।

सच्चा विरागी कौन है-सुनो।

मनरूप वनको शुद्धकरि दुर्वासना तृण काटके।
सत्संगकी कुटिया बना निःसंगतासे पाट के॥
एकान्त कुटिया में बसे तजि क्लिष्ट रूपी क्रूर हो।
ज्ञानी अमानी संत मति वैराग्य सोई शूर हो॥

७५ सच्चा संन्यासी का कार्य।

पाकर दृढ़ वैराग्य जो, मनमें देखे राम।
सम, थिर बुद्धि जहँ रहै, भेद भाव का काम।

बाल्यकाल के दृढ़ वैराग्य के कारण स्वामी शंकराचार्य्य ने संन्यास ग्रहण किया। वास्तव में उन्होंने जो कुछ संन्यासियों को चाहिये कर्म किया, किसी प्रकार की त्रुटि नहीं रक्खी। यदि वे कुछ दिन और पृथ्वी पर रह जाते तो संसार एक वैदिक का अनुयायी हो जाता।

सारा संसार बौद्ध धर्मी हो रहा था। जैनों ने ईश्वर पर सन्देह करना आरम्भ कर दिया। नास्तिक चारों ओर उछल रहे थे। पृथ्वी वैदिक धर्म से शून्य हो रही थी। ऐसे अंधकार के युगमें शंकर का जन्म हुआ था। उन्होंने देखा, ओ हो! यह तो भयानक प्रलय निकट है। विना वैदिक धर्मके प्रचार किये कुछ न होगा। मोही मानव अपने झूठे अभिमान में नष्ट हो जायेंगे।

वे शीघ्र संसार की रक्षाके लिये तैयार हो गये और अपना सम्पूर्ण जीवन इसी कार्य में लगा दिया। आज संसार में जो कुछ हम वेदों को देखते हैं वैदिक धर्म का नाम सुनते हैं यह सब उसी महात्मा के उद्योग का फल है। शकर ने अपने लिये नहीं वरन जन समाज के लिये सर्वस्व अर्पण कर दिया।

७६. धूर्त ब्रह्मचारी।

ब्रह्म वेद अरु वीर्य को, का जानै कछु हाल।
बन्यो मूढ़ बटु भ्रमत भव, लहत कुसंग कुचाल॥

डलमउ में गंगा के किनारे एक धूर्त ब्रह्मचारी रहता था। वह न तो कुछ पढ़ा लिखा था और न योग ही जप जानता था। और सब तो जाने दीजिये— सबसे वड़ा अस्त्र जो उसे धारण करना चाहिये था उस वीर्यरक्षा से भी वह शून्य था। उसकी इन्द्रियाँ उसके आज्ञा के अनुसार काम नहीं करती थीं।

वह भारी गजेड़ी और भगेड़ी था। सुल्फे ने उसे कफ का रोगी वना दिया, दिन भर हाथ में चिलम लिये खांसा करता था। न शरीर पर मांस रह गया था और न चेहरे पर तेज। आँखों के नीचे गढ्ढा हो गया था। शरीर पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं।

मन के दूषित होने के कारण स्वप्नदोष विना नागा हो ही जाता

था। इतना होने पर भी लोगों के सामने अपने को ब्रह्मचारी ही सिद्ध करता था।

वाह! आजकल ब्रह्मचर्य को लोगों ने खूब दूषित कर रखा है। संसार में इसके नाम पर कितना अनर्थ हो रहा है। आज हजारों दुष्टों ने इस पवित्र आश्रम को कलंकित कर दिया है। देश के सुधारकों को इस ओर ध्यान देना चाहिये। चार वर्णों के निर्वाह के लिये चार आश्रमों की सृष्टि हुई थी, जब तक ये चारों आश्रम न सुधरेंगे तब तक समाज के सुधरने की आशा रखना भूल है।

---

७७ स्वार्थी गृहस्थ।

मरथो जात तृष्णा ग्रसे, कृपण मूक मतिमंद।
सत्य धर्म तजि स्वार्थ लगि, करत विविध छलछन्द॥

एक गाँव में स्वार्थी गृहस्थ रहता था। वह किसी को एक पैसा देना भी बुरा समझता था, दूसरे का हड़प लेना ही उसने अपने जीवन में सीखा था। न तो वह सत्य जानता था और न प्रेम। पूरा कृपण था, कभी अतिथि सत्कार नहीं करता, दैवात् कोई अभ्यागत आ भी गया तो उसे टाल टूल कर किसी प्रकार उसे भगा देता था। दिन रात अपने ही स्वार्थ में लगा रहता था। इस प्रकार सूमड़ेपन से उसने करोड़ों की माया इकट्ठी की, परन्तु वह उसका उपयोग नहीं कर सका। केवल अपने सिर पर पाप लाद कर संसार से चल बसा। उसकी सारी माया यहीं पड़ी रह गई।

सत्य है—मनुष्यों को स्वार्थ के साथ २ परमार्थ का विचार रखना चाहिये।

७८—पाखंडी विरागी।

राग लिये घूमत फिरे, बन्यो विरागी संत।
कामिनी काँचन फेर में, क्या पावे तू अंत॥

एक जंगल में कुछ तपसी रहते थे। उनके यहाँ एक धूर्त्त विरागी पहुँचा। विरागी अपने को तो पूरा विरागी बताता था। परन्तु था बड़ा रागी। तपसियों ने जान लिया कि भारी पाखण्डी साधु है।

एक दिन रात में सत्संग होने लगा, एक तपसी ने जानकर विरागी की कौपीन धूनी में डाल दी। विरागी हाय! हाय! कहता हुआ चिल्ला उठा। इतने में ही सब तपसी बिगड़ उठे, क्यों क्या हुआ। विरागी ने कहा देखो, उन्होंने हमारा वस्त्र धूनी में डाल दिया, अब हम क्या पहनेंगे ?

तपसियों ने उठाया डण्डा लगे धमकने, विरागी बना है, अरे राग तो तुझे अभी घेरे है। पाखण्डी भाग खड़ा हुआ।

७९—कपटी संन्यासी।

दृढ़ विराग जाग्यो नहीं, मनको मिटा न मैल।
का साधे तू जोगड़ा, जुगत जोगिया जैल॥

मथुरा में एक दंडी संन्यासी रहा करता था। वह बड़ा धूर्त्त था घूम घाम कर मालपुआ और हलुआ उड़ाया करता था। घरके जब सभी मर गये, और रोटी का सवाल सामने आया तब ये संन्यासी हुये थे। मनमें मैल भरा था। संन्यासी भीतर से कपटी था, पराये धन जन को देख इसका चित्त फिसलता रहता था।

एक दिन एक भक्त के यहां पहुँचे। रात में वहीं रहे, भक्त विश्वासी था साधु महात्माओं का भक्त था। उसने बाबाजी का बड़ा मान किया। रातमें उन्हें खिला पिला और सुलाकर तब आप खाया पीया और सोया। संन्यासी महाराज रात ही में उसका माल मत्ता लेकर

चम्पत हो गये । भक्त सवेरे जब देखा तो बाबा जी लापते । साथ ही साथ घरका सारा माल भी नदारत । बड़ा दुःखी हुआ, परन्तु चुप नहीं बैठा, तुरत वारन्ट कटाया । बाबाजी पांच ही सात कोस पर पकड़ लिये गये । सारा माल मिल गया । न्याय कर्त्ताओं ने कहा—संन्यासी महाराज ३ वर्ष के लिये नई दुनिया देख आइये ।

८०—अंध ज्ञानी मूर्ख पुरोहित ।

ज्ञान ध्यान जाने नहीं, मनवां मूढ़ अजान ।
पाप बढ़ावे शीस पै, बिन जाने गुण मान ।

पं० बगुला नन्द चुनिया नगर में रहते थे । थोड़ा बहुत कूँथ काँथ कर पढ़ लिया करते थे । पर थे निरक्षर भट्टाचार्य ही, परन्तु बाप दादे की गद्दी पर चढ़ बैठे थे यजमानों के यहाँ पोथी से देख २ कर क्रिया कर्म कराया करते थे ।

एक दिन एक यजमान के यहाँ श्राद्ध कराना था । आप अपने दादे की लिखी श्राद्ध दर्पण हाथ में लेकर जा पहुँचे और श्राद्ध कराने लगे । खूब पिण्डा पड़ाया—यजमान बिचारा थक गया । आगे एक स्थान पर लिखा था "पित्रे सूत्रं दद्यात्" ये मूर्ख थे ही सू को इन्होंने समझा कि यह मू है । तुरत बोल उठे । यजमान अब इस पिण्डे पर मूतो । यजमान ने कहा हैं यह क्या ? पण्डित जी ने कहा, ठीक है ! देखते नहीं हो, इसमें क्या लिखा है—जानते हो यह हमारे पितामह की लिखी पुस्तक है—यह आजकल की तरह बिकनेवाली किताब नहीं है—यह गुप्त है—यह लिखा हुआ अशुद्ध थोड़े ही है । किस की शक्ति है जो इसमें गलती निकाले ? अच्छा, तुम नहीं मूतते तो तुम्हारे बदला मैं ही अब मूतूँगा । इतना कह कर पण्डित ने पिण्डों पर मूत दिया । जिससे सभी बह गया । यजमान हैं हैं करता ही रहा ।

८१ लोलुप भक्त।

भक्ति करै भगवान की, लोलुप भक्त गँवार।
राम राम मुख ते कहे, लिये बगल तलवार॥

सत्यनारायण जी के मन्दिर में एक लोलुप पुजारी रहता था, वह रोज घाट किनारे जाता और स्नान कर कुशासन बिछा चुपचाप पालथी मार कर बैठ जाता था। और गोमुखी में हाथ डाल कर बुद बुदाता रहता था। कभी कभी कनखियों से स्त्रियों की ओर निहार देता था।

भक्त क्या था? भक्ति की आड़ में काम की पूर्ति किया करता था। लोगों को ठगना, चकमा देना, किसी का धन हड़प लेना, तथा पराया माल अपना बनाने में जी जानसे लगा रहता था।

स्नान घाट से आकर ठाकुर जी की पूजा करता था। स्नान तो मूर्ति को कराता था। परन्तु मन तो भक्तिनों में लगा रहता था, उस मूढ़ ने अपना यह व्यापार बना लिया था. बीसों भक्तिनें आया करती थीं, बीसों का माल मारा करता था। धीरे २ उसकी पोल खुल गई और लोग उससे सचेत हो गये। उसकी बड़ी दुर्दशा हो गई अब वह मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहा, सभी उसके लोलुपी भक्ति पर थूकने लगे।

८२—अब तो मनवां चेत।

रात दिना बीतत गयो, निदिया खोयो राज।
अब क्यों सोवत मानवाँ, काया छीजे काज॥

दुर्गाकुण्ड पर एक कृपण रहता था। उसने कृपणता के कारण खूब माया जोड़ी थी। एक बार वह बीमार पड़ा, महीनों तक भोगता रहा। दस बीस दिन तक बाल बच्चे सब सेवा करते रहे। परन्तु अधिक दिन हो जाने पर सभी द्वेष करने लगे। जब कृपण खाट पर

पड़ा २ चिल्लाता था। तब उसके लड़के बैठे चिढ़ा करते थे और कहा करते थे कि बूढ़ा मर भी नहीं जाता। दिनभर खाँसता रहता है, सारा घर थूक से भर गया। चारों तरफ छई कर दिया।

बुड्ढा रात दिन हाथ मल २ कर पछताता था। कि हाय! हमने कुछ न किया—इन्हीं सबों के पीछे अपना सर्वस्व गँवाया। हा! इनके पीछे हमने क्या नहीं किया, परन्तु ये सब पूरे दुष्ट निकले मैं ऐसा जानता तो अधर्म कभी नहीं खोता।

लड़कपन तो खेल कर खाया—जवानी नींद भर सोया, बुढ़ापा देख कर रोया। हाय! कुछ न किया धीरे २ कृपण अच्छा हो गया और मरने तक फिर कभी अधर्म की तरफ ध्यान नहीं किया।

८३—चार दिनकी चाँदनी।

मनवा का भटका फिरे, प्रेम अमिय फल चाख।
चार दिनों की चाँदनी, फिर अँधियारी पाख॥

जो-जो यहाँ आ जन्मता सो सो यहाँ ते जाय है।
आकर यहाँ से जाय नहीं ऐसा न कोई उपाय है॥
गन्धर्व सुर राक्षस मनुज चर या अचर जितने हुये।
कोई नहीं है बच सके सब काल ने आ खा लिये॥

—

ज्यों शीशि कच्चे कांच के लगते ही ठोकर फूटनी।
त्यों देह कच्ची कांच सम है आज कल ही छूटनी॥
सम्बन्ध तनुका जीवका कब तक रहा कितना भला।
क्षण में झटक बन में पटक यह जीव जाता है चला॥

छोटा युवा बूढ़ा बड़ा, सब काल के हैं गाल में।
मन महल आशा का चुना, कर फँस कभी जञ्जाल में॥
यह महल बालू पर चुना क्षण मात्र में गिर जायेगा।
आ काल काले नाग सम भक्षण तुझे कर जायगा॥

जन्म लेना और मरना है चिरस्थाई नहीं।
इस विश्व में अब तक अमरता एक ने पाई नहीं॥
करि बुद् बुद् के सदृश, नश्वर भवन संसार है।
और भी जलकी लहर सा जीवका व्यवहार है॥

८४—तृष्णा से बचो।

मनवां तृष्णा से बचे, बने न याको ग्रास।
करि मोचन तन धन तउ, अन्त करहिंगे नास॥

चाहे समुन्नति शील होकर, व्योम में विचरण करो।
ब्रह्माण्ड भर की सम्पदा को, जीत कर निज घर भरो॥
तौ भी न तृष्णा पिंड छोड़ेगी, तुम्हारा सोचलो।
जो चाहते हो सत्य सुख, गोविन्द के पथ पर चलो॥
वह बीस भुज वाला दशानन, इन्द्र को भी जीत कर।
कैलास को कर पर उठा, कर सब धरा के भीत दे॥
उस स्वर्ण नगरी में कहाँ, निश्चिन्त निर्भय सो सका।
या सर्वथा निश्चय महाबल, शस्त्रधारी हो सका॥
आखिर नरों और वानरों की, मार सहनी ही पड़ी।
मन्दोदरी सी वीर जाया, रह गई रोती खड़ी॥
अतएव लौकिक दासको, यह आस करना भूल है।
गोविन्द प्यारे के बिना, संसार सुख सब धूल है॥

८५—चिन्ता का दुष्परिणाम।

चिन्ता सम शत्रु नहीं, खाय रक्त अरु मांस।
मृतक चिता में दग्ध हो, जीवित चिंता वास ॥

किसी गांव में एक बुढ़िया रहती थी, लोगों के यहाँ मिहनत मजदूरी कर अपना दिन काटती थी। उसे एक बेटे के सिवा और कोई नहीं था, जो कुछ कमा-कमा कर लाती थी—पहले अपने एकलौते बच्चे को सन्तुष्ट कर पुनः आप खाती पीती थी। धीरे धीरे कुछ दिनों में बालक सयाना हो गया। बुढ़िया ने उसे अखाड़े में भेजना शुरू किया, लड़का रोज नियमपूर्वक वहां जाता और दण्ड बैठक किया करता था। अखाड़े से लौटने पर बुढ़िया उसे बड़े प्रेम से खिलाती थी। खा पी लेने पर बालक उधर घूमने घामने के लिये निकल जाता और इधर बुढ़िया लोगों के यहां काम काज करने के लिए जुट जाया करती थी।

बालक सायंकाल से पूर्व घर आकर अखाड़े में पहुँचता था, बुढ़िया भी सांझ होते-होते घर आकर रोटी पानी करती थी, जब बच्चा अखाड़े से लौटता था तब उसे प्रेम पूर्वक खिला-पिलाकर आप भी कुछ खाती पीती थी। जब बालक सो जाता तब आप भी सोती थी, बुढ़िया रात दिन यही ध्यान रखती थी कि मेरे बच्चे को किसी प्रकार का कष्ट न हो।

लड़का निर्द्वन्द्व रहता था, स्वच्छन्दता पूर्वक निर्भय विचरता था, उसे किसी बात की चिन्ता नहीं थी, कसरत के अभ्यास से उसका शरीर अरोग और सुन्दर हो गया था। उसमें आलस्य का 'नाम न था। पहलवानों ने उसे होनहार समझकर कुश्ती लड़ाना भी शुरू कर दिया, धीरे-धीरे वह सभी दाव पेंच जान गया। उसके शरीर में काफी बल था, अखाड़े के सभी पट्ठों को उसने पटक दिया, अब लगा पहलवानों के भी दाँत खट्टे करने।

धीरे-धीरे वसन्त का दिन आ गया, वहाँ उस दिन एक बड़ा भारी मेला हुआ करता था। उसमें देश-देश के बड़े नामी पहलवान दङ्गल के लिये आते थे, बुढ़िया का लड़का भी उस दङ्गल में शरीक हुआ। और धीरे-धीरे उसने सभी नामी-नामी पहलवानों को पटक दिया, यह देखकर सबोंको ईर्ष्या प्राप्त हुई सोचने लगे कि क्या कारण है? यह घाँस भूस खानेवाला गरीब बुढ़िया का लड़का इतने बड़े वीरों को पटक रहा है जो रोज घी दूध और मक्खन खानेवाले हैं। निश्चय ही इसमें कुछ भेद है। सोचते-सोचते सबों ने निश्चय किया कि और कुछ हीं—यह निर्द्वन्द्व रहा करता है, इसे किसी बात की चिन्ता नहीं है। ह सदैव प्रसन्न मन रहा करता है। चिन्ता न रहने से ही यह इतना लवान हो गया है, यदि इसे चिन्ता में डाल दिया जाय तो इसका ौरुष घट जायगा, और हम लोग बातकी बात में इसे हरा देंगे।

ऐसा ही हुआ। पहलवानों ने पहले बुढ़िया को मिलाया और द्रव्य का प्रलोभन देकर कहा कि अपने लड़के की शादी कहीं ठीक कर। तू अब वृद्धा हो गयी है, तुम्हारा कौन ठिकाना, अब तुम्हारी अवस्था पके हुए फल के समान है, जब चाहे चू जाय। बुढ़िया ने कहा हां! सत्य कहते हो भइया लोग! हम इसका प्रबन्ध करते हैं।

बुढ़िया ने दौड़ धूप कर लड़के की शादी करादी। अब तक तो वह बिचारा अकेला था, अब क्या करे। उसे तो एक पुछल्ले की चिंता लग गई। घरकी चिंता, अन्नकी चिंता, धनकी चिंता, सुख भोगकी चिंता; स्वर्ग नरककी चिंता, तथा शरीर की चिंता, उसके हृदय में समा गई। अब और क्या बढ़ेगा? उसकी उन्नति रुक गई, उसका बल घट गया, अब वह परतन्त्र हो गया, उसका साहस और शरीर परिवर्तित हो गया। दूसरे वर्ष के मेले में वह पहलवानों को नहीं पटक सका।

८६-जहां संकल्प है वहीं मार्ग है।

चन्द्रनगर में एक महात्मा रहते थे। उन्होंने सैकड़ों ऐसे ऐसे आश्चर्य्य जनक काम किये जिन्हें देखकर लोग दङ्ग हो उठे। सभी यही कहते थे कि अरे! ये तो असम्भव कार्य्य को भी सम्भव कर देते हैं। एक दिन भक्तों ने उनसे पूछा महाराज क्या आपके पास कोई सिद्धि है जिससे ऐसे ऐसे कामों को कर देते हैं। महात्मा ने कहा नहीं, सिद्धि वगैरह कुछ नहीं है, हमतो केवल सङ्कल्प जानते हैं। जहां सङ्कल्प है वही मार्ग है—सङ्कल्प से ही सब काम होते हैं। तुम लोग भी दृढ़ सङ्कल्प धारण कर उन कठिन कामों को कर सकते हो जिन्हें तुम्हारे पूर्वज असम्भव कह कर छोड़ बैठे हैं। शिष्यों ने मान लिया कि ठीक है—सङ्कल्प बड़ी चीज है।

८७-सब धान बाईस पसेरी का वर्त्ताव।

जालिम सिंह जमीन्दार बड़ी क्रूरता से शासन करता था। वह छोटा बड़ा ऊँच नीच कुछ नहीं समझता था। सबके साथ एक ही वर्ताव करता था, लोगों को यह बुरा लगता था। सभी सभ्य आदमी उससे नाराज रहा करते थे। परन्तु जालिम सिंह नहीं सुधरा।

सब धान बाईस पसेरी का बड़ा बुरा परिणाम हुआ, जालिम सिंह अपनी जमींदारी से हाथ धो बैठा, ठीक है। सभी काम सोच विचार कर नीच ऊँच का ध्यान करके करना चाहिये। महात्माओं का वचन है—संसार में जो वस्तु जैसी है उसके साथ वैसा ही व्यवहार करो, विपरीत व्यवहार तुम्हारा नाश कर देगा।

८८-हाथ गोड़ सूखल सूखल ।

एक धनी महाजन का लड़का था, माता पिता उसे खूब मानते थे। उसे खूब घी दूध पिलाया करते थे कि मेरा लड़का जल्दी ही मोटा ताजा हो जाय । परन्तु गरिष्ट आहार उसे पचता नहीं था। धीरे धीरे उसका पेट बढ़ने लगा। हाथ पैर तो लकड़ी हो गये—पेट तमूड़े की तरह निकल आया, अब लगे लोग उसे देख देख कर हँसने। महाजन राम कोई काम लड़के को करने नहीं देते थे।

देखो ! आज संसार में लाखों माता पिता इसी प्रकार अपने संतानों का स्वास्थ्य नाश कर रहे हैं।

८९-मार २ कर वकील ।

एक लाला अपने लड़के को पीट पाट कर रोज स्कूल भेजा करता था। धीरे२ उसने वकालत पास कर लिया लेकिन रह गया गदहा ही। पिटम्मस ने उसकी वुद्धि कुन्द कर दी। सोचने विचारने का उसके पास दिमाग नहीं था। लाला कभी २ इसकी वेवकूफी पर कहा करता था कि अरे इसे तो हमने मार २ कर वकील बनाया है।

९०-नौ सौ चूहे खाय के

एक बाज बूढ़ा हो गया था। उसने अपने आहार के लिये एक यत्न ढूंढ़ निकाला, एक वृक्ष पर हजारों पक्षी रहा करते थे। उड़ता २ वहां गया और उन सबों से बोला। भाइयो ! हमने मंत्र ग्रहण कर लिया है। अब तो मैं वैष्णव हो गया हूँ, मांस खाने का शपथ किया है, हम तुम लोगों के शरण में आये हैं। तुम लोग सभी मिल कर हमारा पेट भर दिया करो, मैं अब बूढ़ा भी हो गया हूँ, कहीं चल फिर भी नहीं सकता, दिन भर तुम्हारे घरों की रखवाली किया करूँगा।

सभी चिड़िया बाज की बातों में नहीं आये। तुरत बोल उठे अरे! नौ सौ चूहे खाय के अब बिल्ली चली हज्ज को। सभी बाज पर टूट पड़े। अपनी दाल नहीं गलते देख बाज भाग गया। फिर कभी उस पेड़ की ओर नहीं आया।

६१—खट्टे अंगूर को खाय

एक लोमड़ी जङ्गल में घूम रही थी। घूमते २ वह एक अंगूर की लता के पास पहुँची। उस समय अंगूर तो खूब फला हुआ था। बड़े २ घुच्चे पके हुए अंगूर के लगे हुए थे। पके अंगूरों को देखते ही लोमड़ी के जीभ में पानी भर आया।

लोमड़ी अंगूर खाने के लिये खूब उद्योग करने लगी, परन्तु वह नहीं पा सकी। खूब उचकी, कई बार कोशिश की। जब लाचार हो गई और समझ लिया कि ये अंगूर नहीं मिल सकते तब यह कहते हुए वहाँ से चली गई कि—खट्टे अंगूर को क्यों खाय।

सत्य है, बहुत से प्राणी संसार में पड़े हैं—जो देखते हैं कि अमुक वस्तु दुर्लभ है तब उसकी निंदा करके अपने को संसार के समान श्रेष्ठ बनाने की चेष्टा करते हैं।

६२—मान न मान मैं तेरा महमान

एक साहुकार था, उसका दामाद विदेश गया। साहुकार को पता लगा कि हमारा दामाद मर गया। बहुत दिनों के बाद एक दुष्ट ने विचार किया कि चलो साहुकारके दामाद का रूप बनाकर उसके यहाँ पहुँचें। गहरी रकम सिद्ध होगी, साहुकार को कोई है भी नहीं।

दूसरे ही दिन वह साहुकार के यहां पहुँचा और खबर दिया कि आपके दामाद आये हैं। साहुकार दौड़ा हुआ घरके बाहर आया,

परन्तु उस आदमी को देख ठिठक रहा। साहुकार ने एक बार उसके चेहरे की ओर गौर से देखा, पश्चात् बोला तू मेरा मेहमान नहीं है, धूर्त्त कब मानने वाला आदमी था? उसने कहा वाह ! मैं ही तो आपका दामाद हूँ, दोनों में इसी प्रकार विवाद बढ़ता गया सेठजी ने कहा अरे ! मेरे दामाद के आंख के नीचे तो तिल था, तू मेरा दामाद नहीं। परन्तु धूर्त्त अपनी बात पर डटा रहा, बीसों आदमी इकट्ठे हो गये, दोनों लड़ रहे थे। उन सबों को इस प्रकार लड़ते देख सभी धूर्त से बोले वाह भाई, वाह। तुम तो खूब बने हो, तुम्हें कोई मानता नहीं, तुम तो अपनी ही खिचड़ी पका रहे हो। मान न मान मैं तेरा मेहमान, सभी आदमी उसे बेवकूफ बनाने लगे, धूर्त भाग खड़ा हुआ।

९३—ऊँची दूकान को फीकी पकवान

अधिक चटक मटक के भीतर पोल हुआ करता है। नाम बड़े दर्शन थोड़े। वैसे ही साज बाज तो खूब है किन्तु तथ्य कुछ भी नहीं, मनुष्यों को इससे बचना चाहिए। लोगों को टीम टाम पर ध्यान न देकर वास्तविकता पर विचार करना चाहिये। सुन्दरता पर मत जाओ, उसके गुण को देखो, बाहर की सफाई नहीं. भीतर की पवित्रता देखो तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

९४-घर घर देखा

एक बुढ़िया का लड़का मर गया—वह रोती पीटती बुद्धदेव के यहाँ पहुँची और बोली बेटा ! तुम समरथ हो—हमारे लड़के को जिलावो।

बुद्धदेव ने कहा भाई ! यह संसार मरने जीने के लिये ही बना है। जब वह मर गया तब तुम क्यों सोच करती हो ?

बुढ़िया ने अपना हठ नहीं छोड़ा, तब बुद्धदेव ने कहा—अच्छा, जाओ तुम एक मुट्ठी सरसों ऐसे आदमी के यहां से ले आओ जिसके यहां कोई मरा न हो।

बुढ़िया बहुत हैरान हुई। परन्तु ऐसा घर एक भी नहीं मिला। लाचार हो लौट आई और बुद्धदेव से कह सुनाई।

बुद्धदेव ने कहा, मां! यह संसार है, घर घर देखा एक ही लेखा। संसार में सब मरने के लिये ही आते हैं। बुढ़िया समझ गई और चुप चाप अपने घर को चली गई।

९५—दीवार के कान होते हैं

अपना भेद गुप्त रखना चाहिये, भेदों के प्रकट होने पर कार्य्य का महात्म्य नष्ट हो जाता है। जब तक कार्य्य न करलो किसी से उसके भेद को न कहो। एक की बात ब्रह्मा भी नहीं जान सकता, दो कान से तीसरा होते ही निश्चय है कि हजारों कान में पहुँच जायगा। और तुम्हारा भेद संसार में फैल जायगा।

प्रत्येक मनुष्य को चाहिये कि गुप्त बातें चाहे कोई अपना ही क्यों न हो उसके सामने भी न खोले। प्रिय से प्रिय मनुष्य के आगे भी खोल देने पर समझ लो तुमने अपना नाश ही किया। अतः सिद्धान्त प्रिय सज्जन कभी अपने भेद को न प्रकट करें।

९६-अधम छप्पर पर।

एक राजा छिप छिप कर पाप करता था। वह जानता था कि हमारा कर्म कोई नहीं देखता। परन्तु नहीं ईश्वर सर्व व्यापी है, वह सबों के पल-पल के कर्मों को देखता रहता है।

मरने पर वह यमराज के सामने लाया गया। यम ने उससे पूछा तुमने इन कर्मों को क्यों किया? वह कुछ भी उत्तर न दे सका। यम ने उसे कठोर दण्ड दिया कि यह पृथ्वी पर निर्धन होकर जन्में, ऐसा ही हुआ।

वह अहीर के यहाँ पैदा हुआ। बड़ा होने पर इसके सभी बाप दादे मर गये, अकेला रह गया भाई भी जाता रहा। अब तो आप भौजाई को लेकर रहने लगा।

कुछ ही दिन में भावज से प्रेम हो गया, और छिपे छिपे गुप्त प्रेम करने लगे। दोनों ने देखा कौन देखेगा? दैवात् भावज गर्भवती हो गई, इसने सैकड़ों उपाय किया कि गर्भ नष्ट हो जाय। परन्तु वह टस से मस नहीं हुआ। समय पर एक बालक हुआ ही। लोगों में उसकी इज्जत जाती रही। मरने पर यम ने इस बार रौरव में भेज दिया।

९७—पापका घड़ा भर गया।

राजा कंस बड़ा बलवान था। उसने अपने बल से बड़ा अनर्थ किया। लाखों निरपराध शिशुओं का बध किया, सहस्रों तपसी, योगी, यती और ऋषियों का नाश किया। उसके डरके मारे धर्म भाग खड़ा हुआ।

उसने स्वयं अपने हाथ से अपनी बहिन के सात नवजात शिशुओं को मारा। ऋषियों ने कहा—अब इसके पापका घड़ा भर गया। कुछ दिनमें इस असार संसार से कूँच करेगा। हुआ वैसा ही। श्रीकृष्ण ने मंच से उठाकर पटक दिया। आप कूदकर छाती पर जा चढ़े। कंस हक्का-बक्का हो गया। उसकी कोई शक्ति काम नहीं कर सकी। श्रीकृष्ण ने उसे बेदम कर दिया और खड्ग से उस पापी का सिर काट लिया। पाप का बुरा परिणाम होता है, पापघट पूर्ण होने पर बिना नाश किये

नहीं छोड़ेगा। एक से एक वीर इस पृथ्वी पर हुए जिसने-जिसने पाप किया उसका-उसका बिना सर्वनाश हुए नहीं रहा।

६८—बिच्छू का मंत्र न आवे साँप के बिल में हाथ डाले।

एक साधु बड़ा डपोर शङ्ख था। आता जाता तो था कुछ नहीं,परन्तु अपने को बड़ा सिद्ध बताता था, मूर्ख लोग उसे खूब मानते थे।

एक दिन वह किसी चेले के यहां गया। वहां सब जानते थे कि हमारे गुरु महाराज बड़े सिद्ध हैं। उन लोगों ने दस बीस ब्राह्मणों पण्डितों को भी बुला लिया कि गुरु महाराज से सत्संग होगा।

सांझ को गुरुजी बैठे तब सभी उनके आगे हाथ बांधकर खड़े हो गये और *प्रार्थना किये कि हमलोगों को 'कुछ उपदेश दीजिये। साधु* ने कहा—राम नाम जपो, यही उपदेश है। पण्डितों से फिर बातचीत हुई। पण्डित लोग जो कुछ पूछते थे साधु सबों में यही कहते जाते थे कि यह सब तो हमने देखा है। वेद भाष्य पर विचार हुआ, साधु जी ने कहा, हमारा सभी देखा है।

दूसरे दिन कई पण्डित भाष्य की शंका लेकर आये, तुरन्त साधु महाराज टट्टी चले गये। जब लौटकर आये तब पण्डितों ने पूछा, महाराज! शंका समाधान कर दीजिये। अब तो डपोरशंख ओय-ओय करके झूठ-मूठ कै करने लगे। परन्तु पण्डित भी कब पीछा छोड़नेवाले थे, सांझ को भी पहुँचे। साधु जी कोठरी में चले गये। चेलों ने कहा ध्यान करेंगे। अभी जाइये, कल आकर शंका समाधान कर लीजियेगा। उसी रात में साधु बाबा दो तीन घण्टा रात रहते ही भाग गये, फिर कभी उस गांव में नहीं आये।

९९—मन्तर न जन्तर सब से बड़ा तन्तर

एक आदमी का एक शत्रु था, उसने उसके लिये सैकड़ों मंत्रयंत्र से काम लिया, हजारों बार पुरश्चरण कराया, परन्तु वह नहीं मरा। अन्त में एक दिन एक तांत्रिक के यहां गया और सारा हाल कह सुनाया। तान्त्रिक ने बताया, सुनो, काम युक्ति से होता है, जहां मन्त्र और यन्त्र काम न दे वहां तन्त्र से काम लेना चाहिये। तन्त्र दो प्रकार का होता है, एक मारण दूसरा वशीकरण। मारण निषिद्ध कर्म है, वशीकरण उत्तम होता है। किसी युक्ति से उसे वशी करो। तब तो सब कुछ बन जायेगी। उससे प्रेम करो वह वशीभूत हो जायेगा। उसने ऐसा ही किया। प्रेम व्यवहार के कारण उसका शत्रु मित्र हो गया। यदि मारण से काम लेता तो सिद्ध न होता शत्रुता नहीं रुकती—ठीक है जहां मंत्र यंत्र काम न करे वहां तंत्र ही से सब कुछ बनता है।

१००—बप्पा न भैया सबसे बड़ा रुपैया।

किसी गाँव में धनुआ नाम का अहीर था। बहुत गरीब होने के कारण उसे कोई नहीं पूछता था। वह किसी योग्य था भी नहीं कि एकाएक द्रव्य पैदा करे। क्योंकि व्यापार के लिये भी द्रव्य चाहिये। भाइयों ने उसका साथ छोड़ दिया, स्त्री भी अपने मैके चली गई। अब विचारा करे क्या? कलकत्ता भाग गया, वहाँ जटी पर कुली में भर्ती होकर काम करने लगा।

एक दिन किरान से एक माल टूट कर जटी पर गिरा और उलट कर सुपरिंटेन्डेन्ट साहब पर गिर पड़ा—यहाँ पर यही काम करता था—साहब के ऊपर से जल्दी २ इसने माल हटाया और उन्हें बाहर निकाला। यद्यपि साहब को चोट पूरी लगी, फिर भी वह इसे बड़ा मानने लगा और तुरत अपने गोदाम का सारंग बना दिया।

अब वह सैकड़ों रुपये महीने में काटने लगा। कुछ दिन के बाद खूब धन दौलत लेकर अपने गाँव पर वापस आया। अब तो लोग उसे धन्नूबाबू! धन्नूबाबू! कह कर पुकारने लगे। भाई लोग भी आनेजाने लगे और स्त्री ने भी पत्र लिखा कि हमको लिवा ले जायँ। धन्नू ने सोचा, यार! कुछ नहीं, सब से बड़ा रुपैया है।

१०१—मैंने दुनिया का दलिद्दर दूर कर दिया।

बादशाहपुर में फकीरा नाम का एक तेली रहता था। एक दिन एक शेखचिल्ली उसके यहां तेल लेने के लिये गया, तेली ने उसे तेल दे दिया, परन्तु पैसा लेते समय तेली के हाथ से शेख चिल्ली का थोड़ा तेल गिर गया। इस पर तेली ने कहा ले जाइये इससे तो आपका दलिद्दर दूर हो जायगा। शेख चिल्ली बड़ा चंट था—उसने उठाया सोंटा और तेली के दस बीस कुप्पों को फोड़ दिया। तेली ने पूछा यह क्या? शेख चिल्ली ने कहा, ठहरो २ मैंने दुनिया का दलिद्दर दूर कर दिया।

१०२—दुखिया दुख करे सुखिया रोवे

कंचनपुर में बुद्धू नाम का बड़ा गरीब आदमी रहता था। बड़ी कठिनता से किसी प्रकार दिन भर मिहनत मजदूरी करके लाता उसीसे अपने बालबच्चों का निर्वाह करता था। उस विचारे को कभी सुख नहीं मिलता था।

उसी गांव में अर्जुन सिंह जमींदार रहते थे उनके पास काफी रुपया पैसा था, धन दौलत में किसी बात की कमी नहीं थी, भगवान ने सब कुछ दे रक्खा था, परन्तु एक बात के बिना वे विचारे बड़े दुःखी रहा करते थे वह यह कि वे जो कुछ खाते थे उन्हें हजम नहीं

होता था। बुद्धू यह बात जानता था—वह अक्सर लोगों से कहा करता था कि दुखिया दुःख करे सुखिया रोवे।

१०३—पछताये का होत है?

एक किसान ने जङ्गल में एक खेत तैयार किया, और पहले पहल उसमें मकई बोया। समय पर फसिल खूब बढ़ी, किसान के आनन्द को ठिकाना न रहा। उसने सोचा—इस खेत से सारी मिहनत निकल आयेगी, कम से कम १०० मन मकई तो मिलेगा ही।

धीरे २ मकई के बाल निकलने लगे, चारों ओर से पक्षी जुट जुट कर मकई के दाने खाने लगे—किसान पैर फैलाकर घरमें सोता रहा। लोग आकर कहते थे अरे तुम्हारे खेत में झुंड के झुंड बुलबुल, तोते, कौये, और गौरैये, दाना नोच रहे हैं। तब वह कहता था अच्छा कलसे इन्तजाम करेंगे। मारे ढेकमासों से सैकड़ों को तो गिरा देंगे। देखो न यह नया-नया गुलेल बना रहा हूँ, सैकड़ों को तो इसी से मार दूँगा। धीरे २ दस पांच दिन इसी में बीत गये। एक दिन किसान खेत पर गया—तो देखा कि फसिल सूख गई है। काटने योग्य है परन्तु देखता क्या है कि बालों में दाने एक भी नहीं हैं। तब तो वह सिर पर हाथ रख कर लगा रोने चिल्लाने। हाय! हाय! हमारा सर्वनाश हो गया। सर्वनाश हो गया। लेकिन उसके रोने गाने से होता क्या है? अब तो पक्षी सब दाने खाही गये।

१०४—अन जोखल खाई मल मल गाई

प्रयाग में गङ्गा किनारे लक्कड़नाथ नाम के एक साधु रहते थे। धांधू नामका उनका एक चेला था। था तो वह डील डौल में छोटा ही पर डबल खुराकी था, पांच सेर चून में भी उस का पेट नगाड़ा नहीं

नता था। भक्त लोगों का माल मनमाना उड़ाया करता था। जिस दिन किसी भक्त के यहाँ निमंत्रण मिल जाता था उस दिन तो और ी इसकी वाँछें खिल जाती थीं—पचासों जोड़ी पूड़ियां तो वात की ात में तोड़ डालता था। धांधू दास की तारीफ इस वात में थी कि ाद भर खाकर भी ऊपर से दो अढ़ाई सेर शक्कर फांक जाता था। स पर भी कोई पूछता तो यही वताता था कि वच्चा ! वावा लोग तो वल्पाहारी होते हैं।

एक दिन एक यजमान ने वावा जी को न्योता दिया। लेकिन हले ही पूछ लिया कि कितना समान वनावें। दोनों मूर्त्तियों ने कहा—वच्चा, साधुओं के भोजन के विषय में क्या पूछते हो ? वावा लोग तो रूखा सूखा जो कुछ थोड़ा वहुत पाते हैं—खा लेते हैं। भक्त ने सोचा दो मूर्ति वावा जी हैं और साढ़े तीन हमारे यहाँ है। एक हम दूसरी हमारी माँ, तीसरी औरत और आधा हमारा लड़का। कुल साढ़े पाँच मूर्ति के लिए साढ़े पाँच सेर चून सानना चाहिए।

भोजन तैयार करा कर भक्त वावा लोगों को लिवा ले गया। दोनों भोजन करने लगे धीरे २ भक्तराज का भंडार खाली हो गया। धाँधू भोजनकी वड़ाई करता हुआ दनादन पूड़ियाँ उड़ा रहा था। लकड़नाथ तो तृप्त हो चुके थे। धांधू अभी अपना लेटर वक्स पूरा नहीं कर सका था। उसने पूड़ियाँ माँगीं, उधर भक्त तो वड़े चक्कर में पड़ा था। सोच रहा था कि इन साधुओं का पेट है या भरसांई। पूड़ियाँ मांगते देख उसने तुरत कहा—अनजोखल खाई मल मलगाई। अव पूड़ियां रखी हैं, क्या दूँ ? न्योते के समय जव हमने पूछा था—तव साफ २ क्यों नहीं कहा कि हम दस सेर खायेंगे। साधु वड़े लज्जित हुए और हाथ मुँह धोकर चलते वने।

१०५—मोही मानव तू क्यों सोता ?

मोही मानव तू क्यों सोता, गफलत में धोखा खायेगा।
उठ जाग मुसाफिर चेत चेत, सर्वश खोकर पछतायेगा॥

एक महात्मा यह कहते हुए गाँवों में फेरी लगाते रहते थे कि मोही मानव तू क्यों सोता गफलत में धोखा खायेगा।

एक सेठ जी रोज सवेरे साधु की बात सुना करते थे—उनके मन में विचार अवश्य उत्पन्न होता था कि कुछ धर्म पुण्य करना चाहिए, परन्तु आलस्य और कृपणता के कारण कुछ नहीं कर सके। धीरे २ सेठ जी का अन्तिम समय आया—और वे खाट से उतार दिये गये।

सवेरे का समय था। साधु गली में अपनी आवाज लगा रहा था। सेठ जी के कानों में भी यह भनक पहुंची। वे एकदम चौंक पड़े और इधर-उधर देखने लगे परन्तु फिर यह शब्द उन्हें सुनाई नहीं पड़ा। उनके मुख से एक हल्की चीख निकली काया क्षणमात्र में बेकाम की हो गई। सत्य है मनुष्यों को पहले से ही चेतना चाहिये, मरने पर क्या होगा ? हमने आज तक कुछ नहीं किया—मोह में पड़े २ और पापही लाद लिया है—कैसे निस्तार होगा। सेठ मन ही मन भगवान का स्मरण करने लगा—जिसके प्रभाव से उसे परम गति मिली। यदि वह पहले से सुधर गया होता तो न मालूम कितना फल प्राप्त होता। अतः सबों को ध्यान रखना चाहिए कि जीवन का कौन ठिकाना है, आज है कल नहीं, शरीर को धर्म कार्यों में लगाये रहें, कभी भी अधर्माचरण में इसे न जाने दें।

१०६-दुर्गुणों से दूर हो

(१)

है प्रथम अवगुण काम रिपु जो दुर्गुणों का अर्थ है।
सर्वत्र सत्यानाश करना घोर पाप अनर्थ है॥

है व्याल विषधर काल अथवा काल हूं का काल है।
कल्पान्त प्रलयंकर प्रकट दुर्भेद्य मायाजाल है॥

(२)

है क्रोध अवगुण दूसरा जाज्वल्य ज्वाला रूप है।
अवनति प्रदाता नाम-घाता निन्द्य नाशक कूप है॥
विध्वंस-कारी बुद्धिहारी जान लो प्रियवर अहो!
क्रोधी मनुज क्या क्रोधवश क्रोधाग्नि में जलता न हो?

(३)

है लोभ-दुर्गुण तीसरा नाशक भयानक धार है॥
रोता तथा होता दुखी पाता नहीं निस्तार है।
है बंध-माया-मोह भारी लोभ में ही क्रान्ति है॥
जाता ठगा माया-मनुज इस दुष्ट से ही भ्रांति है।

(४)

है मोह चौथा भ्रष्ट-कारी तापधारी पाप है॥
कर के हरण सर्वस्व श्री देता स्वयं संताप है।
सत से पृथक कर वासना में लिप्त करता है यही॥
है मोह का साम्राज्य विस्तृत व्याप्त है सारी मही।

(५)

यह पांचवां, मद-शत्रु जग का नाश-कारी है सदा॥
उन्नति-विनाशक-वज्र अथवा त्रासधारी सर्वदा।
अभिमान जिसके हृदय में है शांत कैसे रह सके?
अभ्युदय-गौरव-ज्ञान-गुण-स्वातंत्र्य कैसे गह सके!

(६)

षष्टम महा दुर्गुण कठिन ईर्ष्या जिसे कहते अहा॥
बढ़ता भयानक रूपमें करता हृदय कलुषित रहा।
विद्वेष-विग्रह मूल कारण या भयानक दोष है॥
है रोष-कारी, शक्तिहारी त्यागना संतोष है।

(७)

अवगुण प्रबल है सातवां चिन्ता चिता से भी बड़ी ॥
रात को चिता चिंता अपितु जीवित जलाती हर घड़ी।
रस-मांस-शोणित-शुक्र ही इस काल का आहार है॥
वीर्य्यादि-जीवन-ज्योतिभष्मक भीरूदा व्यापार है।

(८)

है आठवां अघ नाश कारी निंद्य कपटा चार है॥
छल छिद्र का आंगार अथवा दुर्गुणों का द्वार है।
कहते असत्यागार जन कपटी स्वयं भू भार है॥
संसार की समरस्थली में पा सके उद्धार है।

(९)

है नवम अवगुण दुःखदायी शीघ्रता करना सदा।
सोचे बिना समझे न कार्य्य ज्ञान जन कदा॥
आकर क्षनिक आवेश में परिणय बिन जाने कभी।
आगे न बढ़ना देखना फल योग्य है मग के सभी॥

(१०)

है दोष भारी दशम दाहक दुर्गुणों का खान है।
है विश्व-नाशी प्राण-रिपु नष्ट करता ज्ञान है॥
कर्त्तव्य से करता विमुख हरता सभी सुख संपदा।
मादक मनुज को पातकों में लिप्त करता सर्वदा॥

१०७—मनो दमन।

मनुज में मनुजत्त्व का है, चिन्ह केवल शील।
ब्रह्मचर्य्य बिना हुई, उस शील में भी ढील॥
आत्म संयम हेतु है, बस ब्रह्मचर्य्य प्रधान।
ब्रह्मचर्य्य मनोदमन का, है प्रथम सोपान॥

१०८—विद्वान और मूर्ख।

(१)

एकोऽपि गुणवान पुत्रो निर्गुणैश्च शतैर्वरः।
एकश्चन्द्र स्तमोहन्ति न च तारा सहस्रशः॥
सौ निर्गुनियन ते अधिक, एक पुत्र सुविचार।
एक चन्द्र तमको हरै, तारा नहीं हजार॥

(२)

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतोवरः।
मृतः सचाल्प दुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत्॥
मूर्ख चिरायुते भलो, जनमत ही मरिजाय।
मरे अल्प दुख होइहैं, जिये सदा दुखदाय॥

१०६—सपूत-कपूत।

(१)

एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।
वासितं तद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा॥
एक सुगंधित वृक्षवे, सब वन होत सुवास।
जैसे कुल शोभित अहै, लहि सुपुत्र गुण रास॥

(२)

एकेन शुष्क वृक्षेण दह्यत मानो ह्विन्हिनां।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा॥
सूख जरत एक तरूहु ते, जस लागत वन डाढ़।
कुलको डाहक होत है, तस कपूत को बाढ़॥

(४)

किंजातैर्बहुभिः पुत्रैः शोक संताप कारकैः।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्राम्यते कुलं॥
करन हार संताप सुत जनमे कहा अनेक।
देइ कुलहि विश्राम जो, श्रेष्ठ होय वरु एक॥

११०—परोपकार करो।

(१)

पर-सेवा सम धर्म का उत्तम या जग माहिं।
करहु लोक-उपकार तूं, जन्म सफल है जाहिं॥
वह व्यर्थ ही जन्मा मिटाया दुःख दुखियों का न जो।
लाभ अपने बन्धुओं का होय जिससे कुछ न हो॥

(२)

जो पराये काम आता धन्य है जग में वही।
धन राशि को ही जोड़ कर कोई सुयश पाता नहीं॥
स्वर्ण की जंजीर बांधे, श्वान फिर भी श्वान है।
धूल धूसरित करि सदा पाता अमित सन्मान है॥

महात्माओं का वचन है—

जो पर का दुख लख द्रवे वही सज्जन है।
उपकार जगत में सबसे बढ़कर धन है॥

१११—नीति के उपदेश।

(१)

उद्योगिन कछु दूर नहिं, बलिहिं न भार विसेस।

(२)

अर्थ धर्म कामादि में, अहै न एको जाहि।
जन्म भये का फल मिल्यो, केवल मरनहि ताहि॥

(३)

जहाँ अन्न संचित रहै, मूर्ख मान नहिं पाव।
दम्पति में जहँ कलह नहिं, सम्पति आपुइ आव॥

(४)

तप एकहिं द्वै से पठन, गान तीन पथ चार।
कृषी पाँच रन बहुत मिलि, अस कहु शास्त्र विचार॥

(५)

है अपुत्र कर सून घर, बान्धव बिन दिस सून।
मूरख को हिय शून है, दारिद को सब सून॥

(६)

पन्थ बुढ़ाई नरन को, हृदय बन्ध एक ठाँव।
जरा अमैथुन तियन कह, औ वस्त्रन को घाम॥

(७)

दया रहित धर्महि तजै, और गुरु विद्याहीन।
क्रोध मुखीसी प्रीत बिनु, बान्धव तजै प्रवीन॥

(८)

भोजन विष है बिनु पचे, शास्त्र बिना अभ्यास।
सभा गरल सम रंकही, बृद्धहि तरुणी पास॥

(९)

आलस ते विद्या नसै, धन औरन के हाथ।
अल्प बीज ते खेत नसु, दल दलपति बिनु साथ॥

(१०)

दारिद नासै दान, शील दुर्गतिहि नासियत।
बुद्धि नासु अज्ञान, भय नाशन है भावना॥

(११)

नास्ति काम समो व्याधिः, नास्ति मोह समो रिपुः।
नास्ति कोप समो वन्हिः, नास्ति ज्ञानात्परं सुखम्॥

(१२)

व्याधि न काम समान, रिपु नहिं भारी मोह सम।
अनल कोप सम आन, नहीं ज्ञान ते सुख परे॥

(१३)

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च॥

(१४)

विद्या मित्र विदेश में, घर में तिय तव प्रीत।
रोगिहिं औषध मृतक को, धर्म जानना मीत॥

(१५)

नास्ति मेघसमं तोयं नास्ति चात्मसमं बलम्।
नास्ति चक्षुः समं तेजो, नास्ति धान्य समं प्रियम्॥

(१६)

दूजो जल का मेघ सम, बल आतम सम आन।
को प्रकाश है नैन सम, प्रिय को धान्य समान॥

(१७)

शान्ति तुल्यं तपो नास्ति, न सन्तोषात्परं सुखम्।
न तृष्णायाः परो व्याधिर्नच धर्मोदया परः॥

(१८)

शान्ति सरिस तप औरका, सुख संतोष समान।
का तृष्णा सम व्याधि है, धर्म दया सम आन॥

(१९)

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।

(२०)

तृष्णा वैतरणी सदृश, मनवाँ यम जनु रोष।
काम धेनु विद्या लखा. नन्दन बन सन्तोष॥

११२—आओ और जाओ।

नहिं दारिद उद्योग से, जपते पातक जाय।
कलह रहे का मौनते? जागत भय न दिखाय॥

एक गांव में रामसिंह और घनश्यामसिंह नाम के दो किसान रहते थे। घनश्यामसिंह अपने मजदूरों को कहा करता था कि आओ और रामसिंह अपने मजदूरों को कहा करता था कि जाओ। रामसिंह के पास घनश्यामसिंह से अधिक जमीन थी। फिर भी फसिल काटने के समय घनश्यामसिंह ही बाजी मार लेता था। रामसिंह की दिन प्रति दिन अवनति होती गई, यहां तक कि वह गरीब हो गया। घनश्याम दिनों-दिन तरक्की करता गया और कुछ ही दिन में धनवान हो गया। इसका क्या कारण था? घनश्याम अपने साथ मजदूरों को खेत पर ले जाता था, उनसे पूरा काम लेता था दिन भर उनकी निगरानी रखता था। यही कारण था उसकी फसिल खूब उपजाऊ होती थी और इधर रामसिंह अपने मजदूरों को कह देता था जाओ काम करो, वे अपने मन का जैसा चाहते थे वैसा करते थे। दिन भर यों ही करकराके सांझ को लौट आते थे। धीरे-धीरे उसकी फसिल नेष्ट होती गई और अन्त में उसे मुहताज बनना पड़ा। इसी प्रकार जो लोग रामसिंह का अनुकरण करेंगे, निश्चय ही उनका पतन होगा। वे कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकेंगे। उन्नति के लिए मुस्तैदी की आवश्यकता है, जो कार्य पर स्वयं डठा रहता है वही उसे पूरा कर सकता है। दूसरों के भरोसे अपना कार्य्य सिद्ध नहीं होता।

उद्योगिन कछु दूर नहिं, जो चाहे सो होय।
दूर रहे जो कर्मते, निश्चय सर्वस खोय॥

११३—बिना बिचारे।

बिना बिचारे जो करे, सो पाछे पछताय।
काम बिगारे आपनो, जग में होय हँसाय॥

एक आदमी एक महाजन के यहाँ १२ वर्ष नौकरी करता रहा, एक दिन उसने अपने मालिक से कहा कि अब हम घर जायेंगे, उसने अपने नौकर को पुरस्कार में इतना बड़ा चाँदी का ढोंका दिया, जितना बड़ा उसका सिर था।

नौकर चाँदी के ढोंके को लेकर चला। थोड़ी ही दूर जाने पर थक कर एक पेड़ के नीचे बैठ गया। उधर से एक आदमी घोड़े पर चढ़ा हुआ चला आ रहा था, इसने सोचा वाह! देखो यह कितने मजे में चला आ रहा है, अगर इस चांदी से हम इस घोड़े को ले लें तो हम भी बड़े आराम से घर पहुँच जायेंगे। उसने घोड़ेवाले से कहा कि यह चाँदी ले लो और घोड़ा दे दो, उसने बदल लिया और चाँदी लेकर चल दिया।

इधर यह घोड़ा लेकर चला, चढ़ना जानता ही न था, किसी प्रकार घोड़े की पीठ पर बैठा, घोड़े ने चूतड़ उचका दिया। बस, यह धड़ाम से धरती पर गिर पड़ा। अब तो इसने समझ लिया कि यह तीन कौड़ी की चीज है। उधर से एक आदमी गाय लिये आ रहा था, इसने सोचा चलो घोड़े को इस गाय से बदल लूं, जब जरूरत होगी तो दूध तो पी लिया करूँगा। गायवाला घोड़ा लेकर चल दिया। इसने विचार किया प्यास लगी है चलो थोड़ा दूध दूहकर पीलें। गाय बियानी नहीं थी, कैसे दूध दे? यह दूहने के लिये बैठ गया, ज्यों ही हाथ लगाया कि गाय ने दुलत्ती जमायी, बिचारा धड़ाम से उलट गया। इसने समझा यह भी ठीक नहीं—आगे बढ़ा। एक गड़े-रिया भेड़ों को चरा रहा था। इसने उनके बच्चों को उछलते देखा, इसके मनमें आ गया और इसने एक भेड़ से गायको बदल लिया, अब

वह भेड़ लेकर चला। अकेले भेड़ चिल्लाने लगी। यह देख वह बड़ा दुःखी हुआ और एक गाँव में पहुँचा। वहाँ देखा कि एक मुर्गा छप्पर पर बैठा बोल रहा है। तुरत मुर्गावाले के पास पहुँचा और भेड़ से बदल लिया। आखिर में वही मुर्गा उसे हाथ आया।

मन आवे सो कर चले, बिन सोचे का आय।
दण्ड पड़े भोगन जबै, सिर धुनि-धुनि पछताय॥

११४—भगवान गर्व प्रहारी हैं।

एक बार गरुड़, सुदर्शन और रुक्मिणी इन तीनों को गर्व हुआ। गरुड़ ने सोचा कि यदि हम भगवान के वाहन न हों तो वे कैसे एक क्षण में एक लोक से दूसरे लोक में पहुँच सकते हैं। हमारी शक्ति से ही वे सभी काम कर पाते हैं। सुदर्शन ने मनमें विचारा था कि भगवान मेरे ही द्वारा बलवान से बलवान दैत्यों का वध करते हैं। यदि मैं न रहूँ तो उनके पास कोई ऐसा शस्त्र नहीं है जिससे ये इतना काम लें। और रुक्मिणी ने सोचा कि मैं ही सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी हूँ, इसी से भगवान मुझपर लट्टू रहते हैं।

भगवान तीनों के हृदय की बात जान गये। उन्होंने विचारा कि तीनों हमारे भक्त हैं। इनके हृदय में अभिमान का होना अच्छा नहीं। शीघ्र से शीघ्र गर्व का नाश कर देना चाहिये। ऐसा सोच एक दिन उन्होंने गरुड़ से कहा कि तुम कदलीवन जाओ और हनुमान को बुला लाओ। उससे जाकर कहना कि भगवान तुम्हें द्वारिका में बुलाते हैं। भगवान के इतना कहने पर गरुड़ बड़े वेग से कदलीवन की ओर चला।

इसके बाद भगवान ने सुदर्शन से कहा कि तुम आज द्वार पर पहरा दो, कोई अन्दर न आने पावे। जो बल पूर्वक आना चाहे

उसका सिर काट लो। सुदर्शन भी अपने पहरे पर जा डटा। अन्त में उन्होंने रुक्मिणी से कहा कि तुम जल्दी सीता का स्वरूप बनाओ। रुक्मिणी भी श्रृङ्गार में लग गई।

इधर गरुड़ उड़ता २ बड़ी कठिनता से दो पहर में एक हजार कोस कदली बन पहुँचा, हनुमान उस समय भगवान की पूजा कर रहे थे, गरुड़ ने भगवान का सन्देस सुनाया। हनुमान ने पहले तो गरुड़ जी का सेवा सत्कार किया, बाद में कहा कि आप वृद्ध हैं। आगे चलिये-मैं भगवान की पूजा समाप्त कर शीघ्र आता हूँ।

हनुमान की बातें सुन गरुड़ जी बड़े क्रोधित हुये और कहने लगे कि तुम आगे चलो, तुम्हारी क्या शक्ति है, तुम्हारा बाप पवन भी हमारी बराबरी नहीं कर सकता। गरुड़ जी को क्रोधित देख हनुमान ने नम्रतापूर्वक कहा, महाराज! भगवान का सन्देश आपने सुना दिया, हम आ ही गये, आप चलिये हम तो आते ही हैं। गरुड़ भी चल दिये।

इधर हनुमान पूजा से निवृत्त हो तुरत द्वारिका पहुँचे, राह में सुदर्शन द्वारपाल मिला उसने हनुमान को रोका। हनुमान ने सोचा कि आज क्या बात है कि हमारे लिये द्वारपाल नियुक्त है? उन्होंने सुदर्शन को पकड़ कर कांख में दबा लिया और भीतर बढ़े। दूर से हनुमान को आते देख भगवान ने रुक्मिणी से कहा जल्दी सीता का रूप बनाओ, रुक्मिणी सीता का रूप नहीं धारण कर सकी तुरत भगवान ने माया की सीता बना लिया, हनुमान् आकर चरणों में गिर पड़ा। भगवान् ने कुशल प्रश्न पूछा, दोनों में देर तक बातचीत होती रही। जब हनुमान् विदा होने लगे तब भगवान ने कहा हनुमान! द्वार पर कोई तुम्हें मिला भी था, हनुमान ने कांख के भीतर से सुदर्शन को निकाल कर दिखा दिया। भगवान बड़े प्रसन्न हुये। हनुमान भी उन्हें प्रणाम कर कदलीवन चले गये।

भगवान ने पहले सुदर्शन से पूछा तुम तो बड़े बलवान थे फिर एक कपि के द्वारा क्यों पराजित हुये, सुदर्शन लज्जित हो गया। सायंकाल

में भगवान रुक्मिणी से पूछने लगे कहो तुम तो बड़ी रूपवती हो, वह भी लज्जित हो गई, एक पहर रात बीतते गरुड़ भी हांफता-कांपता पहुँचा और भगवान से बोला कि हम सन्देश दे आये हैं, शायद कल तक वह पहुँच सके। भगवान ने कहा अरे वह तो दो पहर के ही बाद में आया था और लड्डू पेड़ा खाकर चला गया। आप कहां रहे आप तो बड़े शीघ्रगामी हैं न ? गरुड़ यह सुनकर बड़े लज्जित हुये—उस दिन से सबों ने अपना गर्व त्याग दिया।

शील भक्ति सब नष्ट हो, आवे जब अभिमान।
दुख दायक नाशक इसे, निश्चय मनवां मान॥

११५—तीस मार खाँ।

अजीमाबाद में एक मियाँ जी रहते थे, उनकी बीबी मैके गई थी, एक दिन उनके मन में आया कि चलो ससुराल से चल कर बीबी को लिवा लावें। अकेले रहने से यहाँ बड़ा कष्ट होता है। दूसरे ही दिन सवेरे चल दिये। ससुराल तीन कोस की दूरी पर था। सांझ हो जाने से रास्ते की एक सराय में रुक जाने के लिये पहुँचे। वहाँ एक बुढ़िया मिली, उसने मियांजी के रहने का इन्तजाम कर दिया।

रात को खा पीकर खाट पर सोये। परन्तु उन्हें नींद नहीं आई। एक तो बीबी का ध्यान था ही, दूसरे खाटके खटमल तंग कर रहे थे। मियाँ जी एक दम दुबले पतले आदमी थे, खून भी शरीर में कम था। जहाँ खटमल मुँह लगाते थे कि इन की निद्रा भंग हो जाती थी, और ये घबड़ा उठते थे। आधी रात होते २ ये बेदम हो गये और दौड़ कर सराय के भीतर बुढ़िया से बोले। देखो मुझे डाकुओं का दल तंग कर रहा है। बुढ़िया ने समझा कि डाकू आये हैं। उसने तुरत एक मसाल और एक तलवार दी और कहा, डरो मत सराय का फाटक बन्द

है। इसके भीतर वे लोग नहीं घुस सकते। तुम अपनी कोठरी में जाओ, अगर भीतर घुसें तो तलवार से उन्हें मारना।

मियाँ जी मशाल और तलवार लेकर अपने कोठरी में आये। आते ही उन्होंने देखा कि खाट पर सैकड़ों खटमल लड़ने के लिए तैयार हैं। बस, अब क्या था, मियाँ जी खटमलों से भिड़ गये और लगे चिल्ला २ कर कहने कि ठहरो, डाकुओं! आज बिना मारे मैं नहीं छोड़ूँगा। एक २ को गिन २ कर मारूँगा। बुढ़िया यह सुनते ही डर गई, और अपने कोठरी का दर्वाजा भीतर से बन्द कर ली। इधर मियाँ जी ने खटमलों को गिन २ कर मारना आरम्भ किया, धीरे-धीरे तीस खटमल मारे गये। कोठरी से भी बुढ़िया ने सुना कि मुसाफिर ने तीस डाकुओं को मारा।

सबेरे होते ही बुढ़िया उठी और मुसाफिर के दर्वाजे पर आई। उस समय वह सो रहा था। बुढ़िया के पुकारने पर उठा। हाथ में तलवार लेकर भांजता हुआ कमरे से बाहर निकला। सामने बुढ़िया दिखलाई पड़ी। उसे इसने कहा हट जाओ, जानते नहीं हो तीसमार खां आ रहे हैं। बुढ़िया मारे डरके हट गई, तीसमार खाँ तलवार घुमाते हुये सराय से बाहर निकले और ससुराल की तरफ चले।

तीसमार खां तलवार घुमाते हुये जा रहे थे, राह में जो कोई मिलता था उसे डपट देते थे कि हट वे, जानता नहीं कि तीसमार खां आ रहे हैं। सभी हांजी! हांजी! कहकर हट जाते थे। सांझके पहले ससुराल में पहुँचे, गाँव के बाहर पोखरे पर बीसों लड़के खेल रहे थे, ये तलवार खींच कर खड़े हो गये और बोले, हट जाओ, जानते नहीं हो हम तीसमार खां हैं, जल्दी हटो। कहीं ऐसा न हो कि हमको एकतीसमार खां बनना पड़े। लड़के सब हट गये और गांव में आकर तीससार खां की चर्चा करने लगे। उन लड़कों में उसका लड़का भी था, उसने भी अपने बापकी बहादुरी घर पर कह सुनाई। इधर तीस-मार खां निपट कर इस अभिप्राय से तलवार भांजते हुये गांव। चले

जिससे लोग हमें बहादुर समझें। राहमें जो मिलता था उसे डपट देते थे—हट जाओ! तीसमार खां आ रहे हैं। इसी प्रकार ससुराल के फाटक पर पहुँचे, लोग बड़े आदर से लिवा ले गये, खूब मान हुआ। रात में बीबी ने पूछा—कहो मियाँ, इस मुट्ठी भर हाड़ से तुम कहां तीस को मारे? मियां ने कहा, बीबी बोलो मत, तुम्हीं से कहते हैं। किसी से कहना मत मियां ने सराय का हाल बता दिया। बीबी हंसने लगी।

११८—ठंठपाल जी।

अक्लिसराय में बुद्धू मिश्र रहा करते थे। लाड़ प्यार में उन्होंने अपने लड़के का नाम रखा था ठंठपाल। बड़ा होने पर भी लोग उसे ठंठपाल ही कह कर पुकारा करते थे। ठंठपाल को यह बुरा लगता था। वह रात-दिन इसी फेर में रहा करता था कि मेरा नाम दूसरा हो जाय। पर बदले तो कैसे? नाम आवे कहां से। आखिर एक दिन वह नाम ढूँढ़ने के लिए निकल ही पड़ा।

राह में जाते २ उसने देखा कि चार आदमी एक मुर्दे को गंगाजी लिये जा रहे हैं। वह तुरत उनके पास पहुँचा और पूछा भाई कहां जा रहे हो, उन लोगों ने कहा भाई! हम लोग तो इस मुर्दे को जलाने के लिये गंगाजी जा रहे हैं। इसके बाद ठंठपाल ने कहा—कहो ये जो मर गये हैं इनका क्या नाम था। सबों ने बताया अमरपाल।

उन लोगों से नाम मालूम कर ठंठपाल आगे बढ़ा—उसने देखा कि एक आदमी हल जोत रहा है उससे भी पूँछा कहो भाई, तुम्हारा क्या नाम है? उसने कहा मुझे लोग धनपाल कहते हैं। आगे बढ़ते ही एक बुढ़िया मिली वह गली में झाड़ू लगा रही थी, उससे भी पूँछा बुढ़िया! तुम्हारा क्या नाम है? बुढ़िया ने कहा बेटा! हमें लोग लछमिन बूढ़ी कहा करते हैं। यह देख ठंठपाल बड़ा घबड़ाया और चुप-

चाप घर लौट आया फिर कभी नाम ढूँढ़ने के लिये नहीं निकला। उसने कहा हमारा ही नाम ठीक है क्योंकि—

अमरा मरते हमने देखा, हल जोते धनपाल।
झाड़ू देवे जब लछमिनियां, बड़ा तुम्हीं ठंठपाल॥

११७—मैं तो गदहा हूँ।

एक दिन गदहा चरने के लिये निकला, घूमता घामता वह एक जंगल में पहुँचा—वहाँ हरी हरी घांसे लगीं थी। गदहा बड़े प्रेम से चरता हुआ आगे बढ़ रहा था। इतने ही में उसके मुँह के आगे एक भांग का खूब हरा भरा पौधा मिला। गदहा उसकी ओर मुँह बढ़ाया—परन्तु न मालूम क्या सोचकर मुँह हटा लिया।

गदहे का यह हाल देखकर भांग चिडचिडा उठी और कहने लगी—क्यों भाई गदहे! जब भगवान श्री १०८ शंकर जी महाराज मुझे ग्रहण करते हैं, उनके भक्त लोग मुझे प्रेमकी दृष्टि से देखते हैं—बड़े-बड़े धर्मधारी मेरे ध्यान में लगे रहते हैं—मोटे-मोटे राजा बाबू दिनरात मेरी खुशामद में डटे रहते हैं तब फिर तू एक नीच पशु होकर क्यों मुँह सिकोड़ता है।

गदहे ने कहा—क्या करें? मैं तो देखता हूँ कि जो मनुष्य तुझे सेवन करता है—वह तुरत गदहा हो जाता है—मैं तो पहले से ही गदहा हूँ, यदि तुझे खा लूं तो न मालूम कैसा डबल गदहा हो जाऊँगा। अतः तुमसे बचे रहने पर ही हमारा कल्याण है।—

भङ्ग रङ्ग जापै चढ्यो, मनवां अब का देर।
बने बन्यो, जो कुछ बन्यो, निहचय ह्वै हैं खेर॥

११८—भाँग का बुरा फल।

जो बल बुद्धि विलास हो, मन चाहे कल्याण।
तो तज भंग उड़ावनो, सुमति सिखावन मान॥

किसी गाँव में दो पण्डित रहते थे। दोनों बड़े भारी भँगेड़ी थे। सुबह शाम दोनों समय भाँग का डबल गोला जमाकर ऊपर से एक-एक लोटा गुड़ का शर्बत छाना करते थे। एक दिन सांझ को दोनों पण्डित भाँग छानकर अपना-अपना लोटा लिये निपटने के लिए गाँव के बाहर बहिआर में गये।

रास्ते में दोनों बातचीत करते जा रहे थे—एक ने कहा भाई! भांग में रोज गुड़ बहुत खर्च होता है। यदि हम लोग ऊख उपजा लिया करें तो कितना लाभ हो। दूसरे ने कहा, हाँ भाई! ठीक कहते हो—हम भी अब ऊख उपजा लिया करेंगे।

दोनों ने कहा—ऊख उपजा कर कल से रस पेरेंगे। और उसी से सुन्दर गुड़ बनायेंगे। दूसरे ने कहा भाई! हम तो उसी गुड़ से शेवारी शक्कर ही बना लेंगे। बढ़िया का बढ़िया और फायदा। रोज थोड़ा-थोड़ा निकालकर खूब मजे में भाँग छाना करेंगे।

इसी प्रकार बातचीत करते हुये एक ने कहा—देखो इसी खेत में हम ऊख उपजावेंगे। दूसरे ने भी तुरत कहा कि हम उस बागवाले खेत में रोपेंगे। एक ने कहा हम इस कुएँ से अपने खेत में पानी सींचेंगे। दूसरे ने कहा—हम बाग के कुएँ से पटावेंगे।

इसी प्रकार बातचीत करते हुये – एक ने कहा कि हम अपना ऊख कटवा कर इस जगह डालेंगे। दूसरे ने कहा हम भी उस पेड़ के नीचे इकट्ठा करेंगे। एक ने कहा हम यहाँ पर अपना कोल्हू गाड़ेंगे। इसी बात में दोनों पण्डित आपस में लड़ने लगे। एक कहता था कि हम यहाँ और दूसरा कहता था कि हम यहाँ। इसी भाँति लड़ते झगड़ते दोनों खूब मार पीट करने लगे। और कुछ तो पास में था ही नहीं—

एक दूसरेपर दनादन लोटा ही बरसाने लगे। बात-की-बातमें दोनों खून से तर बतर हो गये। अन्त में जब लड़ते-लड़ते काफी थक गये, तब दोनों को होश हुआ। तब पता लगा कि ओ हो! यहाँ तो कुछ भी नहीं—अभी तो कहीं ऊख का भी ठिकाना नहीं फिर कोल्हू कैसा ?

सर्वदा बुद्धि से काम लो, उन वस्तुओं से दूर रहो जो बुद्धि को नष्ट कर देती है—भांग भी उन्हीं वस्तुओं में से है—अतः कल्याण चाहने वाले मनुष्यों को इसे छोड़ देना चाहिये।

भङ्ग महा दुर्गुण सखे, करत सुमति सुख भङ्ग।
अङ्ग-भङ्ग पण्डित भयो, पी पी भङ्ग कुरङ्ग॥

११६—जिसने न पी गाँजे की कली।

जो चाहे कल्याण तू, मादक ते रह दूर।
प्रेम किये याते नशे, बल-बुधि नर ह्वै क्रूर॥

(१)

फरीद पुर में फूलनदे नामके एक वकील रहते थे—एक समय था जब उनकी वकालत खूब चटकी थी, उनके गुरु थे बाबा रामगिरि, पूरे पियक्कड़, तोला दो तोला चार तोला की बात क्या—यदि पावें तो छटाँकों गांजा उड़ा दें। बाबा राम गिरि की छाया फूलन दे पर भी पड़ी थी वे भी उनके संसर्ग से पूरे गंजेड़ी तो नहीं बल्कि प्रसाद के प्रेमी बन गये थे।

धीरे २ कुछ ही दिन में फूलनदे गांजे के अनन्य भक्त बन गये। घर पर तो इसकी पूजा करते ही थे, अब तो कचहरी की भी बारी आ गई। बिना दम लगाये चैन ही नहीं, क्या करें, क्रीतदास कहां भाग सकता है। फूलनदे का मुहर्रिर चिलम बना २ कर पिलाया करता था।

एक दिन दोपहर में वकील साहेब अपने मुहर्रिर को चिलम बनाने

के लिये कह कर आप साहेब से मिलने के लिये गये—वहां कुछ अधिक देर हो गई। मुहर्रिरने गांजा मल कर टिकिया सुलगा दिया। इतने पर भी वकील साहेब नहीं आये, मुहर्रिर सभी सामान रख कर साहेब के कमरे में गया। वकील,—साहेब से बात कर रहा था, मुहर्रिर ने कहा—

महाशय ! जटिलानन्द सूखड़ानन्द कटा-कटी निसा-मिली हइया गियेछे, टीकानन्द एवारे लाल हइया गियेछे—चलुन अति शीघ्र सख्यात करुन।

वकील सभी बातें जानता ही था तुरतु साहेब से आज्ञा लेकर बाहर आया और दम उड़ा लिया—कुछ दिनों में इस दम ने उसका सत्यानाश कर दिया। चिलम पीकर जिस आदमी का मुकद्दमा लड़ने जाता था। साहेब के सामने नशे में अंट संट जो कुछ निकल पड़ता था—झाड़ देता था, नशे के धुन में इसने सैकड़ों को चौपट किया—धीरे २ लोग सचेत हो गये—कुछ ही दिन में इसकी वकालत टूट गई।

अब तो फूलनदे घर ही पर रहा करता था, पहले की कमाई बेच-बेच कर चाँदी गलाया करता था। शरीर सूख गया, गाल बैठ गये, आँखे धँस गई। खाट पर पड़ा खोंय २ करने लगा, फिर भी उसने गांजे का साथ नहीं छोड़ा।

फूलनदे रोज सवेरे-सांझ बैठक के बाहर बैठा करता था। पांच साथ साथी भी जुट जाया करते थे, धीरे २ उसने अपनी सारी सम्पत्ति नष्ट कर दी। प्रकृति ने उसे शरीर और धन दोनों का दण्ड दिया। अब तो फूलनदे दिन २ भर मूड़ी खा-खा कर निर्वाह करने लगा, खाँसी ने उग्र रूप धारण किया। कफ बढ़ता ही गया। दो ही चार दिन के बाद फरीदपुर में हल्ला हो गया कि फूलनदे का दम छूट गया।

(२)

आज से १०० वर्ष पूर्व पटना के मालूफ घाटपर बुद्धू दास नाम के एक वैरागी साधु रहा करते थे। दिन भर गाँजा पीना ही उनका

काम था। नित्य सुबह शाम सैकड़ों मनचले चरसवाज उनके अखाड़े पर पहुँचा करते थे। वहाँ पर चिलम पर चिलम बनता ही रहता था। पहले लोग चिलम बना कर बाबा जी को देते थे। वे उसे हाथ में लेकर कहते थे, लेओ शंकर! मूजी को तंग कर! फिर कहते थे कि जिसने न पी गाँजे की कली उस लड़के से लड़की भली। इसी प्रकार सबों के पास वह चिलम जाता था और सभी बाबा जी के समान एक २ अश्लील कहावत कहते थे।

अचानक एक दिन चिलम के लिये लोगों में झगड़ा हुआ। दो आदमी भिड़ गये, नशेमें सब बुत्त थे, वहाँ पर धुनीमें तीन चार सन्सा गड़ा था, तीन चार पियक्कड़ों ने तो उसे पकड़ लिया और बाकी भी डन्डा और छड़ी ले लेकर उठ खड़े हुये, तुरत सबों में गुत्थम-गुत्थी मच गई। यह हाल देख बाबा जी भी आसन के नीचे से साढ़े तीन हाथ वाला सन्सा निकाल कर जुट पड़े। जो दो चार आदमी बच गये थे, वे भी जूता छाता लेकर पिल पड़े। खूब लत्ताम-जुत्तम होने लगी। सन्सों ने बीसों को घायल किया। बाबा जी का सन्सा खूब काम कर रहा था। जिधर जाता था, उधर ही खोपड़ी का रस निकाल लेता था। आज मठ को गँजेड़ियों ने रणक्षेत्र ही बना छोड़ा। थोड़ी ही देर में पुलिस आ गई और तेंतीस घायलों को चारपाई पर उठवा कर थाने पर ले गई। बाबा जी की नाड़ी मन्द २ चल रही थी, यही गांजे का फल है।

> का जग दूषित और है, गांजा चरस समान।
> दण्ड मिलै तन-धन दहै, सुरपुर छुटै अजान॥

१२०—शराब का सत्यानाशी प्रकोप

> मदिरा-मद-प्याला पिये, मनवां ह्वै उत्पात।

पुराने समय में दानवों के आचार्य्य महर्षि शुक्र थे, उन्हें संजीवनी विद्या मालूम थी। वे उसके प्रयोग से अपने शिष्यों की विजय कराते रहे। थोड़े दिनों में दानव बड़े बलवान हो गये, और बार २ देवताओं को परास्त करने लगे। देवताओं ने सोचा कि किसी प्रकार संजीवनी विद्या का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अतः उन लोगों ने बृहस्पति के पुत्र को शुक्राचार्य्य के पास भेजा।

बृहस्पति का पुत्र शुक्राचार्य के यहां जाकर रहने लगा। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी बृहस्पति के पुत्र को बहुत मानती थी।

बृहस्पति के पुत्र को वहाँ देख दानव चिंतित हुए और उसे मार डालने का विचार किये, दो तीन बार मार भी दिये, परन्तु देवयानी के अनुरोधसे शुक्रने उसे जीवित कर दिया। दानवोंने एक दिन कचको मारकर उसका मांस बना डाला और शुक्राचार्य्य को शराब पिला कर वही मांस खिला दिया।

रात्रि होने पर बृहस्पति के पुत्र को नहीं देख देवयानी चिन्तित हुई, उसने अपने पिता से कहा—शुक्र ने ध्यान से देखा, तो उन्हें पता लगा कि बृहस्पति का पुत्र तो हमारे पेट में है। उसी समय उन्होंने कहा—

ब्राह्मण हइया जे करे सुरा पान।
ब्रह्मतेज नष्ट तार हय सेई खान॥
विप्र होइ मदपान जो, करत मूढ़ अज्ञान।
ब्रह्म तेज निश्चय नसै, जन्म अकारथ जान॥

१२१—शराबी की दुर्दशा

(१)

किसी गांव में एक शराबी रहता था, सांझ सबेरे जब खोजिये कलाली में ही वह मिलता था। बोतल का नशा चढ़ जाने पर बकता-झकता गाली-गलौज करता हुआ कलाली के फाटक से बाहिर होता था।

कलाली से निकलने पर झूमता-झामता हुआ गांव की गलियों में उधम मचाया करता था। पचासों लड़के चिल्लाने लगते थे, अरे! शराबी आया, शराबी! परन्तु वह तो बुत्त रहता था।

एक दिन रात में कलाली से पीकर निकला, राह में भहरा पड़ा और एक गन्दे नाले में जा गिरा। शराब के नशे में वहीं पड़ा रहा। रात में जितने कुत्ते उस राह से भूकते हुये निकलते थे, वे इसे नाले में खूँटा समझ पैर उठा २ कर इसी पर लघुशंका कर देते थे। यहां तक कि दो तीन कुत्तों ने तो टट्टी भी कर दिया।

कुछ रात रहते ही, पास के पड़ोस वाले २, ३ आदमी निकले और अँधेरे में उसी नाले पर लघुशंका के लिये बैठ गये, एक आदमी के लघुशंका का गर्म २ पानी जब शराबी के मुँह में गया, तब उसे होश हुआ और बोल उठा, वल्लाह ये तो गजब की गर्म-गर्म खारी शराब है। इतना सुनते ही वह पेशाब करनेवाला आदमी गिरता-पड़ता हुआ भाग खड़ा हुआ। शराबी उसी में लेटा ही रहा। सबेरे सभी आदमियों ने उसकी दुर्दशा देखकर दुःख प्रगट किया।

(२)

नत्थू बड़ा शराब पिया करता था। एक दिन भरपूर नशे में झूम-ताझामता एक ओर से अंट-संट बकता हुआ आ निकला और सड़क के नाले पर बैठ कर कै करने लगा। कै करते २ एक दम नाले में उलट गया। नत्थू को नाले में गिरते देख बीसों आदमी इकट्ठे हो गये और लगे तमाशा देखने। इतने में एक कुत्ता पहुँच गया और नत्थू के मुँह में लगे हुए वमन को चाटने लगा। धीरे से चाटचूट कर जब मुँह को साफ बना लिया तब पैर उठा कर पानी की धार भी छोड़ने लगा। नत्थू ने नशे में धीरे से मुँह खोल दिया, और बड़े नजाकत के साथ बोल उठा—अरे यार! क्यों बाराजोरी शराब उंढ़ेल रहे हो? मैं पीना

देखो शराब की दुर्दशा, क्या इससे भी बढ़ कर कोई ऐसा पदार्थ हो सकता है जिससे मनुष्य का नाश हो। आज देश में इसके प्रेमियों की कमी नहीं, उन्हें आँखें खोल कर इस भयंकर शत्रु के कुकृत्यों को देखना चाहिए। यह वह विष है जिस के प्रभाव से मनुष्य मनुष्य नहीं रह सकता। वह पशु से भी हीन हो जाता है।

१२२-अस पी कोई जाने न

किसी गाँव में दो ब्राह्मण रहते थे। दोनों में बड़ी मित्रता थी। दिन रात एक ही जगह बैठते-उठते और इधर उधर की बातें किया करते थे। काम धाम कुछ करना पड़ता ही न था। खाना-पीना-सोना और टट्टी जाना—यही चार काम उनलोगों ने अपना रखा था, और पांचवा काम यह था—कि बैठे २ गप्पें छाटना।

एक दिन दोनों ब्राह्मण बैठे २ विचारने लगे। शराब कैसी होती है, सुना है इसमें बड़ा मजा है, लाग कहते हैं कि इसके पीने पर बड़ा आनन्द आने लगता है। इसी प्रकार दोनों बड़ी देर तक बातचीत करते रहे और अन्त में निश्चय किया कि शराब पीना चाहिये। परन्तु तय यह किया गया कि कोई जाने न।

दूसरे ही दिन दोनों यार बोतल २ शराब लेकर सांझ के समय रकट्ठवा के गन्नेवाले खेत में घुसे। एक जगह बैठकर श्रीगणेश किये। चखना उठा कर लगे कुल्हड़पर कुल्हड़ जमाने। दोनों में बातचीत भी होती जाती थी। यार! अस पी कोई जाने न। परन्तु डालना बन्द नहीं करते थे। धीरे २ नशा ने अपना अधिकार जमा लिया।

इतना हो जाने पर भी लोगों ने बोतल का साथ नहीं छोड़ा, चढ़ाते ही गये जब तक दोनों का समाप्त नहीं हुआ। फिर क्या था लगे नशे में बकने, अस पी कोई जाने न। अस पी कोई जाने न।

इस प्रकार दोनों चिल्लाते हुए एक एक बोतल हाथ में लिए ऊख से बाहर निकले।

अब तो और भी जोर २ से चिल्ला कर कहने लगे—यार! अस पी कोई जाने न! अस पी कोई जाने न। धीरे २ इसी प्रकार चिल्लाते हुये दोनों गाँव में घुसे। गांववालों ने समझ लिया कि दोनों ब्राह्मण शराब के नशे में मस्त हैं। इन से इस समय कुछ नहीं बोलना चाहिये। इस प्रकार बकते २ दोनों यार बदहवास होकर मुर्दे के समान ढेर हो गये।

दूसरे दिन जब होश हुआ—तब इन लोगों ने अपने को घूर पर पड़ा देखा। उसी दिन से बिरादरी वालों ने उन दोनों को जाति से बाहर कर दिया, और गांव के छोटे बड़े सभी धिक्कारने लगे। इस प्रकार दोनों यारों को अपनी करनी पर पछताना पड़ा।

सत्य है, शराब का नशा बुरा होता है। भले आदमी को इस से दूर रहना चाहिये। इस से कौन सा दुर्गुण नहीं मिलता? शराब जीवन को नष्ट कर देता है।

१२३-अफीम से बचो

(१)

एक अफीमची था। सांझ के समय जब वह अफीम के नशे में औंघ रहा था, उसे मालूम हुआ कि कयामत का समुन्दर उमड़ा आ रहा है। अब तो वह बड़े फेर में पड़ा, हाय खुदा! कैसे जान बचे, अब तो यह कयामत की दरिया बिना जहन्नुम में भेजे जान नहीं छोड़ेगी।

अफीमची ने सोचते-सांचते एक युक्ति निकाल ही ली। वह तुरत अपनी खिड़की के पास जाकर पीछे सड़क पर कूद गया, चोट तो खूब

लगी, परन्तु अपने को सम्हाल कर पेट के बल चलने लगा। यह देख आसपास के बीसों आदमी इकट्ठे हो गये और सभी अफीमची से पूछने लगे, कि भाई यह क्या कर रहे हो। अफीमची ने तुरत कहा, भागो! भागो! कयामत की दरिया बढ़ी आ रही है, डूब जाओगे, डूब जाओगे। देखो मैं तो घंटों से तैर रहा हूँ। फिर भी किनारा ही नहीं दिखाई देता। ओह! कयामत की दरिया सचमुच कज़ा की दरिया है। अफीमची की बातें सुन कर सभी हँसने लगे। और कहा शायद-आप भूले हैं—आप तो सड़क पर गिर गये हैं। देखिये कहीं पानी है? उन्हें सबों ने उठाया तब होश आया और तब बोले अरे! मैं सड़क पर था?

(२)

मुफलिस नगर में अकिलअली नाम के एक मौलवी रहते थे। अपने गाँव में वे अफीमची के नाम से मशहूर थे। रात-दिन अफीम के नशे में बुत्त रहते थे।

एक दिन मियाँ साहेब एक खेत के आल पर बैठे हुये पोस्ते का दूध इकट्ठा कर रहे है। दैवयोग से उधर से एक खरगोश निकला और उसके धक्के से इनका दूध गिर गया। मौलवी साहेब तुरत बिगड़ उठे और बोले—धत्तेरे ख़रगोश की। मूज़ी ने सभी माल ही गिरा दिया। उस वक्त तो वे सहन कर गये। लेकिन चलते समय उन्होंने कहा—अच्छा, हम तुम्हारी खबर लेंगे, तुम से हम क्या कहें? तुम्हारे बड़ों से तुम्हारी शिकायत करेंगे।

दोपहर को खेत से मियाँ जी लौटने लगे, राह में उन्हें सुखुआ धोबी का गदहा दिखाई पड़ा। उन्होंने पिनक में समझा ठीक है, मिल भी गया, यह जरूर खरगोश का बाप दादा तो नहीं उसका लकड़दादा जरूर होगा, इसी से खरगोश की शिकायत करें।

मियाँ जी गदहे के सामने खड़े होकर जोर से चिल्ला २ कर कहना

शुरू किये, अबे सुनता है ! तेरे घर के पोते ने हमारे पोस्ते का दूध सब गिरा दिया है। गदहा पीछे से आवाज सुन चौंक गया और लगा फेंकने दुलत्ती। मियाँ जी तो चारों खाने चित्त हो गये और लगे कहने "अरे घर पोता रहा घाघ ही और लकड़दादा तो है बाघ ही"

(३)

एक मियाँ जी बड़े अफीमची थे। दिन रात अफ़ीम के पिनक में औंघाया करते थे। करना धरना कुछ था हो नहीं। बाप की बपौती बेचकर अफीम उड़ाया करते थे। घरमें औरत बिचारी रोज चिल्लाया करती थी कि कोई काज करो, कोई हीला लगाओ, लेकिन मौलवी साहेब को अफीम के आगे कुछ भी नहीं सूझती थी।

एक दिन रात्त में जब खूब चाँदनी छिटकी थी मियाँ जी पेशाब करने के लिये निकले, वे एक ऐसी जगह पर पेशाब करने के लिये बैठे जो बहुत ढालू जमीन थी, पेशाब लहराती हुई मियाँ जी के तरफ आने लगी-अफीम के पिनक में थे। फौरन समझ गये कि सचा गोहुयन सांप मेरी ओर दौड़ा आ रहा है। बस, वे लगे अपने पीछे तरफ पिछड़ने। परन्तु ज्यों २ आप पिछड़ते जाते थे त्यों त्यों पेशाब की धार भी इन्हीं की ओर बढ़ती आती थी। यहाँ तक कि पेशाब की धार इनके पैर से आ लगी। बस, मियाँ जी बड़े जोर से चिल्ला उठे और पेशाब की धार से चिपट कर बोले---ले मूँजी ! काफिर हमी को खाले।

देखो अफीमचियों की दुर्दशा।

(४)

एक अफीमची बैठे थे, एकाएक एक मक्खी एक ओर से भन-भनाती हुई आई और उनके नाक पर बैठ गई। अफीम का गाढ़ा रंग उस समय उन पर चढ़ा था। उन्होंने उसे बहुत कुछ समझाया पर वह कब मानने वाली थी। टस से मस नहीं हुई। यह देख अफीमची साहेब गुस्से में आग बबूला हो गये और तुरत एक चाकू निकाल लाये

कि आओ इस वार बैठो तो मजा चखा दें। इतने ही में मक्खी फिर आ बैठी। उसका बैठना था कि अफीमची ने चाकू इतने जोर से चलाया कि नाक ही कट गई। अब वे और चिल्ला २ कर कहने लगे कि दुष्टा! खूब बैठती थी, अब देखूँगा कि कहाँ बैठती है, हमने तो तेरा खूँटा ही उड़ा दिया।

(५)

५, ७, अफीमची, एक कुयें पर गप्प लड़ा रहे थे, इसी बीच में उन में से एक आदमी पानी-पीने के लिये उठा। और पिनक में औंघता हुआ कुयें में जा पहुँचा। धमाके की आवाज सुन कर बाकी अफीमची चौंक पड़े और पुकारने लगे। इतने में कुयें वाला बोला, यार! हम तो पाताल में आ गये हैं, सबों ने कहा कहो! मजे में तो हो? उसने कहा बड़े आनन्द में हूँ, यहाँ तो बीसों हाथ ऊँचा गद्दा है। सभी अफीमची बोले, भाई! हमलोग यही ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि सर्वत्र सुखी रहो। देखो, अफीम का सत्यानाशी व्यवहार से शिक्षा ग्रहण करो।

१२४—महा मूर्ख।

(१)

एक मूर्ख बनिया पहले पहल अपनी स्त्री को लिवाने के लिये ससुराल चला। उसकी मां ने एक टोकरी में मालपूआ बनाकर दिया और कहा कि इसे ले जाओ। बिना लिवाये न आना और राह में किसीको साथ मत ले जाना। बनिया सांझ को अपने घर से चला। उस दिन पूर्णमासी होने के कारण चन्द्रमा का खूब प्रकाश फैल गया था। बनिया थोड़ी दूर जाकर इधर उधर देखने लगा कि कोई आता तो नहीं है? क्योंकि मां ने कहा है कि किसीको साथ मत ले जाना। पीछे मुड़ने ही इसे अपनी छाया दिखलाई पड़ी और उससे कहा कि भाई! तुम हमारे

साथ क्यों आते हो ? लौट जाओ। बनिया थोड़ी दूर आगे बढ़ा उसने देखा कि यह तो आता ही है। समझ लिया कि यह कोई भूखा है, तुरत टोकरी से पूआ निकाल कर कहा कि इसे खाओ और लौट जाओ। हमारे साथ मत आओ। बनिया टोकरी लेकर आगे बढ़ा।

आगे बढ़कर उसने फिर उसे आते देखा, बनिये ने फिर एक पूआ दिया, इसी प्रकार धीरे २ उसने अपना टोकरी खाली कर दिया। अब उसके पास क्या था ? बनिये ने पूछा क्या टोकरी लोगे ? वह पर छांही क्या बोले। बनिये ने समझा कि यह टोकरी ही मांगता है। तुरत दे दिया। आगे बढ़ते ही फिर देखा—बनिये ने पूछा क्या चाहते हो ? जाड़ा लगता है ? चादर लोगे ? इस बार चादर ही दे डाला।

आगे बढ़ते ही फिर वही हुआ। इस बार उसने अपना कुर्त्ता दे दिया। धीरे २ धोती लंगोटी की भी बारी आ गई। बनिया एक दम नंगा हो गया। तब तक सवेरा भी हो गया और छाया पुरुष चला गया। बनिया भी नंगाधडंगा ससुराल पहुँचा, वहां रातका सब हाल लोगों को सुनाया। सभी इसकी बुद्धि पर पछताने लगे।

(२)

दो मित्र टहलते हुये गांव के बीच से जा रहे थे। दोनों में तरह तरह की बातें हो रही थीं। दोनों आमोद प्रमोद की बातें करते गांव के आखिरी हिस्से में पहुँचे। वहां पर एक शेख जी का मकान था। एक मित्र ने दूसरे से कहा भाई ! हमने अपने आजा से सुना था कि शेख बड़े बेवकूफ होवे हैं। दूसरे ने कहा, हां यार ! हमने भी अपने काका के मुँह से सुना था कि शेख बेवकूफ होते हैं।

शेख जी उस समय टट्टी में बैठे थे, "शेख बड़े बेवकूफ होते हैं, यह सुनते ही वे बिना आबदस्त लिये ही, मारे क्रोध में आंखें लाल २ किये घर से निकल पड़े और दांत पीसते हुये बोले, बताओ ! कैसे शेख बेवकूफ होते हैं ?

(३)

बिलास पुर के जंगल में एक बड़ा भारी तालाब था, उसका पानी कभी नहीं सूखता था। उसमें मछलियां खूब भरी थीं। एक दिन तीन आदमियों ने विचार किया कि तालाव से मछली मार लावें। एक ने डंटा लिया, दूसरे ने तलवार और तीसरे ने बल्लम। तीनों चले, दोपहर को तालाब के किनारे पहुँचे। दिन भर हैरान हुये लेकिन एक मछली भी नहीं मार सके। लाचार होकर एक ने कहा यार! अगर तालाब में आग लगा दी जाय तब मछलियां हाथ लगें। दूसरे ने कहा, नहीं यार! तब तो पेड़ों पर चढ़ जायँगी, तीसरे ने कहा नहीं, आग लगाने पर तो घोड़े की तरह सरपट भाग जायेंगी। सबों ने अन्त में जलाना ही निश्चय किया और लगे दूसरे ही दिन से सूखी लकड़ियां इकट्ठी करने। महीनों हैरान रहे,एक दिन एक बुद्धिमान उस तालाब पर आया और इन लोगों को लकड़ियां इकट्ठी करते देख पूछा—यह तुम लोग क्या कर रहे हो? इन सबों ने बताया कि हम लोग इस तालाब में आग लगायेंगे। जब तालाब खूब जलने लगेगा तब मछलियां पेड़ों पर चढ़ने लगेंगी या सरपट भागने लगेंगी, बस, हम लोग अपने २ डंटे तलवार और बल्लम से उन्हें मार गिरायेंगे। बुद्धिमान ने उन सबों को समझाया कि पानी में भी कहीं आग लगती है।

(४)

दो मूर्ख कहीं जा रहे थे। राह में एक बूढ़ा मिला। उसने इन दोनों को सलाम किया। आगे बढ़ते ही दोनों मित्र लड़ने लगे कि बूढ़े ने हमें सलाम किया है। दोनों बूढ़े के पास लौटे और उससे पूछने लगे कि तुमने किसे सलाम किया है। बूढ़ा खुर्राट था। वह समझ गया कि ये दोनों मूर्ख हैं। उसने कहा कि हमने उसे सलाम किया है जो सबसे मूर्ख हो। अब तो दोनों कहने लगे कि हमी सबसे बड़े मूर्ख हैं। बूढ़ा ने कहा अपनी २ मूर्खता का हाल सुनाओ।

पहले ने कहा—मैं एक बार ससुराल गया, राह में एक पेड़ के नीचे सो गया कि एक बंदर आया और टोपी जूता लेकर चलता बना। जागने पर टोपी जूता न देख इधर उधर ढूँढ़ने लगा। इतने में मेरे ससुराल के ४, ५ आदमी मिले। उन्हीं सबों के साथ मैं भी चला। एक आदमी नंगे दौड़कर हमारे ससुराल में यह खबर कर आया कि आप के दामाद नंगे सिर और नंगे पांव आ रहे हैं। वहां सब रोने पीटने लगे। वहां पहुँच कर जब हमने यह हाल देखा तो जान लिया कि कोई मर गया है। सहानुभूति जनाने के लिये मैं भी एक तरफ बैठ कर रोने लगा। एक आदमी ने पूछा भाई तुम क्यों रोते हो ? मैंने कहा ये लोग रोते थे इसी लिये मैं भी रोने लगा। सभी मेरी बेवकूफी पर हँसने लगे। कहो हमीं को देखकर सलाम किये हो न ! बूढ़े ने कहा ठहरो दूसरे की बात भी सुनने दो।

दूसरे ने कहा मैं भी ससुराल गया। मैंने सुना था कि ससुराल में कम खाना चाहिये। सास खाने को बुलाने आयी, मैंने कह दिया कि तबीयत ठीक नहीं है। आधी रात को मुझे भूख लगी। रसोई घर में गया वहां कुछ न था सिर्फ एक अंडा। मैंने उसे मुँह में डाल लिया और अपने कमरे की ओर चला, राह में जाता था कि कुर्सी से टकरा कर धड़ाम से गिर पड़ा, घरवाले दौड़ पड़े, लगे सब पूछने, पर मैं बोलता कैसे, चुपचाप रहा, इतने में हमारा साला एक अहीर को बुला लाया, उसने आते ही कहा कि एक खुर्पी आग में धिपाओ, हम अभी ठीक कर देते हैं।

मैंने सोचा यह कैसा मूर्ख है। पूरा उल्लू का पट्ठा ही है। खुर्पी धिपाकर क्या करेगा ? मैं इतना सोच ही रहा था कि अहीर ने गरमागरम खुरपी मेरे गाल पर रख दिया। मारे जलन के मैं चीख पड़ा। चीखते ही मेरा मुँह खुल गया और अण्डे का रस निकल पड़ा, उसे देखते ही अहीर ने कहा, देखो सारी खराबी मुंह से निकल रही है। मैं मारे क्रोध के बोल उठा, बेवकूफ यह खराबी है या अण्डे का रस,

सभी हँसने लगे, बूढ़े ने कहा—भाई ! तुम्हीं को हमने सलाम किया था ।

(५)

एक सेठ जी के यहां एक दिहाती ने नौकरी किया । वह बड़ा मूर्ख था । एक दिन सेठ जी ने नौकर से कहा पीकदान लाओ । वह जानता ही क्या, लाता क्या, सेठ जी ने कहा, हमारे खाट के पास है, उसे उठा ला । नौकर ने देखा कि उसमें तो पान थूके पड़े हैं । मारे क्रोध के तुरत लौटा और मालिक से बोला, हुजूर उसमें तो किसी गदहे ने थूक दिया है, सभी हँसने लगे ।

१२५—सचेत रहो

एक धोबी के ससुराल से खबर आई कि तुम अपनी स्त्री को लिवा जाओ । और अगर मिले तो एक बकरी लेवे आना. धोबी दूसरे ही दिन बकरी खोज लाया और विचार करने लगा कि इसे किस प्रकार ले चलूँ । क्योंकि हम तो पैदल चलेंगे नहीं । ससुराल वाले क्या कहेंगे ? सोचते २ उसने एक युक्ति निकाल ली । गदहे के पूँछ में बकरी की रस्सी बांध कर बकरी के गले में एक घुँघरु पहना दिया । जिससे पता लगे कि बकरी चली आ रही है ।

ठीक समय पर आप गदहे पर चढ़ लिया और आगे बढ़ा । बकरी भी पीछे २ घुँघरु घुनघुनाते हुए चली । राह में दो ठग मिले, उन लोगों ने सोचा कि इस से दोनों जानवर लेना चाहिए । पहले तो वे लोग धीरे से पीछे आकर घुंघरु बकरी के गले से खोल कर गदहे के पूँछ में बांध दिया और बकरी लेकर जंगल में छिप गये । दूसरा दौड़-कर धोबी के आगे पहुँचा और उसके प्रतिकूल अर्थात् इधर ही आने लगा । जब धोबी मिला तब कहने लगा भाई ! इस गदहे के पूँछ में

घुंघुरु क्यों बांध दिया है, धोबी ने घूमकर देखा तो बकरी लापता। तुरत गदहा छोड़ कर बिना विचारे जिधर से आया था उसी तरफ दौड़ा। इधर अवकाश पा कर ठग ने गदहा को उड़ा लिया। सत्य है! सभी काम में आदमी को सचेत रहना चाहिये। जो सचेत नहीं रहता उसे इस धोबी के समान दण्ड भोगना पड़ता है।

ह्वै सचेत कर्त्तव्य जो, करत प्रीति युत मीत।
पूरण हो निश्चय वही, अपितु दुःख सह भीत॥

१२६—वर्तमान गुरु सेवा

श्री रामनगर में एक मौलवी साहेब कुछ लड़कों को पढ़ाया करते थे। एक दिन एक लड़के ने हंडी में लाकर मौलवी साहेब को खीर दी। मौलवी साहेब एक तो भूखे थे—और दूसरे खीर देखकर उनके मुँह में पानी भर आया। वे तुरत मदरसे में ही गपागप खीर उड़ाने लगे। खीर बढ़िया थी, मौलवी साहेब ज्यों २ खाते जाते त्यों २ तारीफ़ के भी पुल बांधते जाते थे।

खाते २ मौलवी साहेब ने लड़के से पूछा—कहो बेटा! आज क्या है कि तुम्हारी मां ने खीर भेजा है। लड़के ने कहा! मौलवी साहेब मैं तो नहीं जानता, हाँ! सिर्फ इतना जानता हूँ कि मां इसे मेरे पिता के लिये बनाई थी, लेकिन कुत्ते ने मुँह डाल दिया बस मां ने कहा कि मौलवी साहेब को दे आओ। इतना सुनते ही मौलवी साहेब अकथू २ करते हुए बोले—"लहौल बिला कूवत" थू, थू थू। और हंडी को जमीन में पटक दिये।

हंडी के चूर २ हो जाने पर लड़का बड़ा रोने लगा। मौलवी साहेब गुस्से में थे ही, डपट कर पूछ बैठे, क्यों रोता है? लड़के ने कहा—आप तो मौलवी साहब! हंडी फोड़ दिये, हम तो घर पर पीटे जायेंगे।

मां बहुत मारेगी, अब हम क्या करें ? हाय ! मुझे अब तो बचाइये, इसी हंडी में मेरा छोटा भाई रामू रोज पाखाना जाया करता था। घर में दूसरी कोई हंडी है भी नहीं। अब किस वर्तन में फिरेगा। मौलवी साहेब आपे से बाहर हो गये और तुरत लड़के को मदरसे से निकाल बाहर किये।

१२७—हाजिर जवाब।

(१)

बादशाह अकबर ने बीरबल से प्रसन्न हो कर कहा कि हम तुम्हें एक जागीर देंगे। लेकिन जब देने का समय आया तब छ पांच करने लगे। बीरबल ने समझ लिया कि बादशाह ने गर्दन फेर ली। कुछ दिनों के बाद बादशाह ने पूछा—कहो बीरबल ! ऊँट की गर्दन टेढ़ी क्यों है ? बीरबल ने तुरत कहा—हजूर ! इसने एक आदमी को जागीर देने का वचन दिया था. बादशाह समझ गया और उसने तुरत अपने मुसाहिबों को हुकम दिया कि बीरबल को जागीर दो।

(२)

बीरबल बादशाह से बातें कर रहा था कि एकाएक बीरबल से हवा निकल गई। बादशाह ने कहा तुम बड़े गधे हो। बीरबल ने कहा हुजूर मैं पहले तो नहीं था, परन्तु संगति के कारण अब हो गया हूँ।

(३)

एक दिन बीरबल नदी किनारे माला जप रहा था, बादशाह ने आ कर कहा बीरबल, 'मालादे' बीरबल समझ गया—उसने कुछ जवाब न दिया। बल्कि अपना अंगोछा पानी में छोड़ दिया। बादशाह ने कहा बीरबल अंगोछा बह रहा है। बीरबल ने कहा "बहने दो" बादशाह अपना जवाब पा गया और चुप हो रहा।

एक दिन बादशाह ने पूछा बीरन ! तुम धरती की ओर निहारते क्यों चलते हो? बीरबलने कहा मेरे बाप इसी में खो गये हैं। बादशाह ने कहा यदि हम ढूँढ़ दें तो क्या दोगे? बीरबल ने तुरत कहा आधे आध ! बादशाह इस जवाब से बड़ा प्रसन्न हुआ।

१२८—शंका न करो।

एक गाँव में एक बूढ़े मौलवी लड़कों को पढ़ाया करते, थे। उनकी दाढ़ी बड़ी लम्बी थी, पढ़ाने के समय प्रायः हिलती रहती थी। एक दिन जब वे लड़कोंको पढ़ा रहे थे और उनकी दाढ़ी हिल रही थी अचानक एक गँवार आ पहुँचा और मौलवी साहेब को देख रोने लगा। उसे रोते देख लोग पूछने लगे—भाई ! रोते क्यों हो? लोगों के पूछने पर उसने कहा—कि मौलवी साहेब की दाढ़ी हिलती देख कर मैं रो रहा हूँ। मेरे बकरे की भी ऐसी ही दाढ़ी थी। ऐसी ही जब उसकी दाढ़ी हिलने लगी थी तब वह तीन ही चार दिन में मर गया था। मौलवी साहेब की दाढ़ी भी वैसी ही हिल रही है—इसी से मुझे दुःख होता है।

मौलवी साहेब के दिल में शंका घुस गई। उनके सिर पर भय का भूत सवार हो गया और तीन ही चार दिन में शंका के मारे मर गये।

(२)

एक आदमी रात में खलिहान की ओर टट्टी गया। खलिहान वाला अपने धान के बोझों की रखवाली कर रहा था। उसने एक साँड़ को देखा और उसी पर ढेला चलाया। अचानक वह ढेला उस आदमी के आगे आ गिरा, वह मारे डर के घर की ओर भागा। जाते

२ बेहोश होकर गिर पड़ा। लोग उठा कर अन्दर ले गये। चारों ओर से ओझा बुलाये गये। सबों ने कहा कि पीपलवाले देवने यह काम किया है, उस आदमी के मन में शंका आ गई और वह इसी में मर ही गया।

१२९–लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर

एक मूर्ख के यहां एक आदमी चिट्ठी पढ़ाने और लिखाने आया। मूर्ख निरक्षर था, कैसे लिखता और पढ़ता? बीसों बहाने किये, अन्त में उसने कहा—भाई! लिख तो हम देंगे, लेकिन पढ़ने के लिये वहां मुझे ही जाना पड़ेगा। क्योंकि मेरे सिवा कोई पढ़ ही नहीं सकेगा। उसकी बातें सुन चिट्ठी लिखाने वाला बोला अच्छा पढ़ ही दो—इसमें क्या लिखा है। मूर्ख हाथ में चिट्ठी लेकर बहुत देर तक देखता रहा, फिर रोने लगा—यह देख उस आदमी ने भी, रोते हुये पूछा। कहो भाई! सब खैरियत तो है, उसने जवाब दिया, सब खैरियत है। तब तो चिट्ठी पढ़ाने वाला बड़ा घबड़ाया और उससे पूछने लगा फिर आप रोते क्यों हैं? उसने कहा क्या कहूँ—मैं तो बयारस तक ही पढ़ा हूँ, इसी लिये रो रहा हूँ। चिट्ठी पढ़ाने वाला बिगड़ उठा और बोला तुम कुछ नहीं जानते।

"लिख लोढ़ा पढ़ पत्थर"

१३०—मूर्ख नौकर

एक बनिये ने अपने नौकर से कहा कि एक पैसे का नमक और एक पैसे का शक्कर ले आओ, दोनों मिला मत देना, सब होशियारी के साथ अलग २ लाना। आओ यह लो एक पैसा तो नमक के लिये है, और यह दूसरा शक्कर के लिये देता हूँ। जाओ—जल्दी आओ, कहीं

सट न जाना। थोड़ी ही देर में नौकर खाली हाथ लौट आया। बनिये ने पूछा क्यों सामान लाया? नौकर ने कहा हुजूर! आपने कहा था कि यह पैसा नमक का है और यह दूसरा शक्कर का। हमसे बड़ी गलती हुई। दोनों पैसे मिल गये कौन पैसा किसका है—इसीलिए लौट आया हूँ।

एक दिहाती मूर्ख शहर में नौकरी के लिए पहुँचा। राह में एक हलवाई से मिला वह अपना खोमचा लिये 'बतासा ले बतासा ले' कहता हुआ जा रहा था, मूर्ख ने समझा कि यह मुझे ही कह रहा है कि बतासा ले। बड़ा बिगड़ा, हलवाई ने कहा भाई! मुझ पर नाराज. क्यों होते हो। मैं तो अपने बतासे बेच रहा हूँ। आगे बढ़ा एक कबुलिया कपड़ा बेचते हुए मिला वह कह रहा था। 'धुस्साले, 'धुस्साले' आप उस पर भी नाराज हो उठे और लड़ने की तैयारी करने लगे। उसने कहा भाई! मैं तो सिर्फ धुस्सा ही बेच रहा हूँ, आप को तो कुछ नहीं कहा। आप नाराज क्यों हो रहे हैं? इस प्रकार वह सारे शहर में लड़ता झगड़ता दिन गवां दिया—

———

१३१—जहाँ धर्म है वहीं जय है

सुख प्रकटे बहु धर्म ते, अधर्म से दुख पाय।
धर्महिं छोड़े सब छुटे, मानव जनम नशाय॥

द्वापर युग में कौरव बड़े बलवान थे, वे स्वयं १०० भाई लड़ने वाले थे। इसके अतिरिक्त द्रोण भीष्म कृप कर्ण अश्वत्थामादि बड़े २ अजेय वीर उनके रक्षक और सहायक थे। उधर दूसरे पक्ष में केवल ५ पांडव थे। उनके पास न तो उतनी सेना ही थी और न उतने उनके रक्षक ही थे।

दोनों पक्षों में राज्य के लिये लड़ाई हुई, पांडव धर्मात्मा थे और

कौरव अधर्मी थे, भगवान कृष्ण ने धर्मात्मा पाण्डवों का साथ दिया। बड़ी लड़ाई हुई। इस महाभारत में सभी अधर्मी मारे गये, पांचो पांडवों ने उन्हें सहज ही में जीत लिया। उनकी सारी सेना समाप्त हो गई, वड़े २ सहायक रणभूमि में काम आये। दुर्योधन सौ भाइयों के सहित मारा गया, भगवान कृष्ण ने कहा है—जहां धर्म है वहीं जय है, इसीलिये धर्मी पाण्डवों की विजय हुई।

धर्म को न छोड़ो, प्राण चला जाय पर धर्म न जाय। संसार में धर्म ही एक सार वस्तु है। जो धर्मकी रक्षा करता है, धर्म उसकी रक्षा करता है। धर्म से परे कुछ भी नहीं।

(१)

सत्य-सुयश फैलाने वाला; देने वाला मंगल मुक्ति।
जिसमें न्याय-नीति की सत्ता, भरी हुई हैं संयम-युक्ति ॥
जिसके उपदेशों पर चल के, कर सकते हैं आत्मोद्धार।
हो सकता है जिसके बल से, वर्णाश्रम का सहज सुधार ॥

(२)

लक्षण हैं दश परम धर्म के, पहला धृति उनका है सार।
इसके साधन से मिलता है, अपनी आत्मा पर अधिकार ॥
धृति के पालन से मनुष्य के, मनको मिल जाती है शान्ति।
और शीघ्र ही मिट जाती है, बहुत दिनोंकी सञ्चित भ्रांति ॥

(३)

दूजा लक्षण उसी धर्म का, क्षमा रूप है, जानो मित्र!
इसके साधन से मनुष्य को, दिखलाई पड़ता सुख चित्र ॥
क्षमावान पुरुषों का होत, सभी ओर है भारी नाम।
जिनसे होता जन-समाज का, निश्चय उपकारी सब काम ॥

(४)

तीजा लक्षण उसी धर्म का, दम कहलाता करो विचार।
इससे होता मन के भीतर, सहज रूप से सर्व सुधार ॥

दम के पालन से ऋषियों ने, साध लिया था सुन्दर योग।
उनके पास नहीं आता था, किसी भाँतिका अवगुण ढोंग॥

(५)

चौथा लक्षण धर्म-भाव का, कहलाता जानो अस्तेय।
बड़ा कठिन है उसे पालना, धीमानों से है विज्ञेय॥
दम का जो पालन करते हैं, उनका यश होता विस्तार।
मनमलीनता धुल जाती है, इसे जानता है संसार॥

(६)

लक्षण जानो, प्रकट पाँचवाँ, शौच धर्म का है आदर्श।
यह है स्वयं बनाता नर को, शुद्ध-बुद्ध देकर उत्कर्ष॥
भीतर-बाहर शौच-कृत्य से, होता है उत्तम आचार।
इसके पालन से लोगों को, मिल जाता दैवी आधार॥

(७)

इन्द्रिय निग्रह सुनो छठा है, उसी धर्मका अनुपम तत्व।
इसके पालन से मिलता है, जीवन दीर्घकाल अमरत्व॥
दश इन्द्रिय ग्यारहवें मनको, वश करने का करे विचार।
दूर रहे तो सब प्रकार से, दुःख प्रदायी दोष विचार॥

(८)

धी की संख्या सात मान लो, इससे सधता है सब काम।
इसकी उन्नति में लगने से, मिलता दिव्य गुणोंका ग्राम॥
धी है नाम बुद्धि का भाई, ऐसा कहते हैं मतिमान।
इससे हीन नहीं पाते हैं, देश कालका समुचित ज्ञान॥

(९)

विद्या लक्षण बना आठवाँ, इसकी महिमा अहो अपार।
इसका लाभ अलभ्य जान लो, इसे मानता है संसार॥
विद्या से सब नशें बुराई, और भलाई होती व्यक्त।
इसी लिये जो सुजन सयाने, होते हैं इसमें अनुरक्त॥

(१०)

नवाँ सत्य, उसके महत्व का, वर्णन करना कठिन विशेष।
धर्म टिका है उसके बलसे, विविध रूपमें बना प्रजेश॥
सत्य इष्ट रहता है जिसको, उसके उर ईश्वर का वास।
दम्भ-दुराग्रह-कपट न आते, कभी स्वप्न में उसके पास॥

(११)

दसवाँ है अक्रोध निराला, लक्षण इसे न जाना भूल!
इसे धार कर जगको करलो, कुछ ही क्षणमें तुम अनुकूल॥
क्रोधरहित को स्वर्ण मुकुट से, भूषित करता विज्ञसमाज।
तुम दृढ़ता से इसे धार लो, कभी न कष्ट-अकाज॥

(१२)

धर्मी बनो! प्रेम दिखलाओ, व्यर्थ विवादों को कर दूर।
दोनों लोकों की उन्नतियाँ, निश्चय मिलें तुम्हें भर पूर॥
जीवन का बस लाभ यही है, धर्मान्धों से बचो विशेष।
तुम पर कृपा रखेंगे प्यारे, परमपिता 'स्वामी विश्वेश॥

१३२—जहाँ स्वास्थ्य है वहीं सुख

स्वास्थ्य सबसे श्रेष्ठ है धृति बुद्धि-वैभव केतु—
स्वास्थ्य है मनुजत्व अथवा आत्म संजम हेतु—
स्वास्थ्य से ही दीर्घ जीवन ऋपि सिद्ध अशेष।
प्राप्त होते स्वास्थ्य से भी विश्वपति विश्वेश॥

एक राजा के दो लड़के थे, राजा दोनों बालकों को स्वास्थ्य का उपदेश दिया करता था। बड़ा लड़का अपने राज मदमें डूबा रहता था, उसे स्वास्थ्य की चिन्ता नहीं थी, बस दिन रात दुर्व्यसनों में लीन रहता, दिन चढ़े तक सोता और आहार का ध्यान नहीं रखता था, छोटा लड़का सदैव स्वास्थ्य का ध्यान रखता था।

धीरे-धीरे कुछ दिन बीत गये, मिथ्या आहार विहार के कारण

बड़ा लड़का रोगी हो गया, उसे कब्जकी शिकायत हो गई, इतने पर भी वह नहीं चेता, गरिष्ठ से गरिष्ठ आहारों को उड़ाता रहा, फल यह हुआ कि उसकी अग्नि नष्ट हो गई। वह ग्रहणी का शिकार हो गया। दिनमें ४०,४० दस्त होने लगे, जो कुछ खाता था—उसी रूपमें गुदा से निकलने लगा, अब तो चलने फिरने की भी शक्ति नहीं रही, तब उसे चेत हुआ, परन्तु अब क्या होता है, अब तो स्वास्थ्य नष्ट हो गया। पछताये का होत है।

स्वास्थ्य धन रक्षा तुम्हें होगा न यदि अब इष्ट।
रह सकोगे शान्ति-वैभव युक्त क्या तुम शिष्ट?
प्राप्त कैसे हो तुम्हें वह बुद्धि और विवेक—
बुद्धि कैसे हो तुम्हारी? मानवों-अविवेक॥

१३३—दिक्पाल छन्द।

(१)

पण्डित बता चुके हैं, जो ध्यान में है आया।
जब स्वास्थ्य ही नहीं तो किस काम की है काया॥
नर के लिये जगत में, आरोग्य धन बड़ा है।
मनको प्रसन्न रखता, सुखशान्ति का घड़ा है॥

(२)

दुख भोगते स्वयं ही, जो हैं कुरोग-रोगी।
आनन्द के कभी भी, वे हो सकें न भोगी॥
अस्वस्थता स्वयं ही, है पाप रूप जानो।
धन धाम औ धरा को, सब व्यर्थ बात मानो॥

(३)

व्यायामशील जो हैं उनको न रोग होवे।
वे हृष्ट-पुष्ट होके हैं मोद-साथ सोवे॥
कल्याण है उन्हीं का, जो देह को बनाते।
श्रम और यत्न अपना, इस स्वार्थ में लगावें॥

१३४—जहाँ संकल्प है वहीं मार्ग है

संकल्प जिसका सिद्ध है फिर कार्य उसका क्यों रुके।
जिसको मिले चिन्तामणि सो निर्धनी क्यों हो सके॥

बनवास के दिनों में जब पांचो पाण्डव भयंकर वनों में दुःख काट रहे थे, सहसा एक दिन व्यास जी आये। पांडवों ने बड़ी भक्ति से उठकर प्रणाम कर महात्मा की पूजा कर सन्तुष्ट किया, भोजन करने के बाद ऋषि ने धर्मराज से कहा पुत्र! अर्जुन को इन्द्रकील पर्वत पर शंकर की तपस्या करने के लिये भेजो, वह जाकर शंकर को प्रसन्न करे और पशुपतास्त्र का वरदान मांगे, जिससे अन्याई और अधर्मी कौरवों का नाश किया जाय। व्यासदेव की बातें सुन धर्मराज ने कहा, महाराज! यह तो बड़ा ही कठिन काम है। कैसे होगा?

व्यास जी बोले—बेटा चिन्ता न करो, जहां संकल्प होगा, वहीं मार्ग मिल जायगा। ऐसा ही हुआ, अर्जुन पशुपतास्त्र का दृढ़ संकल्प करके इन्द्रकील पर्वत पर गया और भगवान भूतनाथ की अखंड तपस्या करने लगा। बड़ी २ कठिनाइयों पर वह दृढ़ रहा संकल्प के प्रभाव से तपस्या फलवती हुई, इन्द्रासन थर्रा उठा, देवेन्द्र आये। भगवान शंकर ने साक्षात दर्शन दिया, पशुपतास्त्र की प्राप्ति हो गई जिसके अपार तेज से उसने वैरियों का नाश कर दिया।

सत्य है—जहां संकल्प है वहीं मार्ग है और वहीं सफलता मिलती है।

१३५—हरिगीतिका छन्द

(१)

जो निज प्रतिज्ञा को नियम से शक्ति भर है पालता।
अपने वचन को प्राण जाने तक नहीं है टालता॥
जो लोक-हित की चिन्तना में प्रेम-धन का पात्र है।
अधिकार से है यत्न करता और सज्जन गात्र है॥

(२)

जो कर्मवीरों के कुलों में जन्म लेता धन्य है।
जिसकी प्रशंसा शत्रु भी करते, न जैसा अन्य है॥
जो सत्य में विश्वास रखता आत्मबल से हो बली।
उद्योग धन्धों में रहे, जिसको न धोखा दे छली॥

(३)

कठिनाइयों को झेल के भी है न साहस हारता।
पाखण्ड-सिंहों को पटक के, बुद्धि से है मारता॥
स्वाधीन हो, निर्भीक हो, जो नित्य करता काम है।
उसका इसी आदर्श से, सर्वत्र होता नाम है॥

१३६—जहाँ सुमति है वहाँ सम्पत्ति है

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ विपति निधाना॥

बाबू कुँवरसिंह अपने गांव के मुखिया थे। गांव में इन्हीं का सब से बड़ा हिस्सा था, इनके दो लड़के थे अजयसिंह और विजयसिंह। अजयसिंह के चार लड़के थे और विजयसिंह के तीन। बाबू साहेब ने अपने मरने के पहले ही दोनों को अलग कर दिया और जगह जमीन तथा रुपये पैसे भी बांट दिये थे।

बाबू कुँवरसिंह मर गये। अजय और विजय अपने २ परिवार के साथ रहने लगे, अजय के चारों लड़के आपस में लड़ा झगड़ा करते थे। पुत्र वधुयें भी कम लड़ाकी न थीं।

विजय के लड़के बड़े मिलनसार थे, वे आपस में कभी नहीं लड़ते थे, तीनों बेटों की बहुयें भी मेलजोल से रहती थीं।

धीरे २ कुछ दिन बीत गये, अजय के लड़कों का मन मोटाव नहीं

मिटा, कुमति दिन २ बढ़ती ही गई, खेत वारी नौकरों पर छोड़ दिये, मनमाना गांजा-भांग उड़ाने लगे, रुपये पैसे के लिये झगड़ा होने लगा, फल यह हुआ कि अजयसिंह की जमीन्दारी चार हिस्सों में बट गई। इतने पर भी शान्त नहीं हुये, अधिकार के लिये मामले मुकद्दमे चलाने लगे, आपस में ही लोग लड़ पड़े, नतीजा यह हुआ कि आपस की कुमति से सभी जमीन्दारी वर्बाद हो गई। लोग दाने-दाने के लिये मरने लगे।

इधर विजय के लड़कों में पूरी सुमति थी, इन लोगों ने एक दिल होकर खूब काम किया। लाखों रुपये इकट्ठा कर लिये। लक्ष्मी लोटने लगी, अन्न से भंडार भरा रहने लगा।

ठीक है—सुमति से ही सुख मिलता है, इसीसे उन्नति होती है, कुमति ने ही अजय के कुल का नाश करा दिया।

१३७—जहां वीर्य रक्षा है वहीं बल है

दुर्भेद्य मरनधर हो तथा आगमाब्धि अजयोद्वेग हो।
हो अग्निकी दहती शिखायें या प्रभंजन वेग हो॥
नष्ट कर देता है क्षण में वीर्य के नव शक्ति से।
क्या-क्या न होता विश्व में ब्रह्मचर्य के सद्भक्ति से॥

लंका में भयानक संग्राम छिड़ा है, संसार का प्रसिद्ध धनुर्धारी इन्द्रजीत अमोघ वाणों की वर्षा कर रहा है। त्रेता का वज्रांग महाबली हनुमान गदा लेकर झुक पड़ा है। इधर महात्मा लक्ष्मण अचल हैं, मेघनाद के वाणों की परवा नहीं करते। वह हँसते हुये, उन्हें काट काट कर गिरा रहा है।

देखते ही देखते प्रतापी लक्ष्मण ने दिशाओं को वाणों से भर दिया। आकाश विषैले वाणों से भर गया, सारी राक्षसी सेना अस्त्रों से आच्छादित हो गई।

विकट कोलाहल हुआ, उसी समय लक्ष्मण ने संतप्तसूर्य के समा
एक अमोघ बाण छोड़ा, ओह ! राक्षसी सेना उस दहकती अग्नि
झुलसने लगी। देखते ही देखते वह भीष्म के तेज को न स
सकी, भाग खड़ी हुई, मेघनाथ ने बहुत चाहा परन्तु लक्ष्मण के बाण
की मार से व्यथित सेना रणांगन में नहीं ठहर सकी।

ब्रह्मचारी लक्ष्मण ने इस युद्धमें अपना अपूर्व कौशल दिखलाया
जब तक हाथमें धनुष और बाण रहा, कोई भी विचलित न कर सका
एक इन्द्रजीत क्या हजार इन्द्रजीत भी उन्हें विचलित करने में असमर्थ
रहे स्वयं प्रतापी रावण को भी विचलित होना पड़ा। यह सब क्य
था वीर्य रक्षा का बल ! ब्रह्मचर्यका प्रभाव।

वीर लक्ष्मण पूर्ण ब्रह्मचारी थे, उनमें इतनी शक्ति थी कि वे अकेले
लाखों राक्षसों का सामना करते थे, वीर्यकी शक्ति के सन्मुख संसार
की सारी शक्तियाँ तुच्छ हैं।

(१)

जो लोक शिक्षा चाहते जो चाहते कल्याण हो।
जो चाहते विज्ञान अथवा चाहते प्रिय ज्ञान हो॥
सुनलो समझलो और मनमें मानलो यह ध्यानमें।
उत्थान उन्नति सूत्र है सब वीर्यके सन्मानमें॥

(२)

इस वीर्यके अवलंब से दीपक सभीके जल रहे।
ब्रह्मचर्यके ही शक्ति से फल फूल सारे खिल रहे॥
जो वीर्यका गुन जानता निश्चय वही मतिमान है।
सम्मान पाने योग्य जन विद्वान नर गतिवान है॥

(३)

ब्रह्मचर्य व्रत को धार लो देखो कि तुम्हीं हो सभी।
तुम धन्य हो संसार में क्या तुच्छ हो सकते कभी॥

तुम आत्मा हो पुत्रहो परमात्मा के मनुज हो।
हो रामकृष्णार्जुन नहीं तौभी उन्हीं के अनुज हो॥

१३८—बाल विवाह की बुराई।

आज यह व्यापक विषय हो रहा है, इसी के कारण देश की दुर्दशा हुई। छोटे २ बच्चों का ब्याह कराकर माता पिताओं ने वंश की नींव हिला दी। देश पददलित हो गया, ब्रह्मचर्य नाश ने सब कुछ नाश कर दिया।

विवाह ब्रह्मचर्य के पश्चात् होना चाहिये, इसके लिये अमोघ वीर्य-धारी होना चाहिये—जिससे बलभाव सन्तान उत्पन्न हो, परन्तु शोक! आज कल अंध-परपरा ने सर्वत्र अपना जाल बिछा रक्खा है।

(१)

काशी में मार्कण्डेय दुबे नामके एक ब्राह्मण रहते थे उन्होंने अपने लड़के का विवाह ९ वर्ष की ही अवस्था में कर दिया था, कन्या भी ९ ही वर्षकी थी। ५ वर्षके बाद गौना भी आ गया। दोनों एक साथ रहने लगे, बालक का वीर्य अभी पुष्ट भी नहीं होने पाया था कि वह स्त्रीके साथ संसर्ग करने लगा। धीरे २ कुछ दिन बीत गये, उस बालक के पास जो कुछ अपरिपक्व वीर्य था वह भी बह गया।

दुलहिन के आये धीरे ३ वर्ष बीत गये परन्तु संतान अभी नहीं हुआ, मार्कण्डेयकी स्त्री यही विचारने लगी। पुत्रके लिये लगी दुआ, तावीज खोजने। बच्चा हो कैसे, दुलहा तो वीर्यहीन हो गया है। कुछ ही दिनोंमें वह पूरा नपुंसक हो गया, जवान दुलहिन अब क्या करे?

कुछ दिनोंके बाद मार्कण्डेय के समधी अपनी बेटी को बिदा कराकर ले गये। दुलहिन युवती होने के पूर्व से ही विषय भोगका स्वाद पा चुकी थी, और भी नैहर में उसे स्वतंत्रता मिली अपने ही एक चचेरे

भाई से उसकी आँख लग गई—अब क्या था लुक छिप कर व्यभिचार होने लगा, १ वर्षके बाद मार्कण्डेयजी को खबर मिली कि दुलहिन को गर्भ है।

पं० जो बड़े बिगड़े, उन्होंने लिख भेजा कि अब वह हमारे कामकी नहीं है। उधर उसके बापने भी मार पीट कर घरसे निकाल दिया, चचेरे भाई ने भी शरण नहीं दी, हाय उस अनाथिनी का कोई नहीं रहा, वह मारी २ फिरने लगी। एक दिन वह एक शैतान के पंजेमें फँस गई, वह उसे बनारस लिवा लाया। १ महीना रखकर उसने भी छोड़ दिया, अब वह बनारस की गलियों में मारी २ फिरने लगी।

(२)

रनजीतने अपनी ७ बर्षकी लड़की मोहिनी की शादी रघुवीरशरण के ७ वर्षके लड़के से करदी थी, रनजीत जब गौनेकी बात चलाते तब रघुबीर यह कहते थे कि लड़का अभी छोटा है पढ़ता है, अभी क्या हर्ज है धीरे २ व्याह के ८ वर्ष बीत गये, लड़का अभी लड़का ही रहा, १५ बीतते २ लड़की पूरी युवा हो गई, वर्तमान वायु मंडलमें १५, १६ वर्षकी नवयुवतियोंका स्थिर रहना बड़ा कठिन विषय हो गया है।

मोहिनी मोहिनी ही थी, बीसों मनचले उसके पीछे पड़े रहते थे, उसकी भी कामाग्नि भड़क उठी, देखते ही देखते गौनेके पूर्व ही वह पतित हो गई, वह गर्भवती हो गई।

मोहिनी भी पति और ससुर दोनों ओरसे त्यागी गई, हाय ! आज वह वेश्यालय को शोभित कर रही है।

(३)

रमेश की शादी ग्यारह वर्ष की अवस्था में हुई थी, शादी के दूसरे ही वर्ष उसे शीतापका आखेट होना पड़ा, उस समय उसकी स्त्री चमेली चौदह सालकी थी। हाय ! वह विधवा हो गई, रमेश के बड़े भाई महेश के अतिरिक्त और कोई घर में न था।

चमेली महेश के साथ रहने लगी, धीरे २ दोनों में सम्बन्ध हो गया। वर्षों बीत गये आखिर चमेली गर्भवती हो ही गई. महेश ने उसे काशीमें लाकर छोड़ दिया। वह बिचारी क्या करे। गुण्डोंके जालमें फँस गई, यथा समय उसे बालिका हुई, गुण्डोंने उसे वेश्या के यहाँ बेच दिया। हाय ! उसका सुन्दर जीवन नर्क द्वार हो गया।

(४)

बृजमोहन के पुत्रका छोटेपनमें विवाह हुआ था, उसे विवाहका स्मरण न था. बड़े होने पर उसका गौना हुआ। ४,५ वर्षके बाद एक पुत्र हुआ, परन्तु होते ही मर गया।

उसे तीन चार लड़के हुये, परन्तु सभी कमजोर, दुर्बल और अल्पायु। वह स्वयं अल्पायु हुआ, बत्तीस वर्षकी ही—अवस्था में इस लोक से चल बसा, उसकी प्रौढ़ा स्त्री वैसी ही रही।

उन बालकों से वंश नहीं चला, बृजमोहन का वंश समाप्त हो गया। बाल विवाह का यही परिणाम है।

आज भारतवर्ष में अविद्या का अटल साम्राज्य है। माता पिता, सुधारक, उद्धारक सभी ज्ञानान्ध हो रहे हैं किसी को अमोघ वीर्य का ज्ञान नहीं यह अलभ्य पदार्थ कहाँ से उत्पन्न हो। दशदश बारह बारह वर्षके बच्चे गृहाश्रमी बनाये जाने लगे बाल्यकाल से ही उन्हें भोग की शिक्षा दी जाने लगी, लड़कपन से ही उन्हें काम कोठरी में प्रविष्ट कराने लगे, युवापन के पूर्व ही वीर्य शरीर को निःसार समझ चल बसा। अमोघ वीर्य हो कहाँ से, एक समय था, जब पच्चीस वर्ष के पश्चात् ब्रह्मचर्य्यानुसार मनुष्य पूर्ण वीर्यवान् अमोघ वीर्यधारी होता था। आज की यह दशा है कि पच्चीस वर्ष वाले श्मशान में भस्म किये जा रहे हैं। ऐसे नाशकारी परिवर्तन में अमोघ कहाँ खोजते हो।

अपरिपक्व वीर्य वाले नवयुवक रात दिन विषयों में लगे रहते हैं, संतान कहाँ। भोगते भोगते बरस बीता, दो बरस बीता, तीसरा

भी समाप्त हो चला ... तब भी सन्तान का मुँह कहाँ देखा। दैवात् देखा भी तो अल्पायु, रुग्ण, निर्बल हीन दीन ... मृत तुल्य शक्तिरहित निर्जीव तुल्य।

है बालकों का वीर्य कच्चा अंग निर्बल हो रहे।
शिक्षा समाप्त न हो सकी अज्ञान में सब खो रहे॥
है धर्म तो कहता उन्हें कुछ ब्रह्मचर्य विधान हो।
पर कर्म उनसे ले रहे जो भोग का ही ध्यान हो॥
अन्धे हुये माता पिता क्यों नातियों की चाह में।
लेकर बधु वर माँगते संतान का दरगाह में॥
जो वीर्य से सुत हो नहीं दरगाह कैसे दे सके।
उन मोतियों से द्रव्य अथवा सत्य उनका ले सके॥
हे बन्धुओं ये है कुल्हाड़ी काटती जो आपको।
बेटा बहू मर जायगा दे शाप पापी बाप को॥
है भोग वाला रोग ही दुर्भाग्य भारतवर्ष का।
बढ़ने न देता वीर्य बल रिपु है प्रबल उत्कर्ष का॥

संसार सर्व प्रकार के उदाहरणों का पाठशाला है। भूत एवं वर्तमान के तीर्थ—संसार को देखते हुये स्पष्ट प्रगट होता है कि आज संसार में पूर्वीय अमोघ वीर्य का पता नहीं, भविष्य में हम अमोघ वीर्यधारी वीरों की संतान हैं। तथापि हममें वे गुण विद्यमान नहीं हैं, हममें उन पूर्वीय शक्तियों का लवलेश नहीं है। हम उस सिद्धान्त से गिर गये हैं, यही कारण है कि आज हमारी जाति, हमारा देश तथा हमारा समाज पतन के कूप में गिरा हुआ बर्षाती मेढ़क की तरह टर्रा रहता है। और विपक्षियों का समुदाय ऊपर से पत्थर ईंटों की वर्षा कर हमारे सहस्त्रों संतानों का खेल में सत्यानाश कर रहा है।

वीर्य रक्षा का जिन्हें मिलना न अवसर हाय।
क्यों न वे अल्पायु होकर नष्ट हों निरुपाय॥

प्राण से प्यारे सुतों का भूलकर परिणाम।
कर रहे माता पिता ही शत्रुओं का काम॥

१३९—वृद्ध विवाह का परिणाम

भारत के नाश का एक यह भी कारण है, आज देश में सैकड़ों वृद्ध विवाह हो रहे हैं जिन से धन और धर्म दोनों की क्षति हो रही है। दिन २ परिणाम भयंकर होता जा रहा है।

ठाकुर अचलसिंह ने ७५ वर्ष की अवस्था में २०००) देकर एक १५ वर्ष की लड़की के साथ शादी की थी, विवाह तो समान गुण धर्म होने पर ही होना चाहिये, उस लड़की की तबीयत उस बूढ़े के अनुकूल कैसे हो सकती है, दोनों की प्रकृति में अन्तर है। अचलसिंह ने बहुत चाहा कि अनुकूल हो जाय परन्तु ऐसा नहीं हुआ, उसके प्रेमका झुकाव बूढ़े की ओर नहीं हो सका। ठाकुर के दिल पर इस बात का बड़ा आघात पहुँचा और वह तीन चार महीने ही में चल बसा। परिणाम क्या हुआ, युवती व्यभिचारिणी हो गई। अचलसिंह के पूर्वज जो स्वर्ग में भी पहुँच चुके थे नर्क में जा गिरे।

(२)

सेठ वृन्दावन ने चार युवा पुत्रों तथा पुत्र वधुओं के रहते हुये ६० वर्ष की अवस्था में विवाह का विचार किया। लोगों ने बहुत मना किया परन्तु उनके सिर पर पाप का भूत चढ़ा हुआ था, वे कब मानते? उन्होंने कई हजार रुपये खर्च कर विवाह कर ही डाला।

दुलहिन १८ वर्ष की थी, मैके से ही उसका चरित्र भ्रष्ट हो चुका था। उसके घर का एक नवयुवक कहार नौकर ही उसका प्रेमी था, ससुराल आते समय वह नौकर को भी साथ लेती आई।

यहाँ आते ही उसने बड़ा उपद्रव गाँठा. दो ही दिनमें उसने अपने

को अलग कर लिया, सेठजी ने नई दुलहिन की प्रसन्नता के लिये बेटों और बहुओं को दूसरे मकान में कर दिया, नई नवेली उस बड़े घरमें रहने लगी। सेठजी दिन भर दूकान पर रहते थे, और यहाँ सेठानी—अपने प्रेमी से प्रेमालाप किया करती थी।

दैवात एक दिन सेठ जी ने देख लिया, उनके क्रोध का ठिकाना न रहा। मारे क्रोध के उन्हें ज्वर चढ़ आया, ज्वर की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई—आधी रात होते २ प्रलाप करने लगे सवेरे सुना गया कि सेठजी चल बसे।

सेठजी का श्राद्ध हुआ, सेठानी उसी मकान में आनन्द करने लगीं, परन्तु सेठजी के पुत्रों ने उसपर दखल कर लिया। और सेठानी जी को गुजारा देना निश्चित किया। सभी लोग उसी घर में आगये, अब एकान्त नहीं रह गया, सेठानी के दिन कष्ट से बीतने लगे, एक दिन नौकर से बात चीत ठीक कर रक्खा कि चलो कलकत्ता भाग चलें, वहाँ मौज से रहेंगे।

ऐसा ही हुआ दूसरे ही दिन सुनने में आया कि वृन्दाबन सेठ की नई दुलहिन अपने नौकर के साथ भाग गई है।

३

जगन्नाथ बड़ा रसिया था, उसने ५६ वर्ष की उम्र में पहले पहल शादी की, स्त्री युवा थी जगन्नाथ उसे सन्तुष्ट नहीं कर सका। उसकी आँखें इधर उधर दौड़ने लगीं।

मोहन लाल जगन्नाथ के यहाँ आया करते थे, धीरे २ कुन्ती से घनिष्टता बढ़ने लगी, कुछ ही दिनों में दोनों हिलमिल गये, एक दिन जब जगन्नाथ शहर गये हुये थे कुन्ती जगन्नाथ के सब माल लेकर चंपत हो गई, जगन्नाथ हाथ मल मल कर पछताते ही रहे।

कुन्ती बनारस पहुँची, दोनों रहने लगे। मोहन शराबी और कबाबी था, शराब के नशे में उसने अनर्थ कर डाला। पुलिस ने उसे पकड़ लिया वह जेल भेज दिया गया।

इधर कुन्ती अब क्या करे विवश होकर उसे वेश्या बनना पड़ा।

भारतीयों ! सोचो, वृद्ध विवाह का परिणाम कितना पड़ा है। यदि वृद्ध के वीर्य से सन्तान भी उत्पन्न हुई तो वह भी बलवान, बुद्धिमान, और दीर्घायु नहीं हो सकती, इतना देखते हुए भी जो वृद्ध विवाह की ओर बढ़े उससे बढ़कर मूर्ख दूसरा और कौन होगा।

१४०—बहु विवाह।

एक सेठ जी की दो स्त्रियाँ थीं, एक दिन चारपाई पर लेट रहे थे कि दोनों स्त्रियाँ आ पहुँची, एक दाहिनी ओर आ पहुँची और दूसरी बायीं ओर। सेठ जी चुपचाप लेटे थे, एक अपनी ओर खींचने लगी और दूसरी अपनी ओर। सेठ जी बिचारे बीच ही में कचराने लगे।

सेठ जी के सिरहाने के ठीक ऊपर ही ताखा था, उस पर कडुआ तेल का चिराग बल रहा था, उसके लोल से तेल टपक २ कर सेठ जी के माथा पर गिरने लगा। गर्म तेल के गिरते ही वे चिहुँक उठते थे, परन्तु दोनों ओर से दबे रहने के कारण करवट नहीं बदल सकते थे, वे छुटकारे का अनेक उपाय करने में बाज नहीं आते थे। परन्तु स्त्रियों के मारे बिचारे विवश थे, इतने ही में दीपक का तेल टूट कर उनके कपार पर गिरा अब क्या था वे चौंक पड़े। फिर भी स्त्रियोंने दबा रक्खा, उनका चाँदी जल गया। सेठजी हाय! हाय! करने लगे।

सत्य है—बहु विवाहका फल ऐसा ही होता है।